मनोविज्ञान

डा० धीरेन्द्र वर्मा पुस्तक-संग्रह

लेखिका
निर्मला शेरजंग, एम. ए., एल-एल. बी., बी. टी.,
इन्द्रप्रस्थ कालेज, दिल्ली

दो शब्द

हिन्दी में मनोविज्ञान के लेखक के सामने यह कठिनाई अवश्य उपस्थित होती है कि वह इस विषय की गुत्थियों को सुलझाने में अपनी योग्यता का सदुपयोग करे अथवा उसका सामान्य ज्ञान अधिकतम पाठकों के पास पहुँचाये; क्योंकि जब तक हिन्दी के पाठकों को विषय का सामान्य ज्ञान नहीं होता तब तक उसके सूक्ष्म विवेचन के लिये आधार ही नहीं बनता। अतएव पहले यह ज़मीन तैयार करना ही अनिवार्य हो जाता है और विषय की गहराइयों में उतरने का मोह संवरण करके उसके सरल-निरूपण में ही अपनी प्रतिभा का प्रमाण उपस्थित करना आवश्यक होता है। और इसमें सन्देह नहीं कि इस कार्य के सफल निर्वाह के लिये पर्याप्त अध्ययन तथा अनुभव के अतिरिक्त प्रतिपादन शैली का कौशल भी अपेक्षित है। अनेक स्थलों पर विभिन्न विचारकों के मतभेदों से बचते हुए उनमें से सर्वसफल सामान्य सत्य को खोज निकालना आसान काम नहीं है। इस कठिनाई से निकलने का एक सुगम मार्ग यह होता है कि किसी एक बड़े विचारक को आधार मान लिया जाय, किन्तु ऐसा करने से भी निरूपण सर्वांगीण नहीं हो पाता और अन्य विचारकों के दान की उपेक्षा होती है। दूसरा रास्ता यह होता है कि विवादग्रस्त विषयों को छोड़ ही दिया जाय। जहाँ तक अधिकांश में सहमति है उतना ही विषय उपस्थित किया जाय, किन्तु इस तरीके से विषय के विभिन्न अंगों में जो एकसूत्रता होती है वही नष्ट हो जाती है। उसकी आत्मा ही लुप्त हो जाती है। वह केवल ऐसे अनेक सत्यों का संचयमात्र रह जाता है जिनमें कोई पारस्परिक संबंध नहीं है, जिनकी एकवाक्यता नहीं हो सकती। इस

प्रकार के ज्ञान से पल्लवग्राही पाण्डित्य अवश्य प्राप्त हो सकता है, किन्तु विषय की कुञ्जी हाथ नहीं लगती। अतएव यह आवश्यक है कि निरूपण सर्वांगीण हो और साथ ही साथ अनेक विचारकों की दृष्टि में समन्वय भी स्थापित किया जाय। यहीं पर लेखक की प्रतिभा की परीक्षा होती है और साथ ही साथ उसके आत्मसंयम की भी। क्योंकि जब वह मत-मतान्तर के बुद्धि-भेद में पाठकों को न डालने का संकल्प कर चुका है, तब उनका समन्वय भी प्रकट रूप से नहीं कर सकता। यह समन्वय तो उसकी बुद्धि में ही निर्मित होता है। उसका फलमात्र उसकी विषय-निरूपण की सहज शैली में तथा उसके एकरस प्रवाह में लक्षित होता है। आज हिन्दी के पाठकों को ऐसे ही लेखकों की आवश्यकता है। क्योंकि यद्यपि इधर हिन्दी में मनोविज्ञान पर बहुत कुछ लिखा गया है, फिर भी वह बहुत कम है, और उससे अभी वह नींव पूर्ण नहीं हुई है जिस पर विशेषज्ञों की कला का निर्माण हो।

मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि प्रस्तुत पुस्तक की लेखिका ने अपनी प्रतिभा तथा अपने प्रचुर अनुभव का प्रयोग इस पुस्तक द्वारा हिन्दी के पाठकों की एक आवश्यकता की पूर्ति के लिये किया है। इनका निरूपण प्रामाणिक, सर्वांगीण और सुबोध है जिससे उनकी योग्यता और कुशलता का परिचय मिलता है। यह पुस्तक मनोविज्ञान में जिज्ञासावाले प्रौढ़ पाठकों के अतिरिक्त कालिजों तथा टीचर्स ट्रेनिंग कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिये भी अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। मुझे विश्वास है कि हिन्दी के पाठक तथा हिन्दी के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थी और उनके शिक्षक इसका समुचित उपयोग करेंगे और लेखिका को इस दिशा में आगे काम करने के लिये प्रोत्साहित करेंगे।

काशी विद्यापीठ

—राजाराम शास्त्री

आभार

मनोविज्ञान का कुछ अन्य पुस्तकें हिन्दी में प्रकाशित हो चुकी हैं, फिर भी मनोविज्ञान में प्राप्त साहित्य अभी प्रारंभिक दशा में हैं; यहाँ तक कि मनोविज्ञान में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्द भी अभी सर्वसम्मत नहीं हो पाये हैं। मुझे इस कार्य में काशी विद्यापीठ के श्री राजाराम शास्त्री से बहुत सहायता मिली है। इसके लिये मैं उनकी बहुत कृतज्ञ हूँ।

मैंने मनोविज्ञान के अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दों को उनके अर्थ के अनुसार ही हिन्दी में प्रयोग करने का प्रयत्न किया है। साथ ही मैंने प्रचलित शब्दों को यथासंभव अपनाने की चेष्टा की है। पाठकों को इस पुस्तक में प्रयुक्त शब्दों को समझने में असुविधा न हो, इसलिए पुस्तक के अंत में अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दों के साथ प्रयुक्त हिन्दी शब्द तथा संक्षेप में उनके अर्थ भी शब्दकोष के रूप में दिये हैं।

इस पुस्तक में दिये कुछ प्रयोग मेरे छात्रों ने Institute of Education देहली की प्रयोगशाला में किये हैं। इस सुविधा के लिए मैं इस Institute के प्रिंसिपल ए० एन० बसु महोदय की विशेष आभारी हूँ।

पंजाब यूनिवर्सिटी की प्रयोगशाला में किये गये कुछ प्रयोगों का भी इस पुस्तक में उपयोग किया गया है, जिनके लिये मैं पंजाब यूनिवर्सिटी के मनोविज्ञान विभाग की प्राध्यापिका श्रीमती कमल की कृतज्ञ हूँ।

देहली यूनिवर्सिटी के दर्शन तथा मनोविज्ञान विभाग के अध्यक्ष डाक्टर एन० वी० बैनर्जी को मैं हार्दिक धन्यवाद देती हूँ। उनके प्रोत्साहन तथा सहायता से ही मैं इस कार्य को पूरा कर पाई हूँ।

अन्त में, मैं श्रीमती वेद बावा तथा अपने उन सब मित्रों के प्रति कृतज्ञता प्रगट करती हूँ जिनसे मुझे इस पुस्तक के लिखने में अमूल्य सहायता मिली है।

—लेखिका

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७	१५	अनुवन्व गुणक	अनुबन्ध गुणक*
४८	२१	कृभतिाव	कृतिभाव
८३	२५	लद्य	तथ्य
९२	१६	अचेतन	अवचेतन
१०४	१	प्राथमिक-रूप-संवेदना	प्राथमिक रूप संवेदना
१११	५, ७	छाया	द्वाभा
११६	१८	आकाश	प्रकाश
११६	१६	लम्वी प्रकाश तरंगों से नीले	लम्वी प्रकाश तरंगों से पीले
१२८	२०	जाल	बाल
१४४	१०	शरण	शरणागति
१४४	११	घृण	घृणा
१६८	२०	दो० यक्ति	दो व्यक्ति
२०२	५	अनुबन्धन	अनुबन्ध
२०८	२०	A dult	Adult
२१०	१०	अर्स्टिाट्ल	अरिस्टॉटल

विषय सूची

———

सहायक ग्रन्थ सूची

The Study of Mental life By Robert S. Woodworth.

Contemporary Schools of Psychology By Robert S. Woodworth.

Experimental Psychology By Robert S. Woodworth.

Principles of Psychology By William James.

Psychology By Boring, Langfeld, Weld.

Outlines of Psychology By William McDougall.

Outlines of Abnormal Psychology by William McDougall.

Social Psychology By William McDougall.

Psychology By Dewey, John.

Psychology By Angell J. R.

Talks to Teachers on Psychology By William James.

Seven Psychologies By Heidbreder.

Growth of mind By Koffka.

Gestault Psychology By Kohler.

Individual Psychology By Adler Alfred.

Behaviourism By Watson J. B.

Text Book of Psychology By Titchner.

Encyclopædia of Psychology Edited by Philip Lawrence and Harrison.

Abilities of Man and Their Measurement By Spearman.
Educational Psychology By Charles E. Skinner.
Educational Psychology By Charles Fox.
Educational Psychology By Gates Jersild and others.
Educational Psychology By Hollingworth.
Educational Psychology By J. S. Ross.
Guide to Mental Testing By Cattel.
Experimental Psychology By Collins and Drever.
Fundamental Statistics in Psychology & Education By Guilford J. P.
Statistical Methods for Research workers By Fisher.
General Physiology By Mitchell, Phillip H,
Introductory Lectures By Freud, Sigmund.
मनोविज्ञान व शिक्षा, ले० सरयूप्रसाद चौबे।
मनोविज्ञान ले० जगदानन्द पाण्डेय।
मनोवैज्ञानिक प्रयोग-परिचय ले० जयप्रकाश।
सरल मनोविज्ञान ले० लालजीराम शुक्ल।

मनोविज्ञान

मनोविज्ञान मनुष्य की मानसिक प्रक्रिया का अध्ययन है। इस अध्ययन के लिए मानसिक प्रक्रिया को ज्ञानात्मक, भावात्मक, तथा इच्छात्मक अनुभव में विभाजित किया जा सकता है। संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, चिन्तन, विचार तथा तर्क आदि ज्ञानात्मक अनुभव के ही विशिष्ट रूप हैं। इसी प्रकार भावना, संवेग आदि भावात्मक अनुभव के; और विभिन्न नैसर्गिक या अर्जित इच्छाएँ और प्रेरणाएँ इच्छात्मक अनुभव के विभिन्न रूप हैं।

जीवन के प्रत्येक अनुभव में यह तीनों ही गुण पाये जाते हैं। इनमें परस्पर इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि इन्हें अलग-अलग नहीं किया जा सकता—अर्थात्, प्रत्येक अनुभव इन तीनों का सम्मिलित रूप है। जैसे, प्रत्यक्षीकरण में यद्यपि ज्ञानात्मक अनुभव की प्रधानता अवश्य है, किन्तु उसमें भावना और प्रेरणा का प्रभाव भी रहता है। व्यक्ति प्रायः वही चीज़ें देखते और समझते हैं जिनमें उन्हें रुचि रहती है और उनके प्रत्येक अनुभव में सन्तोष या असन्तोष की भावना भी व्यक्त या अव्यक्त रूप से वर्तमान रहती है। इसी प्रकार प्रत्येक भावात्मक अनुभव में प्रेरणा और ज्ञान दोनों ही पाये जाते हैं। क्रोध में व्यक्ति को केवल भावावेश ही नहीं होता, उसका क्रोध किसी विषय के प्रति होता है, और उसमें क्रोध उत्तेजित करनेवाली स्थिति को बदल देने की इच्छा प्रबल हो उठती है।

व्यक्ति का व्यवहार बहुधा उसकी मानसिक प्रक्रिया का प्रगट रूप ही होता है। हम व्यक्ति के व्यवहार से यह अनुमान लगा लेते हैं कि उसका ध्यान किस ओर आकर्षित है, उसे किस संवेग का अनुभव हो रहा है, उसकी इच्छा क्या है, और वह कितनी प्रबल है।

यद्यपि शारीरिक तथा मानसिक क्रिया का परस्पर सम्बन्ध इतना घनि है, किन्तु कुछ शारीरिक क्रियाएँ ऐसी भी हैं, जिनका मानसिक स्थिति साधारणतः कुछ सम्बन्ध नहीं होता—जैसे, पाचन क्रिया। शिक्षा-दीक्षा कारण व्यक्ति अपनी मानसिक क्रिया की शारीरिक अभिव्यक्ति को दम करना भी सीख लेता है। इसी प्रकार नाटक के पात्र शारीरिक अभिव्यि के द्वारा मानसिक प्रक्रियाओं का प्रदर्शन करते हैं, किन्तु वास्तव में उ उस समय प्रदर्शित मानसिक प्रक्रिया की अनुभूति नहीं होती।

मनोविज्ञान का क्षेत्र मानसिक प्रक्रिया है, शारीरिक नहीं। इसलि मनोविज्ञान में केवल उसी शारीरिक स्थिति का अध्ययन रहता है, मानसिक क्रिया को प्रेरित करती है, या उससे प्रेरणा पाती है।

मानसिक विकास नियमित रूप से होता है। मनोविज्ञान इस विका क्रम को हमारे सामने रखने का एक प्रयास है। इस विकास-क्रम का ज्ञ भी हमारे लिए उतना ही आवश्यक है, जितना कि मानसिक क्षमता त मानसिक प्रक्रियाओं का विवरण। मानसिक-क्रम से अनभिज्ञ होने कारण हम बच्चे से प्रायः वह आशाएँ बाँध लेते हैं, जिन्हें वह साधारणत पूरा नहीं कर सकते। ऐसी आशाएँ केवल निष्फल ही नहीं हो बच्चे के मन में कुण्ठा भी उत्पन्न कर देती हैं। इसलिए वातावरण रुचिकर तथा उपयोगी बनाने के लिए मनोविज्ञान का अध्यय आवश्यक है।

यद्यपि मानसिक विकास नियमानुसार होता है, किन्तु विकास-क्र के नियम बिलकुल अटल नहीं हैं। वातावरण के संपर्क से व्यक्ति के सह व्यवहार में बहुत कुछ परिवर्तन आ जाते हैं, जैसे, इकलौते या सबसे बच्चे की अपेक्षा दूसरे बच्चे जल्दी बोलने लगते हैं। वातावरण के संप का प्रभाव व्यक्ति की क्रियाकुशलता तथा रुचियों पर इतना गम्भीर रह है कि बाल्यकाल से ही किसी बालक के दूर-भविष्य का निश्चित अनुम नहीं लगाया जा सकता।

तो भी यह कहा जा सकता है कि साधारणतः—

(i) सबकी शारीरिक आवश्यकताएँ प्रायः एक-सी होती हैं।

(ii) समान आयु के बालकों में प्रायः एक-सी मानसिक शक्तियाँ लगभग एक ही आयु में विकसित होती हैं। इसी कारण समवयस्क बच्चों के क्रिया-कलाप में समानता रहती है।

(iii) बच्चे का मानसिक विकास जिस गति से प्रारंभ होता है, वह गति अन्य बच्चों की अपेक्षा, वातावरण अनुकूल होने पर, सदा वैसी ही बनी रहती है। यदि कोई बच्चा शैशव से ही अपने समवयस्क बच्चों की अपेक्षा अधिक तीव्र बुद्धि का है, तो उसका अपने साथियों से यह अपेक्षाकृत भेद भविष्य में भी वैसा ही बना रहता है। यदि किसी दो वर्ष के बच्चे की मानसिक तीव्रता तीन वर्ष के बालक के समान है, तो साधारणतया यह अनुमान लगाया जा सकता है कि छः वर्ष की आयु में उसकी मानसिक तीव्रता नौ वर्ष के बालक के समान होगी—अर्थात् उसकी मानसिक तीव्रता अपने समवयस्क बच्चों से अपेक्षाकृत सदा ड्योढ़ी रहेगी। इसी प्रकार यदि दो वर्ष के बालक की मानसिक तीव्रता केवल एक वर्ष के बालक के समान है, तो दस वर्ष की आयु में वह केवल पाँच वर्ष की मानसिक तीव्रता को ही प्राप्त कर सकता है; अर्थात् उसकी मानसिक तीव्रता समवयस्क बालकों से सदा आधी ही रहेगी।

(iv) बच्चों में परस्पर विभिन्नता किसी एक गुण या दोष की नहीं होती, बल्कि मानसिक वृत्ति तथा स्वभाव की होती है। बच्चे की रुचियाँ जान लेने के पश्चात् यह अनुमान सुगमता से लगाया जा सकता है कि उसके लिए किस प्रकार के कार्य उपयुक्त होंगे।

(v) चूँकि मनुष्य की भिन्न-भिन्न रुचियों में अनुबन्ध रहता है, इसलिए उसकी कुछ रुचियों को जान लेने के पश्चात् उसकी मानसिक वृत्ति का अनुमान लगाना सहज हो जाता है। मनोविज्ञान विभिन्न

व्यक्तियों के व्यवहार के सामान्य रूप का परिचय है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के कारण, मनुष्य के व्यवहार में व्यक्तिगत भेद बहुत आ जाते हैं। व्यक्ति के जीवन में वैयक्तिक भिन्नता का बहुत महत्व है। व्यक्ति-विशेष की मानसिक तथा शारीरिक विलक्षणताओं के सामूहिक योग से उसके व्यवहार में जो विशिष्ट एकत्व आ जाता है उसे ही व्यक्तित्व कहते हैं। व्यक्ति की सब परिस्थितियों—शारीरिक, मानसिक तथा परिवेश—को ध्यान में रख कर ही उसके व्यवहार का सही अध्ययन किया जा सकता है।

मनोविज्ञान के अध्ययन से हमें मानसिक क्रिया के सहज गुण तथा साधारण विकासक्रम का ज्ञान होता है। इसके प्रयोग में व्यक्तिगत विशेषता तथा व्यक्ति के परिवेश की विशिष्टता का ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है। मनोविज्ञान के नियमों में वैयक्तिक भिन्नता का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। चूँकि मनोविज्ञान के नियम विभिन्न व्यक्तियों के व्यवहार के सामान्य रूप का परिचय हैं, इसलिए इनकी तुलना सहज ही जातिवाचक संज्ञा से की जा सकती है। जिस प्रकार जातिवाचक संज्ञा से हमें किसी वस्तु के जातीय गुण का बोध होता है, उस जाति की किसी वस्तुविशेष के विशिष्ट गुण या स्वभाव का नहीं, ठीक उसी प्रकार मनोविज्ञान के नियमों से हमें मनुष्यमात्र की मानसिक घटना, मनोवृत्तियाँ तथा उनके विकासक्रम का ज्ञान होता है। किसी व्यक्तिविशेष के व्यवहार के अध्ययन के लिए, मनोविज्ञान के सहज नियमों के अतिरिक्त उसकी परिस्थिति का ज्ञान विशेष रूप से आवश्यक है।

मनोविज्ञान की उपयोगिता

मनोविज्ञान में केवल मानसिक शक्तियों, नैसर्गिक इच्छाओं तथा उनके विकासक्रम का ही विवरण नहीं रहता, इनके अतिरिक्त सहज

व्यवहार के उन परिवर्तनों का भी विस्तृत वर्णन रहता है जो भौतिक या सामाजिक संपर्क से व्यक्ति में साधारणतः आ जाते हैं।

संसार के अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य शैशव तथा बाल्यकाल में अधिक असहाय ही नहीं होता, इस असहाय दशा की अवधि भी अधिक दीर्घकालीन रहती है। दूसरों की देखभाल के बिना उसका जीवित रह जाना ही असम्भव है। वह आरम्भ से ही दूसरों के सम्पर्क में रहता है। उनकी देखभाल से उसकी केवल शारीरिक आवश्यकताएँ ही पूरी नहीं होतीं, अन्य नैसर्गिक इच्छाएँ भी विशिष्ट रूप धारण कर लेती हैं। बाल्यकाल में ही बच्चे में बहुत आदतें बन जाती हैं और उसमें विशिष्ट रुचियाँ पैदा हो जाती हैं।

स्वभाव की सफलता के कारण परिवेश के सम्पर्क का प्रभाव बालक पर बहुत गहरा पड़ता है। इसीलिए बालक की प्रवृत्ति के अनुकूल परिवेश होना अत्यन्त आवश्यक है। अनुकूल परिवेश अव्यक्त रूप से बालक के मानसिक विकास में सहायक होता है। उसमें अच्छी रुचियों और आदतों की नींव पड़ जाती है; परिवेश के प्रतिकूल होने पर बालक का मन कुण्ठित हो जाने की सम्भावना रहती है।

परिवेश की अनुकूलता या प्रतिकूलता की जाँच व्यक्ति तभी कर सकता है जब वह मनोविज्ञान से भलीभाँति परिचित हो। इसलिए माता-पिता तथा अध्यापक के लिए मनोविज्ञान का अध्ययन उत्तम ही नहीं, अत्यन्त आवश्यक भी है। प्रत्येक शिक्षाप्रणाली का मुख्य उद्देश्य बच्चे के सहज गुणों को विकसित करना तथा उन्हें समाज के लिए उपयोगी बनाना है। प्रत्येक बालक में कुछ गुण या रुचियाँ स्वाभाविक रूप से पाई जाती हैं। अध्यापक का यह कर्तव्य है कि वह अपनी योग्यता तथा सहानुभूति से बच्चे के सहज गुणों के विकास में उसे सहयोग दे। अध्यापक इस कठिन काम को सफलतापूर्वक तभी कर

सकते हैं जब उन्हें बच्चे की मानसिक वृत्तियों तथा उनके विकास-क्रम का पूरा-पूरा बोध हो।

कितने ही अध्यापक मनोविज्ञान से अनभिज्ञ रहने के कारण, बच्चे में असम्भावित गुण पैदा करने का विफल प्रयास करने लगते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वह इस असाध्य कार्य को बच्चे के हित से प्रेरित होकर अपने पर लाद लेते हैं। उनकी अपनी विफलता उनके मन को खिन्न कर देती है, और तब शिक्षा-सम्बन्धी सब कार्य उनके लिए अरुचिकर हो जाते हैं। साथ ही यह विफल प्रयास बच्चे के लिए बहुत अहितकर हो जाता है। वह बार-बार की विफलता से क्षुब्ध होकर या तो अपने में ही सिमट जाता है, अथवा समाज के प्रति कटु हो, समाज-विरोधी धन्धों में जुट जाता है।

बच्चे के हित उन्हीं हाथों में सुरक्षित रह सकते हैं, जिन्हें उनकी मानसिक वृत्ति, नैसर्गिक इच्छाओं, भावना तथा उनके विकासक्रम का पूरा-पूरा ज्ञान हो और साथ ही उनके अन्दर बच्चे के प्रति सहानुभूति हो।

मनोविज्ञान की मुख्य विधियाँ

मनोविज्ञान की मुख्य विधियाँ निम्नलिखित हैं :—

(१) निरीक्षण

(२) परीक्षण

(३) अन्तः प्रेक्षण

निरीक्षण

व्यक्ति का व्यवहार उसकी मानसिक शक्ति, प्रवृत्ति, भावना तथा अन्य मानसिक क्रियाओं का प्रकट रूप है। मनुष्य का व्यवहार साधारणतः उसकी मानसिक अवस्था का प्रतिबिम्ब होता है, इसलिए व्यवहार

के निरीक्षण द्वारा हम उसकी मानसिक स्थिति का सफलतापूर्वक अध्ययन कर सकते हैं।

निरीक्षण में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि निरीक्षक घटना का द्रष्टामात्र ही रहे। उसके कारण घटना में कोई परिवर्तन न होने पाये और उसका निरीक्षण निष्पक्ष रहे। सही निरीक्षण तभी हो सकता है जब कि निरीक्षण के समय भी घटना अपनी साधारण गति और रूप में चलती रहती है।

निरीक्षण की विधि सभी विज्ञान के क्षेत्रों में प्रचलित है। अनेक विज्ञान-क्षेत्र तो इस प्रकार के हैं कि वहाँ केवल निरीक्षण की विधि ही प्रयोग में लाई जा सकती है, जैसे नक्षत्र विद्या। सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में भी निरीक्षण की विधि ही बहुधा उत्तम मानी जाती है। नैतिक शास्त्र के विधानों को समझने के लिए ऐतिहासिक तथा सामाजिक घटनाओं का निरीक्षण बहुत उपयोगी सिद्ध होता है।

निरीक्षण में निम्नलिखित कठिनाइयाँ विशेष रूप से बाधक होती हैं:

(१) निरीक्षक की अपनी मनोवृत्ति उसके निरीक्षण को निष्पक्ष नहीं रहने देती। कुछ घटनाएँ महत्वपूर्ण होने पर भी उसकी दृष्टि में नहीं आतीं और कुछ उसके ध्यान को विशेष रूप से अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं। फलस्वरूप, उसका निरीक्षण या तो अधूरा ही रह जाता है, और या उसकी अपनी मानसिक दशा का प्रतिबिम्ब बन जाता है। जैसे कि, माता अपने बच्चे में प्रायः गुण ही देखती है और उन्हें विशेष महत्व देती है। बच्चे के दोष या तो उसकी दृष्टि में आते ही नहीं, और यदि आते भी हैं तो उनकी उचित विवेचना नहीं हो पाती।

(२) निरीक्षण केवल उन घटनाओं का होता है जो स्वतः अपने सहज स्वाभाविक रूप में प्रगट हों। इसलिए निरीक्षण का बहुत-सा समय इन घटनाओं की प्रतीक्षा में यों ही नष्ट हो जाता है।

(३) निरीक्षण में घटना को शेष वातावरण से अलग करना कठिन होता है। कभी-कभी तो वातावरण का प्रभाव घटना पर इस अव्यक्त रूप से रहता है कि निरीक्षक को उसका बोध भी नहीं होता। इसीलिए यह उचित है कि निरीक्षण के परिणामों को परीक्षण से जाँच लिया जाय।

इन त्रुटियों के रहने पर भी निरीक्षण मनोविज्ञान की एक मुख्य और महत्वपूर्ण विधि है, जिसके प्रयोग से परीक्षण के लिये विचार और सामग्री मिलती है।

बहुत-सी मानसिक स्थितियाँ ऐसी होती हैं जिन्हें परीक्षण के लिए व्यवस्थित करना यदि असम्भव नहीं तो असुविधाजनक या कठिन अवश्य होता है। ऐसी मानसिक व्यवस्था को समझने के लिए निरीक्षण अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होता है।

निरीक्षण की त्रुटियों को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि :—

(i) निरीक्षक इस विधि के प्रयोग में निपुण हों।

(ii) घटना का निरीक्षण एक व्यक्ति द्वारा ही न होकर कुछ निरीक्षकों द्वारा मिलकर किया जाय।

(iii) निरीक्षण एक से अधिक बार किया जाय।

परीक्षण

परीक्षण उस घटना के निरीक्षण को कहते हैं जिसे प्रेक्षक निरीक्षण के हेतु अपनी इच्छा के अनुसार बनाता और बदलता है। घटना प्रेक्षक की अपनी बनाई हुई होती है, इसलिए उसे उस घटना की पूरी-पूरी जानकारी रहती है। प्रेक्षक घटना के वातावरण को जैसे चाहे बदल सकता है, उसमें तरह-तरह के परिवर्तन लाकर उसकी पूरी-पूरी छान-बीन कर सकता है। चूँकि घटना प्रेक्षक की अपनी व्यवस्था के अनुसार होती

है, इसलिये वह अपनी सुविधा के अनुसार उसका निर्माण तथा उसमें परिवर्तन, आवृत्ति आदि करता है।

उदाहरण के लिये, यह जाँचने के लिये कि मानसिक तीव्रता पर उपवास का क्या प्रभाव होता है, उपवास की अवधि को घटा-बढ़ाकर मानसिक तीव्रता पर उसके प्रभाव का सही अनुमान लगाया जा सकता है।

इस परीक्षण के लिए पहले साधारण स्थिति में कुछ व्यक्तियों की बुद्धि-परीक्षा कर लेना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में परीक्षा द्वारा इसका अनुमान लगा लेना चाहिये कि जिन व्यक्तियों पर परीक्षण हो वे साधारण स्थिति में नियत समय में कितना और कैसा काम कर सकते हैं। इसके पश्चात् उन्हें कुछ परिमित समय के लिए भूखा रखकर उनकी क्रिया-कुशलता देखना होगा। इस प्रकार उपवास की अवधि को घटा-बढ़ाकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि किस स्थिति में तथा किस सीमा तक उपवास मानसिक तीव्रता में सहायक होता है और कब वह मानसिक तीव्रता में बाधक बनने लगता है।

परीक्षण जितने अधिक व्यक्तियों पर और जितनी भिन्न-भिन्न स्थितियों में किया जाता है, उसका परिणाम उतना ही सन्तोषजनक होता है। एक से अधिक प्रेक्षक होने से परीक्षणफल के अधिक विश्वसनीय होने की सम्भावना रहती है। इसलिए यह उचित है कि जहाँतक हो सके, परीक्षण के समय एक से अधिक प्रेक्षक हों।

मनोविज्ञान में परीक्षण का स्थान बहुत ऊँचा है। परीक्षण के लिए प्रायः पशु-पक्षी लिये जाते हैं; क्योंकि पशु की—

(i) मानसिक अवस्था बहुत सरल और सहज रहती है,

(ii) उनके व्यवहार पर दूरवर्ती वातावरण का बहुत प्रभाव नहीं रहता, और

(iii) उनके जीवन की पूर्व घटनाओं का भी पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

बहुत-सी स्थितियों में मनुष्यों पर भी सफलतापूर्वक परीक्षण किया जा सकता है, परन्तु कुछ घटनाएँ ऐसी भी होती हैं जो मनुष्य के लिए बहुत महत्वपूर्ण रहती हैं। उनका प्रभाव उसके जीवन पर बहुत गहरा रहता है। इसलिए परीक्षण के लिए मनुष्य के जीवन में ऐसी घटनाओं का संयोजन नहीं किया जा सकता। असंभव न होते हुए भी यह संयोजन उचित नहीं होता। इनका अध्ययन निरीक्षण से किया जा सकता है। मनुष्य-जीवन में इन घटनाओं का निरीक्षण करने के उपरान्त, उनसे प्राप्त परिणामों की सत्यता की स्थापना पशु-जीवन पर परीक्षण कर जाँची जा सकती है।

अन्तः प्रेक्षण

अन्तः प्रेक्षण से हम अपनी मानसिक अवस्था, प्रेरणा, भावना तथा प्रक्रिया का निरीक्षण करते हैं। इसमें मनुष्य अपने ध्यान को बाहरी दुनिया से हटाकर अपने मन के निरीक्षण की ओर लगाता है। अन्तः प्रेक्षण में मनुष्य अपने मन का निरीक्षण इसलिए नहीं करता कि वह उसका निजी मन है, परन्तु इसलिए करता है कि यही एक मन है जिसकी मनोवृत्तियाँ, भावना और प्रक्रिया को वह सीधे-सीधे देख सकता है।

साधारण निरीक्षण का क्षेत्र मनुष्य का व्यवहार ही है, इस व्यवहार के पीछे किन मनोवृत्तियों का प्रवाह है, किस वेग से मनोगति चल रही है और किस ओर को वह प्रवाहित है, यह सब समझने के लिए अन्तः प्रेक्षण अनिवार्य है

कठिनाइयाँ

अन्तः प्रेक्षण भी एक प्रकार का निरीक्षण ही है। अन्तःप्रेक्षण और निरीक्षण में केवल यही भेद है कि निरीक्षण में मनुष्य का ध्यान

बाहरी व्यवहार पर होता है, और अन्तःप्रेक्षण में सीधे-सीधे मानसिक अवस्था पर। एक प्रकार का निरीक्षण ही होने के कारण, निरीक्षण की सारी कठिनाइयाँ अन्तः प्रेक्षण में पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त अन्तः प्रेक्षण की अपनी विशेषता के कारण कुछ अन्य कठिनाइयाँ भी आ जाती हैं।

(i) बच्चे या मन्द बुद्धि के प्राणी अन्तःप्रेक्षण नहीं कर सकते। उनमें निरीक्षण के ध्येय को समझने की क्षमता नहीं रहती। इसके अतिरिक्त भाषा की अपूर्णता उन्हें इस कार्य में और भी अक्षम रखती है।

(ii) मानसिक प्रक्रिया इतनी तीव्र रहती है और उनमें परिवर्तन इस तीव्र गति से आते हैं कि उनका निरीक्षण करना असंभव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है।

(iii) जब हम अन्तःप्रेक्षण करने लगते हैं तो निरीक्षण-भाव के आते ही मानसिक स्थिति बदल जाती है। क्रोध में यदि कोई अपने मन की इस अवस्था का निरीक्षण करना चाहे तो क्रोध का अनुभव ही बहुत कुछ बदल जाता है।

(iv) अन्तःप्रेक्षण में प्रेक्षक तथा उनके निरीक्षण के विषय में इतना घनिष्ठ संबन्ध है कि प्रेक्षक के लिए निष्पक्ष रह सकना बहुत ही कठिन हो जाता है।

(v) अन्तःप्रेक्षण में मनुष्य का ध्यान निरीक्षण की घटना पर स्थिर नहीं रह पाता। उसका ध्यान निरीक्षण-विषय तथा निरीक्षण में इतना बँटा रहता है कि निरीक्षण करना बहुत कठिन हो जाता है।

इन्हीं कारणों से कुछ मनोवैज्ञानिक अन्तःप्रेक्षण का घोर विरोध करते हैं। किन्तु अन्तःप्रेक्षण अपनी उपयोगिता के कारण, अन्य मनोवैज्ञानिक विधियों से पृथक् नहीं किया जा सकता। अन्तःप्रेक्षण से हम मानसिक प्रक्रिया का सीधे-सीधे निरीक्षण कर सकते हैं। मनोविज्ञान में जो सहायता हमें अन्तःप्रेक्षण से मिलती है वह किसी भी

अन्य विधि से नहीं मिल सकती। अन्तःप्रेक्षण से हम मन की गहराई तक पहुँच जाते हैं। इस विधि की सहायता से हम मानसिक तथा शारीरिक व्यवहार के परस्पर सम्बध को समझ पाते हैं। मानसिक तथा शारीरिक व्यवहार के परस्पर सम्बन्ध को समझ लेने के पश्चात् व्यक्ति के व्यवहार के निरीक्षण से उसकी मानसिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

इसमें सन्देह नहीं कि अन्तःप्रेक्षण की विधि में बहुत बाधाएँ हैं। इनको दूर करने के लिए यही उत्तम उपाय है कि मानसिक प्रक्रिया को निर्विघ्न अपनी सहज स्वाभाविक गति पर प्रवाहित होने दिया जाय और तब उस प्रक्रिया के उपरान्त स्मृति की सहायता से उसका निरीक्षण किया जाय। इस विधि को पश्चाद्दर्शी-अन्तःप्रेक्षण कहते हैं।

इन तीन मुख्य विधियों के अतिरिक्त दो और विधियाँ भी प्रयोग में लाई जाती हैं :—

मूलविकास विधि

इस विधि से बढ़ते हुए बच्चे की मानसिक वृत्ति तथा विकास का निरीक्षण किया जाता है। इससे यह अनुामन लगाया जाता है कि किस प्रकार और किस गति से मानव की मानसिक शक्तियों का विकास होता है और वातावरण का उस विकासक्रम पर क्या प्रभाव पड़ता है।

इस विधि का प्रयोग मानसिक विकासक्रम की साधारण रीति को समझने के लिए किया जाता है। किसी-किसी बालक के जीवन में कोई महत्वपूर्ण घटना होने की सम्भावना होती है तो उसके व्यवहार पर उस घटना के प्रभाव को जानने के लिये इस विधि का प्रयोग होता है। बच्चे का नया बहन-भाई होने वाला हो तो उस घटना से उसके मन पर क्या प्रभाव होगा इत्यादि जानने के लिए मूलविकास विधि को प्रयोग में लाते हैं।

जीवनवृत्त विधि

किसी व्यक्ति की भूतपूर्व घटनाओं का संक्षिप्त विवरण हमें उसकी वर्तमान अवस्था को समझने में बहुत सहायता देता है। यह विधि प्रायः उन व्यक्तियों के सम्बन्ध में प्रयोग की जाती है जो किसी मानसिक विकार से ग्रस्त होते हैं। व्यक्ति का जीवन एक लम्बी लड़ी है। प्रत्येक पूर्व घटना का प्रभाव स्फुट या अस्फुट ढंग से उसके व्यवहार में बना रहता है। इसलिये उनकी तात्कालिक मानसिक अवस्था के कारण को समझने के लिए यह विधि प्रयोग में लाई जाती है। चूँकि अकारण ही कोई मनुष्य अपने पूर्व-जीवन की कथा दूसरे के सामने नहीं रखना चाहता, इसलिये यह विधि प्रायः उन्हीं व्यक्तियों के व्यवहार को समझने में प्रयोग की जाती है, जो किसी विशेष मानसिक द्वन्द्व, अस्थिरता या क्लेश से पीड़ित हों।

इस विधि के लिए मनुष्य की जीवन-घटनाओं का विस्तारपूर्वक विवरण आवश्यक है। इसलिए उसके नित्य संपर्क में आनेवाले सब ही व्यक्तियों से उसकी जीवन-घटनाओं का वर्णन एकत्रित करना चाहिए। मनुष्य का व्यवहार भिन्न-भिन्न स्थिति या व्यवस्थाओं में भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है। उसकी मानसिक अवस्था स्थितियों के अनुसार बदलती रहती हैं। बच्चे का जो व्यवहार घर पर है, वह स्कूल में नहीं, और जो स्कूल में है वह साथियों में नहीं होता। इसी कारण उसका जीवन-वृत्त इन सबसे इकट्ठा करना पड़ता है। निकट-सम्बन्धी बालक को एक ही रूप में जानते हैं। इसलिए उनका विवेचन महत्वपूर्ण होते हुए भी पर्याप्त नहीं होता।

बुद्धि

बुद्धि हमारी वह मानसिक क्षमता है जिससे हम वातावरण को समझते-बूझते हैं और अपने व्यवहार को उसके अनुकूल बनाते हैं। व्यक्ति की क्रियाविधि ही उसकी बुद्धि की सूचक है। बुद्धि क्रिया का लक्षण है, भले ही क्रिया में मानसिक विवेचना की प्रधानता हो, या शारीरिक परिश्रम की। इच्छा से व्यक्ति को क्रिया की प्रेरणा मिलती है और बुद्धि क्रिया को सुगम तथा सफल बनाने का साधन है। प्राणी की क्रिया-निपुणता उसकी बुद्धि के अनुसार ही होती है।

प्राणियों में सबसे तीव्र बुद्धि मनुष्य की है। इसीलिये मनुष्य सब प्राणियों से अधिक क्रियाकुशल है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्रिया को अपने पूर्व अनुभव की सहायता से सुगम तथा सफल बनाने का प्रयत्न करता है, जिससे उसकी क्रिया-विधि में व्यक्तिगत भेद आ जाते हैं। बहुत से व्यक्तियों में एक-सी इच्छा रहने पर भी उसकी क्रिया-विधि एक-सी नहीं रहती। तीक्ष्ण बुद्धि का प्राणी केवल प्रत्यक्ष स्थिति को ही महत्व नहीं देता, उससे सम्बन्धित सब घटनाओं पर यथायोग्य ध्यान देता है। इसी तरह वह किसी क्रियाविधि को अपनाने से पहले उसके वर्तमान तथा भविष्य सभी परिणामों का उचित विवेचन करता है। पूर्व अनुभवों की स्मृति वर्तमान समस्या को सुलझाने में बहुत सहायक होती है, परन्तु स्मृति को प्रयोग में लाते समय वर्तमान स्थिति की अपनी विशेषता को दृष्टि में रखना अत्यन्त आवश्यक है। जो प्राणी पूर्व अनुभव के प्रयोग में वर्तमान स्थिति की विशेषता को ध्यान में नहीं लाता, उसकी क्रियाविधि स्मृतिसिद्ध होते हुए भी, स्थिति के अनुकूल नहीं होती। बुद्धिमान प्राणी वही है जो अपने पूर्व अनुभवों की स्मृति के आधार

पर, वर्तमान स्थिति की विशेषता को ध्यान में रखते हुए अपनी क्रिया-विधि को सब प्रकार से उसके अनुकूल बनाता है; उससे वर्तमान तथा भविष्य के सुख की आशा कर सकता है ।

पशु-पक्षी तथा कीटाणु में भी बुद्धि के लक्षण पाये जाते हैं, परन्तु उनकी बुद्धि मनुष्य से अपेक्षाकृत कम रहती है । कीटाणुवर्ग से पक्षी-वर्ग और पक्षीवर्ग से पशुवर्ग अधिक बुद्धिमान होता है ।

कीटाणु सब प्राणियों से मन्द-बुद्धि का जीव है । इसलिए उसकी क्रिया में विकास की कुछ संभावना नहीं पाई जाती । अर्थात्, उसकी क्रिया स्वाभाविक ही रहती है । जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने की विधि एक जाति के सब प्राणियों में एक समान रहती है । बुद्धि की मन्दता के कारण उनकी क्रिया में पूर्व अनुभव का कुछ भी प्रभाव दिखाई नहीं देता और न वह अपनी क्रिया के लक्ष्य को ही समझ पाते हैं । फल-स्वरूप, उनकी प्रेरणा, चेष्टा तथा क्रिया सब प्रवृत्तिमूलक और सहज रहती हैं ।

पक्षी कीटाणु से अधिक बुद्धिमान होते हैं । इसी कारण बार-बार अड़चन आने पर उनकी क्रिया-विधि में परिवर्तन आ जाता है । वे या तो उसे छोड़ ही देते हैं, और या उससे मिलती-जुलती कुछ और विधि अपना लेते हैं । परन्तु उनकी बुद्धि इतनी कम है कि वे बहुत कुछ नहीं सीख सकते, और न वे अपनी क्रिया के भविष्य-परिणाम को ही सोच सकते हैं । इसलिए यदि उनकी स्वाभाविक क्रिया में कुछ विशेष तात्कालिक अड़चन न हो, तो वे उसमें जुटे रहते हैं, भले ही उस क्रिया का अन्तिम परिणाम कुछ भी क्यों न निकले । पक्षी अपना घोसला बनाते समय यह नहीं सोच पाता कि उसके बच्चे उस स्थान पर सुरक्षित रह भी पायेंगे या नहीं । इतना ही नहीं, वह प्रति वर्ष अपना घोसला एक ही स्थान पर बनाता जाता है, भले ही उसके बच्चे वहाँ कभी भी सुरक्षित न रह पाते हों ।

पक्षियों से पशु अधिक बुद्धिमान होता है। परन्तु बुद्धि में सारे पशु एक समान नहीं होते। पशुवर्ग में पशुओं की बहुत जातियाँ हैं। उनमें से कुछ तो ऐसी हैं, जिनकी बुद्धि पक्षियों से कुछ ही अधिक होती है। और कुछ पशु इतनी तीव्र बुद्धि के होते हैं कि उनकी तुलना सहज ही दो-ढाई वर्षीय बालक से की जा सकती है। उनमें सीखने की शक्ति बहुत प्रबल रहती है। उसकी क्रिया पर अनुभव का प्रभाव स्पष्ट रहता है। अनुभव के प्रभाव से उनकी क्रिया बदलती रहती है। यद्यपि वह अपनी क्रिया के दूरस्थ परिणाम को नहीं सोच सकते, तो भी निकट भविष्य में होनेवाले परिणाम को समझने की क्षमता उनमें अवश्य पाई जाती है। हमें उनकी इस शक्ति का प्रमाण कोहलर के बनमानुस नामक पशु के सीखने की विधि से स्पष्ट मिलता है।

मनुष्य सब प्राणियों से तीव्र बुद्धि का जीव है। उसमें विवेचना-शक्ति है, जिससे वह अपनी क्रिया के लक्ष्य को सही-सही समझ सकता है। उसे अपनी इच्छा तथा चेष्टा का भी पूरा-पूरा ज्ञान रहता है। उसकी क्रिया-विधि से उसकी दूरदर्शिता भी सिद्ध होती है। मनुष्य जितना अधिक तीव्र बुद्धि का होता है, उतना ही वह दूरदर्शी भी रहता है। परन्तु सब मनुष्य की बुद्धि एक समान नहीं होती। उनमें बहुत व्यक्तिगत भेद पाया जाता है। कुछ व्यक्ति तो बहुत ही तीव्र बुद्धि के होते हैं, और कुछ बिलकुल मूर्ख। अधिकतर व्यक्ति साधारण बुद्धि के होते हैं।

बुद्धि का विकास

व्यक्ति की बुद्धि, वास्तव में, उसके व्यवहार का सहज गुण है। परन्तु इस स्वाभाविक गुण के पूर्ण विकास में कई वर्ष लग जाते हैं। बालक ज्यों-ज्यों आयु में बढ़ता है, उसकी बुद्धि में भी वृद्धि होती जाती है। अर्थात् वह अपनी समझ-बूझ तथा क्रिया-विधि में भी कुशल होता

जाता है। यह मानसिक वृद्धि, शारीरिक वृद्धि की भाँति पहले तो बहुत तीव्र गति से होती है, परन्तु कुछ वर्ष पश्चात् उसकी गति
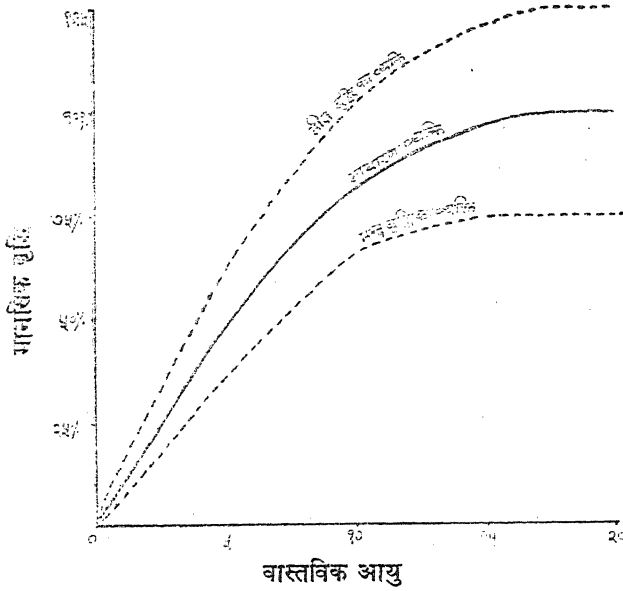
क्रमशः मन्द पड़ती जाती है। किशोरावस्था में जिस प्रकार लड़के-लड़की के शारीरिक विकास की गति में भिन्नता आ जाती है, ठीक उसी प्रकार उनके मानसिक विकास की गति भी भिन्न हो जाती है। लगभग १५-१८ वर्ष की आयु में बालक की बुद्धि पूर्ण विकास को पहुँच जाती है।

पंद्रह से अट्ठारह वर्ष के पश्चात् व्यक्ति इस पूर्ण विकसित मानसिक शक्ति की सहायता से, सम्पर्क में आनेवाली प्रत्येक स्थिति को समझता और बूझता है और नये अनुभव ग्रहण करता है; परन्तु उसकी बुद्धि में और अधिक वृद्धि नहीं होती। वह लगभग ५० वर्ष की आयु तक ज्यों की त्यों

ही बनी रहती है। तत्पश्चात् उसमें शारीरिक अवस्था के अनुसार धीरे-धीरे कुछ मन्दता आने लगती है।

मानसिक आयु

बुद्धि मनुष्य की विवेचना शक्ति तथा क्रियाविधि का लक्षण है। इसलिए व्यक्ति की बुद्धि का अनुमान उसकी क्रियाविधि तथा विवेचना-शक्ति की परीक्षा से ही लगाया जा सकता है। व्यक्ति जितनी अधिक जटिल समस्या को समझ सकता है, और जितना अधिक कठिन कार्य सुगमता से कर सकता है, उतनी ही उसकी बुद्धि तीव्र है। जो कार्य पाँच वर्ष के बालक के लिए कठिन होते हैं, और जो समस्याएँ उसकी विवेचना-शक्ति से बाहर की होती है, वही कार्य सात वर्ष के बालक के लिए बहुत सरल हो सकते हैं। इसीलिए पाँच वर्ष के बालक की मानसिक तीव्रता, सात वर्ष के बालक से साधारणतया कम रहती है। यदि कोई पाँच वर्ष का बालक, सात वर्ष के बालक की भाँति उन समस्याओं को सुलझा लेता है तो उसकी मानसिक आयु सात वर्ष के बालक के समान होती है। मानसिक आयु का बिचार फ्रांस के बीने नामक मनोवैज्ञानिक ने सबसे प्रथम हमारे सामने रखा।

बुद्धि-लब्धि

किसी व्यक्ति की मानसिक आयु को जानने पर हम यह अनुमान तो लगा सकते हैं कि उसकी मानसिक तीव्रता कैसी है, अर्थात् वह किस हद तक किसी समस्या को समझ सकता है। परन्तु केवल मानसिक आयु के जानने से हम यह नहीं जान पाते कि वह व्यक्ति तीक्ष्ण बुद्धि का है या मन्द बुद्धि का, या साधारण बुद्धि का। दो बालकों की मानसिक आयु एक-सी होने पर भी यदि उनकी वास्तविक आयु भिन्न है तो वह

दोनों एक समान बुद्धिमान नहीं कहे जाते। इनमें से जो आयु में छोटा है, वह दूसरे की अपेक्षा अधिक तीव्र बुद्धि का है। अर्थात् बुद्धि की तीव्रता के अनुमान के लिए मानसिक आयु के साथ-साथ, वास्तविक आयु का भी सही-सही ज्ञान रहना चाहिए।

यदि बालक की वास्तविक तथा मानसिक आयु एक समान हैं तो वह साधारण बुद्धि का बालक है। परन्तु यदि मानसिक आयु वास्तविक आयु से अधिक है, तो वह तीव्र बुद्धि का बालक है। इसी प्रकार यदि उसकी मानसिक आयु वास्तविक आयु से कम है, तो वह मन्द बुद्धि का बालक है। इस तरह मानसिक तथा वास्तविक आयु के परस्पर सम्बन्ध को जानने पर ही हम उसकी बुद्धि की तीव्रता का अनुमान लगा सकते हैं। इनके पारस्परिक सम्बन्ध को जाँचने की विधि स्टर्न ने १९१२ में प्रचलित की, जो बुद्धि-लब्धि के नाम से प्रसिद्ध है।

बुद्धि-लब्धि, अर्थात् आई, क्यू, (I. Q.) को निकालने की विधि—

$$\text{बुद्धि-लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} \times १००$$

साधारण व्यक्ति की वास्तविक तथा मानसिक आयु लगभग एक-सी होने के कारण उसकी बुद्धि-लब्धि लगभग १०० होती है।

जिन व्यक्तियों की मानसिक आयु, वास्तविक आयु से अधिक रहती है, उनकी बुद्धि-लब्धि, (अर्थात् आई, क्यू) १०० से अधिक होती है। १०० से अधिक बुद्धि-लब्धि तीव्र बुद्धि की सूचक है।

जिन व्यक्तियों की मानसिक आयु वास्तविक आयु से कम रहती है, उनकी बुद्धि-लब्धि १०० से कम होती है और वह मन्द-बुद्धि के कहे जाते हैं।

बुद्धि-लब्धि को निकालते समय निम्नलिखित बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं :—

(१) बुद्धि-लब्धि (अर्थात् आई. क्यू.) दो आयु का अनुपात है। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि हमें इन दोनों का सही-सही अनुमान हो। इनमें से एक के सम्बन्ध में थोड़ी-सी भी गलती व्यक्ति की बुद्धि-लब्धि में बहुत बड़ा अन्तर ला सकती है।

(२) बुद्धि-लब्धि के निकालने में भाज्य संख्या, अर्थात् व्यक्ति की वास्तविक आयु, जितनी कम रहती है, उसका मानसिक आयु से अन्तर उतना ही अधिक महत्वपूर्ण रहता है। बुद्धि के विकास की गति जीवन के पहले वर्षों में बहुत तीव्र रहती है। व्यक्ति ज्यों-ज्यों बड़ा होता है, उसके मानसिक विकास की गति भी क्रमशः धीमी पड़ती जाती है। इसीलिए मानसिक तथा वास्तविक आयु में एक-सा अन्तर भी भिन्न-भिन्न आयु के व्यक्तियों के लिए अलग-अलग महत्व रखता है। यदि तीन-वर्षीय बालक, मानसिक आयु में एक वर्ष पिछड़ा हुआ है तो उसकी बुद्धि-लब्धि ($\frac{२}{३}$ × १०० = ६६) ६६ के लगभग है, और वह बहुत मन्द बुद्धि का बालक है। परन्तु यदि १० वर्षीय बालक मानसिक आयु में एक वर्ष पिछड़ा हुआ है, तो उसकी बुद्धि-लब्धि ($\frac{९}{१०}$ × १०० = ९०) ९० है, ऐसे बालक की गणना साधारण बच्चों में होती है।

(३) व्यक्ति की बुद्धि लगभग पन्द्रह-अठारह वर्ष की आयु में पूर्ण रूप से विकसित हो जाती है। इसलिए अठारह वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों की बुद्धि-लब्धि निकालने के लिए भाज्य-संख्या बुद्धि के पूर्ण विकास की आयु, अर्थात् अठारह वर्ष ही रहती है। व्यक्ति की वास्तविक आयु नहीं।

यदि किसी व्यक्ति की बुद्धि-लब्धि की एक बार सही जाँच कर ली जाय, तो साधारणतया वह अनुमान सदा वैसा ही बना रहता है, अर्थात् भविष्य में उस अनुमान में कुछ विशेष अन्तर नहीं आता। यद्यपि बालक ज्यों-ज्यों बड़ा होता है, उसकी बुद्धि भी तीव्र होती जाती है, और उसकी मानसिक आयु भी बढ़ती रहती है, परन्तु साथ ही वास्तविक आयु भी

बढ़ती जाती है। इसलिए मानसिक आयु तथा वास्तविक आयु का अन्तर
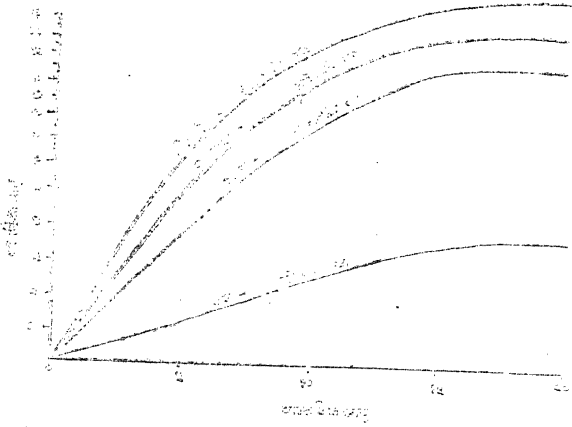
इस चित्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि (i) व्यक्ति की बुद्धिलब्धि साधारणतः एक-सी बनी रहती है। (ii) भिन्न-भिन्न मानसिक तीव्रता के समवयस्क बालकों में आयु के साथ यह भेद परस्पर बढ़ता ही जाता है। संबंध वैसा ही बना रहता है। फलस्वरूप, बाल्य तथा किशोर अवस्था में मानसिक आयु के बढ़ते रहने पर भी व्यक्ति की बुद्धि-लब्धि में साधारणतया कुछ अन्तर नहीं आता।

बुद्धि-लब्धि के एक-से बने रहने से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि बालक का बुद्धि-विकास जिस मंद या तीव्र गति से आरंभ होता है, वह गति अन्य समवयस्क बालकों की मानसिक गति की अपेक्षा सदैव वैसी ही बनी रहती है। इसलिए बच्चे का अपनी आयु के बालकों से मानसिक भेद सापेक्षरूप से बढ़ता ही जाता है। उदाहरण—यदि चार-वर्षीय बालक अपने साथियों से एक वर्ष पिछड़ा है तो आठ वर्ष की आयु में वह उनसे दो वर्ष पिछड़ जाता है। इसी तरह बारह वर्ष की आयु में उसकी बुद्धि केवल नौ वर्ष के बालक के समान ही होती है।

बुद्धि-लब्धि में अस्थिरता के कारण

साधारणतया व्यक्ति की बुद्धि-लब्धि सदैव एक-सी बनी रहती है, परन्तु यदि किसी बालक के जीवन में कुछ ऐसी घटना हो जाय, जिसके कारण उसका बुद्धि-विकास अपनी सहज गति से डगमगा जाय, तो उसकी बुद्धि-लब्धि में अन्तर आ जाता है; जैसे किसी चिरकाल के रोग से ग्रस्त हो जाना। ऐसा रोग व्यक्ति के बुद्धि-विकास की साधारण गति को रोक देता है, जिससे उसकी बुद्धि-लब्धि कम होने लगती है।

इसी तरह यदि किसी घटना से बुद्धि-विकास की राह में आई अड़चन दूर हो जाय, तो बालक के बुद्धि-विकास की गति तीव्र हो जाती है, जिससे उसकी बुद्धि-लब्धि में उन्नति होने लगती है। किसी कम सुनने वाले बालक को यदि सुनने के यन्त्र दे दिये जायँ, तो उसके पश्चात् उसकी बुद्धि-लब्धि में उन्नति होने लगती है। अर्थात्, उसके बुद्धि-विकास की गति पहिले की अपेक्षा अधिक तीव्र हो जाती है।

बुद्धि की उपयोगिता

बुद्धि, साधारणतया, व्यक्ति की वह मानसिक शक्ति है, जिसके आधार पर वह अपने जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करता है। उसमें आई समस्याओं को समझता बूझता और सुलझाता है। बुद्धि के बल पर वह अपने जीवन को सुखी और सम्पन्न बनाता है। व्यक्ति की क्रिया-कुशलता बहुत हद तक उसकी बुद्धि के अनुसार ही होती है। इसीलिए बुद्धि मनुष्य के जीवन का सुखद वरदान है।

परन्तु यदि साधारण स्थिति में पड़े व्यक्ति की दिन प्रति दिन की क्रिया उसकी तीव्र बुद्धि के प्रतिकूल रहे, तो उसका मन काम से उखड़ने लगता है। क्रियाविधि के अत्यन्त सरल होने के कारण, वह उससे सफलता का आनन्द नहीं पा सकता। वह कार्य उसके लिये इतने अरुचिकर

हो जाते हैं कि वह उन्हें छोड़कर अन्य कुछ भी करने को उतावला हो उठता है। ऐसी दशा में वह कुसंगत मिलने पर सहज ही ग़लत कार्यों में लग सकता है। बहुधा बुद्धि की तीव्रता से प्राप्त दूरदर्शिता उसे ऐसे कार्यों से बचाये रखती है। परन्तु फिर भी उसकी इन धन्धों में लग जाने की संभावना अवश्य बनी रहती है। इसीलिए यह कहा गया है कि स्थिति प्रतिकूल होने पर बुद्धि की तीव्रता भी व्यक्ति के लिए शाप बन सकती है।

मन्द-बुद्धि व्यक्ति सरल क्रिया में सन्तुष्ट तथा सुखी रहता है। वह उससे सफलता का आनन्द प्राप्त करता है और उसमें दत्तचित्त रहता है। इस प्रकार मन्द-बुद्धि का व्यक्ति भी अच्छा नागरिक बनकर समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को पूरा करता है।

परन्तु यदि मन्द-बुद्धि के बालक को किसी जटिल क्रिया में बरबस डाल दिया जाय, तो उसका मन बार-बार की असफलता से खिन्न हो उठता है। निराशा उसमें कुण्ठा और कटुता भर देती है, जिससे वह सहज ही समाज-विरोधी तथा अन्य ग़लत कामों में लग जाता है। बुद्धि की मन्दता के कारण वह अपनी क्रिया के दूर-भविष्य परिणाम नहीं सोच पाता। इसीलिए मन्द बुद्धि के बालकों की उचित देख-भाल और भी आवश्यक है। उनके लिए यह विशेषकर आवश्यक है कि उनकी दिनचर्या उनकी बुद्धि के अनुरूप हो। इन दोनों के अनुकूल होने पर मन्द-बुद्धि का बालक भी समाज-उपयोगी तथा अच्छा नागरिक बन सकता है। बालक के सीखने की क्षमता उसकी बुद्धि, अर्थात् मानसिक आयु, पर निर्भर करती है, वास्तविक आयु पर ही नहीं। यदि केवल वास्तविक आयु को ही दृष्टि में रखा जाय, तो फल बालक तथा समाज दोनों ही के लिए असंतोषजनक होता है।

आगे दिये चित्र में दो बालकों की वास्तविक आयु एक समान है, किन्तु मानसिक आयु में बहुत भेद है। अर्थात् उनमें से एक बालक

साधारण बुद्धि का है और दूसरा मन्द-बुद्धि का। समवयस्क होने पर भी उनके सीखने की क्षमता एक समान नहीं है। यह रेखाएँ इनकी सीखने के सम्बन्ध भेद को स्पष्ट रूप से अंकित करती हैं।
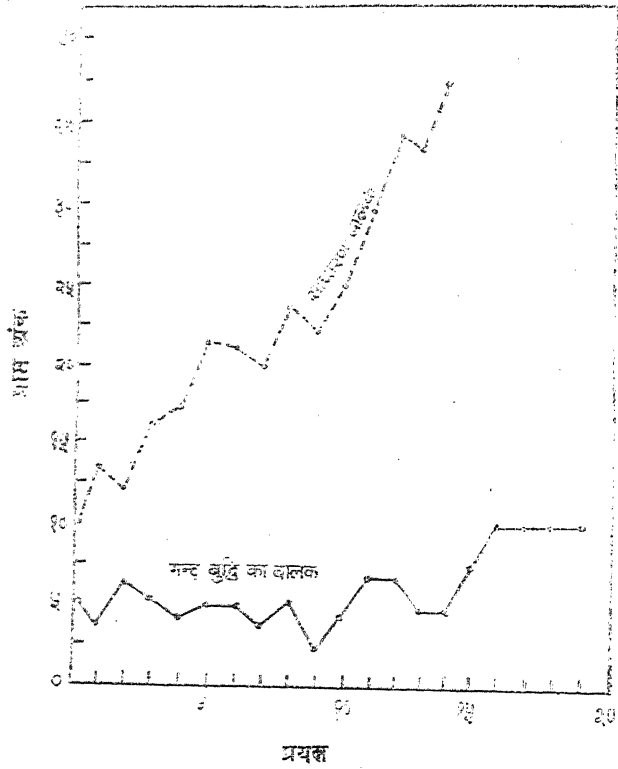
यह रेखाएँ साधारण तथा मन्द-बुद्धि के समवयस्क बालकों के सीखने की क्षमता को अंकित करती है (स्ट्रांग के अनुसार)।

बच्चे की बुद्धि की मन्दता अपने से उसमें कुछ दोष या अपराध नहीं पैदा करती। परन्तु मन्द बुद्धि के बालक पर जब घर या समाज जटिल समस्याओं का बोझ लाद देता है, तो वह कार्य तथा समाज दोनों ही की ओर से कटु हो उनके विरोधी धन्धों में लग जाता है। इसलिए बालक को अपराधी बनाने में दोष उसकी मन्द बुद्धि का नहीं होता, परन्तु उस परिवेश का होता है जो उससे बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँधकर उसके जीवन में खिन्नता और कटुता भर देता है।

बुद्धि-परीक्षण का संक्षिप्त इतिहास

बुद्धि मनुष्य की इतनी महत्वपूर्ण शक्ति है कि पुरातन काल से ही दार्शनिक तथा वैज्ञानिकों का ध्यान इसकी ओर आकर्षित रहा है। बुद्धि क्या है, और किस प्रकार से इसकी तीव्रता का अनुमान लगाया जा सकता है, इस विषय में भाँति-भाँति के मत इन विचारकों ने हमारे सामने रखे हैं।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में गाल का कहना था कि मनुष्य के सिर की बनावट तथा नाप से उसकी बुद्धि का सही-सही अनुमान लगाया जा सकता है। चूँकि मस्तिष्क में ही मानसिक शक्तियों का आसन है, इसलिए व्यक्ति का सिर जितना बड़ा है, उतनी ही उसकी बुद्धि तीव्र है। इसके अतिरिक्त सिर की बनावट से व्यक्तियों की भिन्न-भिन्न रुचियों का भी अनुमान लगाया जा सकता है। उन्होंने अपने इस विचार के समर्थन में उन व्यक्तियों का उदाहरण दिया है जिन्हें प्रायः शिदौले शाह का चूहा कहा जाता है। उनका सिर उनके शरीर के अनुपात से बहुत छोटा होता है। उनमें बुद्धि बहुत कम रहती है, और इनके अङ्गों की गति में परस्पर संबंध का बहुत अभाव पाया जाता है।

लैवेटर ने गाल के मत का समर्थन करते हुए, व्यक्ति के चेहरे की

बनावट, अर्थात् आकृति को बुद्धि-परीक्षण का साधन माना है। उनका कहना था कि सिर के अतिरिक्त चेहरे की आकृति भी मानसिक शक्ति की सूचक है।

लैवेटर के शिष्यों ने चेहरे की मुद्राओं को बहुत महत्त्व दिया है। उनके कथनानुसार व्यक्ति की बुद्धि का अनुमान केवल उसके चेहरे की मुद्रा से ही लग सकता है। मुद्रा को जाँचने के लिए यह आवश्यक नहीं कि व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से ही सामने हो। उसकी तस्वीर से भी उसकी बुद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है। गाल्टन का विचार था कि व्यक्ति की बुद्धि का अनुमान उसकी ज्ञानेन्द्रियों के परीक्षण द्वारा ही लगाया जा सकता है। उनका कहना था कि बुद्धि की तीव्रता ज्ञान पर निर्भर करती है और ज्ञान इन्द्रियों पर। इसलिए व्यक्ति की इन्द्रियाँ जितना अधिक सूक्ष्म ज्ञान ग्रहण कर सकती हैं, उतनी ही उसकी बुद्धि तीव्र होती है। इस विचार के आधार पर ज्ञानेन्द्रियों के सूक्ष्म ज्ञान ग्रहण करने की क्षमता को नापने की ओर बहुत ध्यान दिया गया। परन्तु कुछ समय पश्चात् थार्नडाइक ने अनुबन्ध गुणक के आधार पर यह सिद्ध कर दिया कि मनुष्य की बुद्धि तथा उसकी ज्ञानेन्द्रियों की सूक्ष्म ज्ञान ग्रहण करने की क्षमता में कुछ विशेष संबन्ध नहीं है।

बुद्धि की तीव्रता में बहुत व्यक्तिगत भेद पाया जाता है, परन्तु ज्ञानेन्द्रियों की सूक्ष्म ज्ञान ग्रहण करने की क्षमता सब व्यक्तियों में प्रायः एक समान रहती है। कुछ व्यक्ति बुद्धि की तीव्रता के कारण अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अधिक ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। मन्द-बुद्धि के व्यक्ति उससे उचित लाभ नहीं उठा पाते। किसी ज्ञानेन्द्रिय के अभाव के रहने पर भी, तीव्र बुद्धि के व्यक्ति अपनी अन्य ज्ञानेन्द्रियों द्वारा, मन्द बुद्धि

---

* देखिये अध्याय : मनोविज्ञान में परिगणन का प्रयोग।

व्यक्तियों की अपेक्षा कहीं अधिक ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। जन्म से ही अन्धी, बहरी और गूँगी हेलन-केलर का उदाहरण इस बात का स्पष्ट प्रमाण है।

कार्लपियर्सन ने यह प्रमाणित कर देने पर कि ज्ञानेन्द्रियों की सूक्ष्म-तम ग्रहण करने की क्षमता, तथा बुद्धि में कुछ अधिक पारस्परिक सम्बन्ध नहीं है, मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि की परीक्षण की विधि को बदला। ज्ञानेन्द्रियों की ज्ञान ग्रहण करने की क्षमता की जाँच को छोड़कर क्रिया-त्मक अर्थात् शारीरिक कार्यों द्वारा बुद्धि का अनुमान लगाना आरंभ कर दिया। क्रियाशक्ति को नापने के लिए बहुत यन्त्र बनाये। परन्तु कुछ ही समय पश्चात् [illegible] ने सहसम्बन्ध-गुणक-विधि के आधार पर यह सिद्ध कर दिया कि व्यक्ति की क्रिया-शक्ति तथा उसकी विद्याध्ययन की योग्यता में परस्पर कुछ विशेष सम्बन्ध नहीं है; परन्तु विद्याध्ययन की सफलता तथा बुद्धि में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिए क्रिया-शक्ति को बुद्धि के परीक्षण का साधन नहीं ठहराया जा सकता।

बुद्धि के अनुमान की संतोषजनक विधि सबसे प्रथम बीने नामक फ्रांसीसी ने निकाली। उसके कथनानुसार बुद्धि व्यक्ति का वह सहज गुण है जो उसे अपने परिवेश को समझने-बूझने की शक्ति प्रदान करता है, तथा उसकी क्रियाविधि को स्थिति के अनुकूल बनाता है। इसीलिए बुद्धि का अनुमान लगाने के लिए व्यक्ति के उस ज्ञान की परीक्षा करनी चाहिए जो वह सहज रूप से ही अपने वातावरण से ग्रहण करता है। बुद्धि-परीक्षा में ऐसी कोई समस्या नहीं होनी चाहिए जिसे व्यक्ति विशेष शिक्षा-दीक्षा से ही प्राप्त कर सकता है। इसी कारण स्कूल की साधारण परीक्षा बुद्धि-परीक्षा नहीं होती।

व्यक्ति का परिवेश विभिन्न स्थितियों से परिपूर्ण है। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों का ध्यान संयोगवश अथवा उनकी रुचि के अनुसार अलग-अलग स्थितियों की ओर आकर्षित होता है, जिससे उनके ज्ञान में बहुत

कुछ व्यक्तिगत भिन्नता आ जाती है। इसीलिए बीने ने इस बात पर बहुत ज़ोर दिया है कि बुद्धि की जाँच के लिए, जो बुद्धि-परीक्षा बनाई जायें, उनमें अनेक तथा विभिन्न प्रकार की समस्याएँ होनी चाहिए, ताकि सब बालकों को अपनी स्वाभाविक योग्यता के प्रदर्शन का पूरा-पूरा अवसर मिल सके।

व्यक्ति जैसे-जैसे बड़ा होता है, उसका ज्ञान भी बढ़ता जाता है, अर्थात् उसकी बुद्धि में वृद्धि होती जाती है। इसीलिए भिन्न-भिन्न आयु के व्यक्तियों के लिए बुद्धि-परीक्षा भी भिन्न-भिन्न रहती है। जो समस्या छोटी आयु के बालक के लिए जटिल रहती है, ठीक वही बड़ी आयु के बालक के लिए सरल हो जाती है। इसीलिए बीने ने प्रत्येक आयु के बालकों के लिए अलग-अलग बुद्धि-परीक्षा बनाने की विधि निकाली है। उनके कथनानुसार—

(i) यदि किसी बुद्धि-परीक्षा में एक आयु के बहुत से बच्चों में से लगभग ८० प्रतिशत बच्चे सफल हो जाते हैं तो वह बुद्धि-परीक्षा उस आयु के बालकों के लिए ठीक मानी जा सकती है। परिगणन विद्या के अनुसार लगभग १६ प्रतिशत बालक अपनी आयु के बालकों से पिछड़े रहते हैं। इसीलिए यदि बाकी सब बच्चे किसी क्रिया-विधि में सफल रहते हैं, तो वह क्रिया-विशेष उस आयु के बालकों की बुद्धि का सही परीक्षण हो सकता है। इस प्रकार प्रत्येक आयु के बालकों के लिए अलग-अलग बुद्धि-परीक्षाएँ तैयार की जा सकती हैं।

(ii) या, यदि एक ही बुद्धि-परीक्षा जो विभिन्न समस्याओं का एक संग्रह होती है, भिन्न-भिन्न आयु के बहुत से बालकों को दी जाय, तो प्रत्येक आयु के बालकों का औसत* परीक्षाफल उस आयु के बालकों की बुद्धि का मानदंड बनाया जा सकता है। इस विधि से एक ही बुद्धि-

* देखिए अध्याय : मनोविज्ञान में परिगणन का प्रयोग।

परीक्षा विभिन्न आयु के बालकों की बुद्धि-परीक्षण के लिए प्रयोग में लाई जा सकती है।

बीने ने इन दोनों ही विधियों का प्रयोग किया और प्रत्येक आयु के बालकों के लिए बुद्धि-परीक्षा बनाई। यह बुद्धि-परीक्षा केवल तीन से चौदह वर्ष के बालकों तक ही बन पाई थी कि १९११ में बीने का देहान्त हो गया।

बीने को बुद्धि-परीक्षा बनाने में साइमन से बहुत सहायता मिली। दोनों की संयुक्त रूप से तैयार की हुई बुद्धि-परीक्षा १९०५ में प्रथम बार प्रकाशित हुई। उसके पश्चात् बीने ने उसमें और भी बहुत संशोधन किये। उन्होंने छोटे बच्चों की बुद्धि-परीक्षा में बहुधा क्रिया को प्रधानता दी। भाषा का प्रयोग केवल बड़े बच्चों की ही बुद्धि-परीक्षा में रहने दिया। इस उचित सुधार के पश्चात् बीने की तैयार की हुई बुद्धि-परीक्षा १९०८ में दोबारा प्रकाशित हुई और १९११ में वह तीसरी बार छपी।

बीने के देहान्त के पश्चात्, टर्मन ने बीने-साईमन वैयक्तिक-बुद्धि-परीक्षा का संशोधन कर, उसे स्टैनफर्ड-बुद्धि-परीक्षा के नाम से १९१६ में प्रकाशित किया। इस संशोधित बुद्धि-परीक्षा से व्यक्ति की मानसिक आयु के अतिरिक्त उसकी बुद्धि-लब्धि का भी अनुमान लगाया जा सकता है, यही बुद्धि-परीक्षा पुनः संशोधन के बाद, फिर से, पुनः संशोधित-बीने-स्टैनफर्ड बुद्धि-परीक्षा के नाम से १९३७ में प्रकाशित की गई। पुनः संशोधित-बीने-स्टैनफर्ड-बुद्धि-परीक्षा के अनुसार प्रमाण विचलन* १६ है। (इस प्रमाण विचलन के अनुसार बुद्धि के संबन्ध में जनसाधारण का वर्गीकरण तथा प्रत्येक वर्ग में उनकी संख्या "बुद्धि का वितरण" में दिये चित्र में देखिये)

मानसिक आयु के विचार की नींव बीने ने डाली, परन्तु बुद्धिलब्धि

---

* देखिए अध्याय : मनोविज्ञान में परिगणन का प्रयोग।

५१६२ (पुस्तकालय)
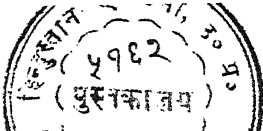
के अधिक उपयोगी विज्ञान बनाने का श्रेय स्टर्न को है। स्टर्न ने अपनी प्रस्तुत बुद्धि-परीक्षा के आधार पर बुद्धि के पूर्ण विकास की आयु सोलह वर्ष की ठहराई है। सिरिल बर्ट भी इस मत से सहमत हैं। परन्तु बर्क्स और वुड के कथनानुसार बुद्धि-विकास अठारह वर्ष तक होता रहता है और थार्नडाइक का मत है कि बुद्धि के पूर्ण विकास की आयु बाईस वर्ष है।

पहले महायुद्ध के समय में अमरीका ने सैनिक भर्ती में बुद्धि परीक्षा का बहुत प्रयोग किया। उसमें आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन भी किये गये। चूँकि भर्ती बहुत बड़े पैमाने पर थी, इसलिए बुद्धि-परीक्षा को सामूहिक बनाना अनिवार्य हो गया। १९१५ में अमरीकन मनोवैज्ञानिकों ने सामूहिक बुद्धि-परीक्षा प्रचलित की, जिसके प्रयोग से बहुत से व्यक्तियों की मानसिक तीव्रता की परीक्षा एक ही साथ हो सकती है। इस सामूहिक परीक्षा के प्रचलन से पूर्व बुद्धि-परीक्षा केवल वैयक्तिक ही थी।

इसके अतिरिक्त जो सैनिक अंग्रेजी भाषा से परिचित न थे, उनके लिए अलग बुद्धि-परीक्षा बनाई गई, जिसमें भाषा का प्रयोग हटाकर उसके स्थान पर केवल क्रियात्मक प्रयोग ही प्रधान रखे गये। इससे पहिले क्रिया-प्रधान बुद्धि-परीक्षा केवल छोटे बच्चों के लिए ही बनाई जाती थी।

इन प्रयोगों के फलस्वरूप प्रचलित बुद्धि-परीक्षाएँ चार प्रकार की हैं—

(i) वैयक्तिक क्रियात्मक बुद्धि-परीक्षा

(ii) सामूहिक क्रियात्मक बुद्धि-परीक्षा

(iii) वैयक्तिक भाषात्मक बुद्धि-परीक्षा

(iv) सामूहिक भाषात्मक बुद्धि-परीक्षा

व्यक्ति की बुद्धि-परीक्षा के लिए उसके केवल उसी ज्ञान या क्रिया-कुशलता की परीक्षा की जाती है जिसे वह सहज-स्वभाव से अपने वातावरण से ग्रहण करता है।

इसलिए सब मनोवैज्ञानिक इस बात पर सहमत हैं कि भिन्न-भिन्न देशों

तथा जातियों के लिए अपने-अपने साधारण वातावरण के अनुसार अलग-अलग बुद्धि-परीक्षा का होना केवल उत्तम ही नहीं, अत्यन्त आवश्यक भी है।

बुद्धि का स्वरूप

थार्नडाइक, स्पीयरमैन तथा थर्स्टन के विचार

थार्नडाइक

थार्नडाइक का मत है कि व्यक्ति की बुद्धि उसकी विशिष्ट कला-योग्यता तथा अन्य सब प्रकार के ज्ञान व योग्यताओं का एक समूहीकरण है। व्यक्ति में जितना अधिक ज्ञान और योग्यता पाई जाती है, वह उतना ही अधिक बुद्धिमान होता है। उनके कथनानुसार व्यक्ति की सब प्रकार की कला-योग्यता तथा भिन्न-भिन्न विषय के ज्ञान का समूहीकरण ही उसकी बुद्धि है। अर्थात् व्यक्ति की बुद्धि उसकी विशिष्ट योग्यताओं से भिन्न नहीं होती, वह केवल उन्हीं का समूहीकरण होता है।

स्पीयरमैन

स्पीयरमैन का कहना है कि व्यक्ति की बुद्धि उसकी वह मानसिक शक्ति है जो उसके प्रत्येक अनुभव तथा बोध को सामान्य रूप से प्रभावित करती है, यद्यपि व्यक्ति का ज्ञान विभिन्न प्रकार का होता है और यह विभिन्नता बहुत कुछ व्यक्ति की अपनी रुचियों से संबंधित रहती है, तो भी इन सबमें बुद्धि का प्रभाव एक समान रहता है। स्पीयरमैन गणित-शास्त्र में बहुत निपुण थे। उन्होंने तीस वर्ष के कठिन परिश्रम के पश्चात् अपने इस विचार का समर्थन सफलतापूर्वक परिगणन-विधि के आधार पर किया। व्यक्ति के विभिन्न प्रकार के ज्ञान का परस्पर संबंध निकालते हुए उसमें जो विशेषता उन्होंने पाई वह टेट्राड ईक्वेशन* के नाम से

* देखिये अध्याय : मनोविज्ञान में परिगणन का प्रयोग।

प्रसिद्ध है। टेट्राड ईक्वेशन के प्रयोग से उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि व्यक्ति की विभिन्न क्रियाओं तथा ज्ञान में एक ऐसी योग्यता पाई जाती है, जो इन सबको एक समान प्रभावित करती है। इस सामान्य योग्यता को स्पीयरमैन ने 'जी' (G), अर्थात् बुद्धि कहा है।

इसमें सन्देह नहीं कि व्यक्ति अपनी रुचियों तथा विशिष्ट कलापटुता के कारण सब प्रकार की योग्यताओं में एक समान निपुण नहीं होता, किन्तु उसकी बुद्धि का प्रभाव सब योग्यताओं में समान रूप से पाया जाता है।

स्पीयरमैन के कथनानुसार प्रत्येक योग्यता को दो खण्डों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) सामान्य खण्ड अथवा "जी" (G)
(२) विशिष्ट खण्ड अथवा "एस" (S)

सामान्य खण्ड

व्यक्ति की विभिन्न योग्यताओं में 'सामान्य खण्ड' समान रूप से पाया जाता है। यद्यपि व्यक्तियों में, सामान्य खण्ड भिन्न-भिन्न मात्रा में पाया जाता है, किन्तु एक व्यक्ति की विभिन्न योग्यताओं में इसकी मात्रा एक समान है। अर्थात् सामान्य खण्ड व्यक्ति की बुद्धि है।

विशिष्ट खण्ड

किसी कला या विषय का विशिष्ट खण्ड उसकी अपनी विशेषता है। एक व्यक्ति में बहुत से विशिष्ट गुण भिन्न भिन्न मात्रा में पाये जाते हैं। कुछ कला या योग्यताएँ ऐसी हैं जिनमें निपुणता के लिए विशिष्ट गुण का होना विशेष रूप से आवश्यक होता है, और कुछ योग्यताएँ अधिकतर सामान्य खण्ड पर ही निर्भर करती हैं।

इसलिए केवल बुद्धि-परीक्षा के बल पर यह अनुमान नहीं लगाया

जा सकता कि अमुक व्यक्ति किसी विशेष कला या योग्यता में कितना सफल रहेगा। इसका अनुमान लगाने के लिए उसकी रुचि की परीक्षा भी उतनी ही आवश्यक है।

थर्स्टन

थर्स्टन के विचारानुसार प्राथमिक योग्यताएँ दस प्रकार की हैं:—

(i) वाचिक योग्यता
(ii) वाचिक तथा प्रतीकात्मक कल्पना
(iii) सांख्यिक योग्यता
(iv) विचार शक्ति
(v) स्मृति
(vi) दैशिक चिन्तन
(vii) क्रियात्मक योग्यता
(viii) यान्त्रिक प्रवणता
(ix) हस्त-कौशल
(x) संगीत योग्यता

इन योग्यताओं में परस्पर सम्बन्ध होने के कारण इन्हें एक दूसरे से बिलकुल अलग नहीं माना जा सकता। इन योग्यताओं में जो सामान्य खण्ड है, वही बुद्धि है। इसलिए किसी क्रिया-विशेष में सफलता 'सामान्य खण्ड' के अतिरिक्त 'प्राथमिक योग्यता' पर भी बहुत कुछ निर्भर करती है।

बुद्धि का वितरण

मनुष्य सबसे अधिक तीक्ष्ण बुद्धि का जीव है, परन्तु जैसे पहले कहा जा चुका है, सब व्यक्तियों में बुद्धि की तीव्रता एक समान नहीं पायी जाती। अधिकतर व्यक्ति साधारण बुद्धि के होते हैं। उनकी मानसिक

तथा वास्तविक आयु में कुछ विशेष अन्तर न रहने के कारण उनकी बुद्धि-लब्धि सौ के लगभग होती है। सौ बुद्धि-लब्धि ठीक औसत बुद्धि-लब्धि है।
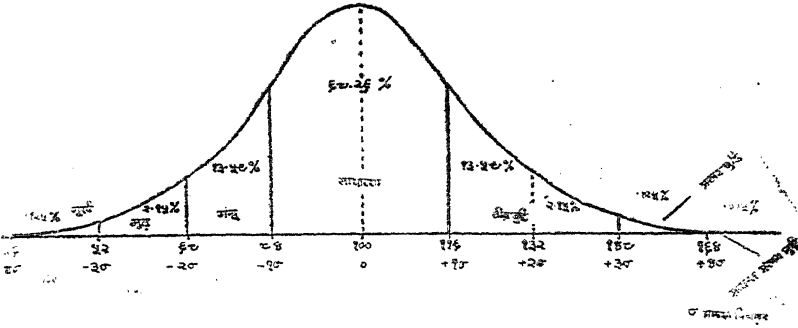
बुद्धि का वितरण

पुनः संशोधित बीने स्टैनफ़र्ड बुद्धि-परीक्षा के अनुसार

परिगणन विद्या के अनुसार वह सब व्यक्ति साधारण बुद्धि के हैं जो ठीक औसत बुद्धि-लब्धि से एक प्रमाण विचलन* ऊपर की ओर तथा एक प्रमाण विचलन नीचे की ओर हैं। पुनः संशोधित-बीने-स्टैनफर्ड-बुद्धि-परीक्षा के अनुसार प्रमाण विचलन १६ है। इसके अनुसार ८४ से ११६ बुद्धि-लब्धि के व्यक्तियों की गणना साधारण-बुद्धि वालों में होती है। इसी परिगणन विद्या के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि जन-साधारण में ६८·२६ प्रतिशत व्यक्ति साधारण बुद्धि के होते हैं, अर्थात् दस हजार व्यक्तियों में ६८२६ व्यक्ति साधारण बुद्धि के होते हैं। शेष ३१·७४ प्रतिशत व्यक्तियों में से आधे, अर्थात् १५·८७ प्रतिशत तीव्र-बुद्धि और ठीक उतने ही, अर्थात् १५·८७ प्रतिशत मन्द-बुद्धि के होते हैं।

मन्द-बुद्धि के सब व्यक्तियों की बुद्धि एक सी मन्द नहीं होती।

---

* देखिये अध्याय : मनोविज्ञान में परिगणन का प्रयोग।

सबसे मन्द-बुद्धि के व्यक्ति जड़ कहे जाते हैं। उनकी बुद्धि-लब्धि औसत से चार प्रमाण विचलन से भी कम होती है। अर्थात्, उनकी बुद्धि-लब्धि ३६ या उससे कम रहती है। वह अपने जीवन की साधारण आवश्यकताओं को भी अपने आप पूरा नहीं कर पाते। जीवन की साधारण समस्याओं को तो हल करना एक तरफ रहा, वह स्वयं अपने को साधारण संकट से भी नहीं बचा पाते। उन्हें खिलाने-पिलाने तक में दूसरे की देखभाल की आवश्यकता रहती है। ऐसे जड़ व्यक्ति जन-साधारण में बीस हजार में एक से भी कम पाये जाते हैं।
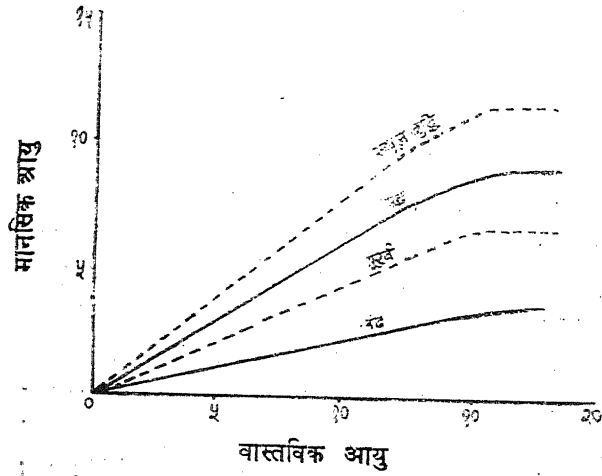
मन्द-बुद्धि व्यक्तियों की मानसिक आयु तथा बुद्धि-विकास की गति

इनसे कुछ तीव्र-बुद्धि के व्यक्ति मूर्ख कहलाते हैं। इनकी बुद्धि लब्धि ३६-५२ के बीच रहती है। वह अपने दैनिक कार्यक्रम अर्थात् अपने खाने-पीने, नहाने-धोने इत्यादि की देखभाल तो स्वयं

कर लेते हैं, परन्तु इसके अतिरिक्त वह कुछ अन्य उपयोगी कार्य नहीं कर पाते। ऐसे व्यक्ति १००० में एक के लगभग ही पाये जाते हैं।

५२-६४ बुद्धि-लब्धि के व्यक्ति मूढ़ होते हैं। उनके मानसिक विकास की गति साधारण व्यक्तियों से लगभग दो-तिहाई रहती है। बुद्धि के पूर्ण विकास पर, मूढ़ की मानसिक आयु ७-८ वर्ष से अधिक की नहीं होती। लगभग २ प्रतिशत मनुष्य मूढ़ होते हैं। वे दैनिक क्रियाएँ, जैसे बर्तन मलना, कपड़े धोना इत्यादि तो सफलतापूर्वक कर लेते हैं, परन्तु किसी नई स्थिति को सँभाल सकना उनकी मानसिक शक्ति से बाहर की बात है।

स्थूल-बुद्धि के व्यक्तियों की बुद्धि-लब्धि ६८-८५ की होती है। उनकी बुद्धि साधारण व्यक्तियों से कुछ कम और मूढ़ से अधिक रहती है। बुद्धि के पूर्ण विकास पर इनकी मानसिक आयु ११-१२ वर्ष से अधिक नहीं होती। वह केवल दैनिक कार्य ही सफलतापूर्वक नहीं कर सकते, परन्तु उचित देख-भाल मिलने पर समाज-उपयोगी धन्धे, जैसे मिस्त्री, बढ़ई, सिलाई-कढ़ाई का काम भी करने में सफल रहते हैं। मन्द-बुद्धि व्यक्तियों में इनकी गिनती सबसे अधिक रहती है। १३·५९ प्रतिशत व्यक्ति प्रायः स्थूल-बुद्धि के होते हैं, जबकि शेष सब प्रकार के मन्द-बुद्धि व्यक्ति, अर्थात् मूढ़, मूर्ख और जड़ मिल कर २·२८% होते हैं।

तीव्र-बुद्धि

जिस प्रकार मन्द-बुद्धि के सब व्यक्ति एक समान नहीं होते, ठीक उसी प्रकार तीव्र-बुद्धिवालों में भी बहुत व्यक्तिगत भिन्नता पाई जाती है। इनमें भी अधिकतर व्यक्ति साधारण बुद्धि के निकट ही पाये जाते हैं।

११६ से १४८ बुद्धि-लब्धि के सब व्यक्तियों की गणना तीव्र-बुद्धि वालों में होती है। ऐसे व्यक्ति मनुष्य जाति में १५·७४ प्रतिशत पाये जाते हैं, अर्थात् दस हज़ार में इनकी गणना १५७४ होती है। इनकी बुद्धि

साधारण व्यक्तियों से अधिक रहती है। इसलिए वह असाधारण स्थिति को भी प्रायः सफलतापूर्वक सँभाल लेते हैं।

१४८-१६४ बुद्धि-लब्धि के व्यक्ति प्रखर-बुद्धि कहलाते हैं। १६४ से अधिक बुद्धि-लब्धि के व्यक्ति अत्यन्त प्रखर बुद्धि के होते हैं। प्रखर-बुद्धि के व्यक्ति एक हजार में लगभग एक और अत्यन्त-प्रखर-बुद्धि बीस हजार में एक के लगभग होते हैं।

मूलप्रवृत्तियाँ

मनुष्यमात्र में कुछ मनोवृत्तियाँ स्वाभाविक रूप से पाई जाती हैं, जो मूलप्रवृत्तियाँ कहलाती हैं। मूलप्रवृत्तियाँ, सहज होने के कारण, सब प्राणियों में एक समान होती हैं, किन्तु उनकी तीव्रता में व्यक्तिगत भेद अवश्य रहता है।

मूलप्रवृत्तियों का विकास सब प्राणियों में एक ही नियम से होता है। कुछ मूलप्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जो जन्म के तुरन्त पश्चात् ही व्यक्ति के व्यवहार को उत्तेजित करने लगती हैं; अर्थात्, वह जीवन-काल के आरम्भ से ही प्रौढ़ रहती हैं; जैसे भय, भोजनान्वेषण। यदि नवजात शिशु के निकट कोई वस्तु ज़ोर से पटक दी जाय तो वह चौंक कर उछल पड़ता है। इसी प्रकार भोजनान्वेषण की मूलप्रवृत्ति भी जन्म से ही प्रौढ़ रहती है, और शारीरिक अवस्था, अर्थात् भूख उसकी उत्तेजना है।

कुछ मूलप्रवत्तियाँ प्रौढ़ होने में बहुत समय लेती हैं, जैसे जिज्ञासा या कामप्रवृत्ति। जिज्ञासा का विकास तो बचपन में हो जाता है, परन्तु कामप्रवृत्ति के पूर्ण विकास में अनेक वर्ष लग जाते हैं। कामप्रवृत्ति के संवेग की अनुभूति किशोरावस्था के आ जाने पर होती है। यह आवश्यक नहीं है कि मूलप्रवृत्ति जीवनकाल के आरम्भ से ही पूर्णरूप से विकसित रहे। भिन्न-भिन्न मूलप्रवृत्तियों का विकासकाल अलग-अलग रहता है, अर्थात् भिन्न भिन्न मूलप्रवृत्तियाँ प्रौढ़ होने में अलग अलग समय लेती हैं। इस अवधि को व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार कम या अधिक नहीं कर सकता। यद्यपि भिन्न-भिन्न मूलप्रवृत्तियाँ विकसित होने

में अलग-अलग समय लेती हैं तो भी यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उनके विकास का क्रम सब प्राणियों में एक समान है। भोजनान्वेषण का विकास युयुत्सा से पहले होता है और युयुत्सा का जिज्ञासा से पहले। इसी प्रकार अन्य सब मूलप्रवृत्तियों के विकास का क्रम भी सब प्राणियों में एक ही नियमित रूप से होता है।

मनुष्य की आयु अन्य जीव-जन्तुओं की अपेक्षा दीर्घ होती है। उसकी शैशव तथा किशोरावस्था औरों की अपेक्षा बहुत लम्बी होती है। यहाँ तक कि अनेक जन्तुओं की पूरी आयु मनुष्य के बाल्यकाल से भी छोटी रहती है। इसलिए इन जीवों की मूलप्रवृत्तियाँ भी क्रमानुसार शीघ्र प्रौढ़ हो जाती हैं। अर्थात्, मूलप्रवृत्तियों के विकसित होने का क्रम सब प्राणियों में एक-सा रहता है, किन्तु उनके विकास की गति में प्राणी की सहज आयु के अनुसार भेद-भाव मिलता है।

मूलप्रवृत्तियाँ व्यक्ति की अनुभूति नहीं, बल्कि उसकी अनुभूति का आधार है। यद्यपि प्रच्छन्न रूप से यह सदा ही उसके मन में बनी रहती हैं, किन्तु प्रौढ़ होने से पूर्व उसके व्यवहार को प्रभावित नहीं कर पातीं।

व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करने से पहले उनका प्रौढ़ हो जाना आवश्यक है। प्रौढ़ मूलप्रवृत्तियाँ अनुकूल वातावरण मिलने पर व्यक्ति में नैसर्गिक इच्छाएँ उत्पन्न करती हैं। इच्छा के उत्तेजित होने पर व्यक्ति में स्थिति को बनाए रखने या बदलने की प्रेरणा होती है, और उसके व्यवहार में संवेग की उत्तेजना आ जाती है।

तीव्र-बुद्धि के प्राणी अपनी इच्छा के ध्येय को जाँच लेते हैं, और उस ध्येय को पाने के लिए तरह-तरह के प्रयत्न करने लगते हैं; परन्तु मन्द-बुद्धि के प्राणी अपनी क्रिया के अभीष्ट ध्येय को स्पष्ट नहीं देख पाते। वह अनजाने में ही अपनी नैसर्गिक इच्छा की पूर्ति के स्वाभाविक साधन

में जुटे रहते हैं। यह चेष्टा प्रायः तब तक बनी रहती है, जब तक कि उनकी इच्छा की पूर्ति नहीं हो जाती। चेष्टा की सफलता, बुद्धि की तीव्रता तथा वातावरण की अनुकूलता पर निर्भर करती है। सफलता प्राप्त होने पर कर्मप्रेरणा मिट जाती है, और प्राणी सन्तुष्ट दिखाई पड़ता है।

मूलप्रवृत्तियों की संख्या

फ्रायड के मत के अनुसार मूलप्रवृत्तियाँ जीवमात्र में केवल दो हैं, (i) भोजनान्वेषण, (ii) कामप्रवृत्ति। इनका उद्देश्य जीव तथा जाति की रक्षा-संबंधित इच्छाओं को प्रेरित करना है। फ्रायड ने व्यक्ति की विभिन्न इच्छाओं का मूल कारण इन्हीं दो मूलप्रवृत्तियों को माना है। उनका कहना है कि मनुष्य के सभी सामाजिक सम्बन्ध कामप्रवृत्ति से ही प्रेरित होते हैं, भले ही यह सम्बन्ध स्त्री का पुरुष समाज से हो, या स्त्री समाज से। इसी प्रकार व्यक्ति के अन्य सब सम्बन्ध, चाहे वह अपनी संतान से हों या माँ-बाप से, बहन भाई या मित्र और अन्य नातेदारों से, फ्रायड की दृष्टि में वह केवल उसकी कामप्रवृत्ति का ही रूपान्तर है। उन्होंने प्रेम, मोह, स्नेह, दैन्य तथा आत्म-गौरव के अनुभव को कामप्रवृत्ति की ही देन माना है।

परन्तु हम अपने अनुभव से यह कह सकते हैं कि मनुष्य में केवल प्रेम पाने तथा जीवित रहने की ही मूल इच्छाएँ नहीं होतीं। इनके अतिरिक्त बहुत-सी अन्य इच्छाएँ भी उसमें स्वाभाविक रूप से पाई जाती हैं। मनुष्य की विभिन्न इच्छाएँ एक दूसरे से इतनी दूरस्थ हैं कि उन्हें एक या दो मूलप्रवृत्तियों का विकसित रूप मानना उनके साथ खींचा-तानी करना है। व्यक्ति के सब सामाजिक सम्बन्धों को केवल एक उसी

मूलप्रवृत्ति का रूप मानना, जिससे स्त्री-पुरुष का यौन-सम्बन्ध होता है, एक बहुत अनमेल जोड़ जोड़ना है।

फ्रायड के शिष्य तथा साथी एडलर को भी इस कथन की त्रुटि का आभास हुआ। उन्होंने फ्रायड के मत से पूर्णरूप से सहमत न होकर अपने मत में आत्मगौरव-मूलप्रवृत्ति को बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

मूलप्रवृत्तियों के विवरण के प्रसंग में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उनका क्षेत्र न तो इतना विस्तृत हो जाय कि उनसे उत्तेजित इच्छाओं में कुछ परस्पर सम्बन्ध न रहे, और न इतना सीमित कि उनसे उत्तेजित इच्छा या चेष्टा सर्वथा परिवर्तनहीन हो जाय।

इस दृष्टिकोण से मैक्डूगल की मूलप्रवृत्तियों की सूची बहुत सन्तोष-जनक है। यह मूलप्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं :—

(i) भोजनान्वेषण की प्रवृत्ति

भोजनान्वेषण की प्रवृत्ति प्राणी की सब मूलप्रवृत्तियों से प्राथमिक है। इसे शारीरिक अवस्था, अर्थात् भूख से उत्तेजना मिलती है। भूख का अनुभव होते ही व्यक्ति खाद्यपदार्थ को पाने की चेष्टा करता है। उत्तेजित हो जाने पर, यह प्राथमिक प्रवृत्ति अन्य सब इच्छाओं पर प्रधानता पा जाती है। खाद्य-पदार्थ की खोज में लगे हुए प्राणी का ध्यान अन्य सब ओर से सिमट कर, भूख मिटाने की चेष्टा में लग जाता है। दूसरी स्थितियाँ उसे अपनी ओर आकर्षित करने में बहुत कुछ असमर्थ हो जाती हैं।

(ii) पलायन

पलायन मूलप्रवृत्ति को उत्तेजित करने में वह स्थिति समर्थ रहती है, जिसके कारण व्यक्ति के जीवन या जीवन के किसी सुख को किसी प्रकार की हानि की आशंका होती है। उसे अपने बचाव के लिये

उस स्थिति से दूर भागने की प्रेरणा होती है। अन्तरावयव प्रतिक्रिया से उसे भागने में सहायता मिलती है और वह तीव्रगति से भय की स्थिति से दूर भागता है। यदि किसी कारणवश उसकी इस प्रतिक्रिया में बाधा पड़ जाय, तब भी, जब तक कि उस स्थिति में परिवर्तन नहीं आ जाता, उसमें उससे दूर भागने की प्रेरणा बनी ही रहती है।

(iii) युयुत्सा

स्वच्छंदता में बाधा डालने वाली स्थिति व्यक्ति की युयुत्सा की प्रवृत्ति को उत्तेजित करती है, जिससे उसमें क्रोध उत्पन्न होता है। इसके उत्तेजित होते ही व्यक्ति में अवरोधक स्थिति को बदल देने की प्रेरणा उभर आती है।

शारीरिक तथा अन्तरावयव प्रतिक्रिया के कारण, व्यक्ति में स्थिति को बदलने की बहुत कुछ क्षमता भी 'आ जाती है; परन्तु कभी-कभी स्थिति को बदलने में कुछ ऐसी अड़चनें भी रहती हैं, जिनके कारण उसे अपनी इस इच्छा को बरबस दबाना पड़ता है। ऐसी स्थिति में उसकी देह गुस्से से काँपने लगती है। इससे यह स्पष्ट है कि युयुत्सा का संवेग क्रोध है, और उसका ध्येय स्थिति को बदलना है।

(iv) सामूहिक प्रवृत्ति

प्राणी केवल जीवित ही नहीं रहना चाहता, वह समाज का अंग बन कर जीवित रहना चाहता है। सामूहिक जीवन की इच्छा उसमें बहुत प्रबल रहती है। अकेला जीवन उसके लिए अत्यन्त बोझिल होता है। सामूहिक जीवन से अलग वह एकाकीपन का अनुभव करता है और यह अनुभव उसे सामूहिक जीवन की ओर प्रेरित करता है।

समाज में प्रवेशमात्र से ही व्यक्ति की सामूहिक जीवन की इच्छा

को तृप्ति नहीं मिलती। वह अपने को समाज में मिला-जुला कर सन्तुष्ट होता है। इसी कारण व्यक्ति जिस समाज में बराबरी का व्यवहार नहीं पाता, उसमें वह बहुत अकेला-अकेला अनुभव करता है और ऐसे समाज से अलग हो जाने की इच्छा उसमें प्रबल हो उठती है। इसीलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि बच्चे को उस समुदाय में रखा जाय जिसके जीवन को वह अपना जीवन बना सके, अर्थात् जिस समाज का जीवन उसके अपने जीवन से मेल खाता हो। अन्यथा वह समुदाय में रहते हुए भी अकेला ही रह जाता है।

(v) निवृत्ति

निवृत्ति की प्रवृत्ति को बहुधा रस तथा घ्राण संवेदना से उत्तेजना मिलती है। निवृत्ति का प्राथमिक ध्येय व्यक्ति को हानिकर खाद्य-पदार्थों से बचाना है। इसके उत्तेजित होते ही वह हानिकर खाद्यपदार्थ को मुँह से निकाल फेंकता है।

अनुभव के आधार पर वस्तु के रूप-रंग भी निवृत्ति को उत्तेजित करने लगते हैं। निवृत्ति का अनुभव केवल हानिकर खाद्यपदार्थों तक ही सीमित नहीं रह जाता, अरुचिकर पदार्थों के प्रति भी उत्तेजित होने लगता है। अर्थात् खाद्यपदार्थ के अतिरिक्त और भी बहुत-सी स्थितियों के प्रति व्यक्ति को घृणा का अनुभव होने लगता है। घृणात्मक संवेग में व्यक्ति के मुँह तथा होंठ का रूप ऐसा हो जाता है मानो वह मुँह से कुछ निकाल कर फेंकने वाला है।

(vi) जिज्ञासा

जिज्ञासा के उत्तेजित होने पर, व्यक्ति को आश्चर्य का अनुभव होता

है। उसे उत्तेजना के प्रति कुतूहल होता है, और उसमें उस स्थिति को समझने की इच्छा प्रबल हो जाती है।

जिज्ञासा की प्रेरणा पलायन की प्रेरणा से बिलकुल विपरीत होती है। पलायन के उत्तेजित होने पर व्यक्ति उसकी उत्तेजक स्थिति से दूर भागना चाहता है, परन्तु जिज्ञासा के उत्तेजित हो जाने पर वह कुतूहलवश उत्तेजक स्थिति के निकट पहुँचकर उसका अन्वेषण करता है।

स्थिति की नवीनता से जिज्ञासा को उत्तेजना मिलती है। इस नवीनता के कारण, जिज्ञासा के साथ-साथ बहुधा पलायन की मूलप्रवृत्ति भी उत्तेजित हो जाती है, जिससे व्यक्ति कुतूहल के साथ-साथ भय भी अनुभव करता है। इससे उसके व्यवहार में दुविधा आ जाती है। वह स्थिति के निकट जाने में बहुत सावधानी बरतता है और भय के दूर होते ही सीधे-सीधे उस स्थिति के अन्वेषण में लीन हो जाता है।

स्थिति को समझते ही जिज्ञासा मिट जाती है। यदि जिज्ञासा से प्राप्त ज्ञान किसी अन्य मूलप्रवृत्ति को प्रेरित नहीं करता तो व्यक्ति की उस विषय से रुचि ही मिट जाती है।

(vii) कामप्रवृत्ति

कामप्रवृत्ति का पूर्ण विकास सब मूलप्रवृत्तियों के उपरान्त होता है। परन्तु इसके यह अर्थ नहीं कि शैशव में इसका सम्पूर्ण अभाव रहता है। यह प्रवृत्ति बहुत कुछ प्रच्छन्न रूप से शैशव में भी बनी रहती है। शैशव में यौन-इन्द्रिय की गुदगुदाहट से बालक को सुखद भावना का अनुभव होता है। बहुधा माताएँ बच्चे को दुलारते हुए उसकी यौन-इन्द्रिय को भी थपकती जाती हैं। बच्चा स्वयं भी अपने हाथ-पैरों को पटकता हुआ अपने इन अंगों को स्फुरित करता है।

शारीरिक अवस्था का कामप्रवृत्ति पर गहरा प्रभाव है। मादा की कामप्रवृत्ति के अध्ययन से इस प्रवृत्ति का शारीरिक अवस्था से जो घनिष्ट सम्बन्ध है वह स्पष्ट हो जाता है। मादा में कामप्रवृत्ति की तीव्रता सदा एक-सी नहीं रहती। वस्तुतः उसमें नियत अवधि के पश्चात् कामवासना की इच्छा स्वाभाविक रूप से तीव्र हो जाती है। शारीरिक अवस्था के अनुकूल होने पर नर की उपस्थिति में मादा में कामवासना तथा संयोग की इच्छा का उभर आना स्वाभाविक ही है। कामप्रवृत्ति की उत्तेजित इच्छा बहुत प्रबल होती है, जिसे कठिनाई सहकर भी प्राणी तृप्त करना चाहता है।

इस मूलप्रवृत्ति के स्वाभाविक गुण पशु तथा पक्षी वर्ग के व्यवहार से स्पष्ट हो जाते हैं। मनुष्य तीक्ष्ण-बुद्धि का जीव है। वह अपनी इच्छाओं के भविष्य परिणाम सोचता और समझता है। इसीलिए बहुत बार इच्छा प्रबल होने पर भी उन्हें अनुचित मानकर क्रियात्मक रूप नहीं देता। व्यक्ति की भावुकता भी कामवासना को दबाने में उसका सहयोग देती है। उसका चेतन मन समाज की दृष्टि में अनुचित कामवासना का विरोध करता है, जिन्हें वह चेतनता से अलग कर देता है।

जिस प्रकार नर की उपस्थिति मादा की कामप्रवृत्ति को उत्तेजित करने में उपयुक्त स्थिति है, ठीक उसी तरह मादा की उपस्थिति से नर की कामप्रवृत्ति को उत्तेजना मिलती है। मनुष्य में विचार तथा कल्पना-शक्ति भी बहुतायत से पाई जाती है। इसलिए नर या मादा की उपस्थिति उतनी आवश्यक नहीं, उनका विचार या कल्पना भी कामप्रवृत्ति तथा संयोग की इच्छाओं को उत्तेजित करने में समर्थ है।

(viii) पैतृक प्रवृत्ति

पैतृक मूलप्रवृत्ति को उत्तेजित करनेवाली स्थिति बच्चे की केवल उप-

स्थिति या अनुपस्थिति ही नहीं होती, बच्चे के सुख-दुःख की कल्पना से भी इस मूलप्रवृत्ति को उत्तेजना मिलती है। इस प्रवृत्ति के उत्तेजित होने पर व्यक्ति में स्नेह उमड़ आता है। उसमें बच्चे के निकट पहुँचने, उसकी रक्षा करने, या उसको सुख पहुँचाने की प्रेरणा होती है। इस प्रवृत्ति का संवेग वात्सल्य है।

(ix) आत्मगौरव

इस प्रवृत्ति को बहुधा सामाजिक स्थिति से उत्तेजना मिलती है। यदि प्राणी अपने को औरों की अपेक्षा अधिक कुशल या महत्वपूर्ण समझता है, तो उसे आत्मगौरव का अनुभव होता है। वह दूसरों पर अपने विचारों या व्यवहार का प्रभुत्व देखकर सन्तुष्ट होता है, और चेतन या अचेतन रूप से इस प्रयत्न में रहता है कि दूसरे उसका अनुकरण किसी न किसी प्रकार करते ही रहें। इस मूलप्रवृत्ति का संवेग आत्माभिमान है।

(x) दैन्य

आत्मगौरव प्रवृत्ति की भाँति दैन्य की प्रवृत्ति को बहुधा सामाजिक स्थिति से ही उत्तेजना मिलती है। व्यक्ति जब दूसरे को अपनी अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण समझता है, तो उसे दैन्य का अनुभव होता है। दैन्य का संवेग आत्महीनता की भावना है।

इस प्रवृत्ति के उत्तेजित होने पर व्यक्ति दूसरों की विचारधारा तथा व्यवहार का अनुकरण करने लगता है। इसी मूलप्रवृत्ति के कारण मनुष्य समाज के बहुत से आदेश, रंग-ढंग तथा रीति-रिवाज अनजाने में अपना लेता है।

(xi) अर्जन प्रवृत्ति

व्यक्ति केवल वस्तुओं का अर्जन ही नहीं करना चाहता, उन्हें अपने अधिकार में सुरक्षित भी रखना चाहता है। यद्यपि इन दोनों इच्छाओं में

परस्पर बहुत घनिष्ठ संबंध है, किन्तु इन्हें एक ही नहीं माना जा सकता; विशेषतः जब यह देखा जाता है कि कुछ व्यक्तियों में अर्जन की इच्छा तो प्रबल रहती है, परन्तु उनकी उचित देख-भाल के प्रति वह प्रायः उदासीन ही होते हैं। इसी प्रकार कुछ व्यक्ति वस्तुओं के अर्जित करने में उत्सुक नहीं होते, परन्तु जो कुछ भी उनके अधिकार में रहता है, उन्हें वह बहुत सुरक्षित ढंग से रखते हैं।

यद्यपि यह इच्छाएँ भिन्न-भिन्न हैं, किन्तु वह एक ही प्रवृत्ति से उत्तेजित होती हैं। यह मूलप्रवृत्ति केवल मनुष्यों में ही नहीं पाई जाती, पशु-पक्षी तथा कीटाणु वर्ग के व्यवहार में भी इसका प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

(xii) सृजन की प्रवृत्ति

बच्चों के खेलों से हम उनकी सृजन की प्रवृत्ति का अनुमान लगा सकते हैं। व्यक्ति केवल वर्तमान स्थिति का अन्वेषण ही नहीं करते, वह तरह-तरह की सृजनात्मक क्रियाओं में भी तल्लीन रहते हैं। वस्तु के सृजन से ही उन्हें संतोष होता है। बहुत-सी वस्तुएँ केवल तोड़ने ही के लिए बनाई जाती हैं।

पक्षियों में घोसला बनाने की जो कुशलता है, उससे भी हमें इस मूलप्रवृति का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। कीटाणु भी अपने घर बनाते हैं। यद्यपि पशु वर्ग में सृजनात्मक क्रिया इतनी स्पष्ट नहीं रहती, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि उनके जीवन में सृजनात्मक प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव है। सृजन-प्रवृत्ति का संवेग कृमतिाव या सृजन-भावना है।

(xiii) शरणागति की प्रवृत्ति

दुर्घटना में सहसा फँस जाने पर प्राणी जब यह अनुभव करता है

कि बिना किसी की सहायता के बच नहीं सकता, तो वह सहज ही करुणापूर्ण ढंग से चीख़ पड़ता है। इस चीख़ का उद्देश्य सहायता माँगना होता है। शरणागति-प्रवृत्ति का संवेग करुणा है।

सहज व्यवहार में वैयक्तिक भेद

मानवमात्र में सभी मूलप्रवृत्तियाँ विद्यमान रहती हैं, किन्तु उनकी तीव्रता सब में एक समान नहीं होती। उनकी तीव्रता में जो व्यक्तिगत भेद पाया जाता है, उसके कारण प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार में आरम्भ से ही वैयक्तिक विशेषता आ जाती है। यदि कुछ व्यक्तियों में जिज्ञासा बहुत प्रबल है तो कुछ में आत्मगौरव की प्रवृत्ति; और इसी प्रकार कुछ व्यक्तियों के स्वभाव में दैन्य प्रधान रहता है।

व्यक्ति में चूँकि मूलप्रवृत्तियाँ एक नहीं, अनेक हैं, इसलिए उनमें से एक मूलप्रवृत्ति की तीव्रता में थोड़ा-सा अन्तर दूसरी मूलप्रवृत्तियों के संपर्क में आकर, मनुष्य के व्यवहार को सहज ही वैयक्तिक रूप प्रदान कर देता है। दो व्यक्तियों में प्रेम की इच्छा एक-सी रहने पर भी, उनकी किसी अन्य मूलप्रवृत्ति की तीव्रता में भेद होने से उनका प्रेम-व्यवहार भी भिन्न-भिन्न हो जाता है। उदाहरणार्थ, वह व्यक्ति जिनमें आत्मगौरव की प्रवृत्ति तीव्र होती है, अपने प्रियजन में प्रायः अपना ही प्रतिबिम्ब देखना चाहते हैं। अनजाने में ही वह अपने प्रभुत्व को उनपर अंकित करने की चेष्टा किया करते हैं। उन्हें अपना अनुकरण करते देखकर ऐसे व्यक्तियों को सन्तोष होता है, और ऐसा न होने पर आत्मगौरव की प्रवृत्ति के साथ-साथ प्रेम-लालसा भी अतृप्त रह जाती है। जिन व्यक्तियों में दैन्य प्रबल रहता है, वे अपने को अपने प्रियजन में खोकर सन्तुष्ट होते हैं। वे उनकी विचारधारा तथा आचार-व्यवहार को अपना कर अपने प्रेम का परिचय देते हैं।

यदि दोनों प्रेमियों में एक-सी मूलप्रवृत्ति तीव्र रहती है, तो उनके परस्पर सम्बन्ध में अनुकूलता नहीं आती। उनकी प्रेम इच्छाएँ. बहुत कुछ अधूरी और अतृप्त रह जाती हैं। उनमें परस्पर संघर्ष की संभावना रहती है। यद्यपि व्यक्तिगत रूप से उनमें कुछ दोष नहीं रहता, परन्तु पारस्परिक व्यवहार में वह सुखी नहीं रह पाते। इसीलिए यह कहा जा सकता है कि विवाहित जीवन में सुख और शान्ति किसी एक की अच्छाई या गुण पर निर्भर नहीं होती, वह उनके परस्पर सम्बन्ध पर ही निर्भर करती है।

व्यक्ति के सहज व्यवहार में परिवर्तन तथा उनके कारण

मूलप्रवृत्तियों से प्रेरित होने के कारण जीवन के आरंभकाल में प्राणी का व्यवहार सहज होता है। मूलप्रवृत्तियाँ प्रत्यक्ष स्थिति से उत्तेजना पाती हैं। उत्तेजना मिलने पर व्यक्त को सवेग के साथ प्रेरणा होती है। यह प्रेरणा उसे प्रत्यक्ष स्थिति के सम्बन्ध में क्रियाशील होने को उत्तेजित करती है। इच्छा की पूर्ति के लिए वह सहज प्रयत्न करता है। इन प्रयत्नों की सफलता बहुत कुछ वातावरण की अनुकूलता तथा बुद्धि की तीव्रता पर निर्भर करती है।

व्यक्त जैसे-जैसे बड़ा होता है, उसके अनुभव बढ़ते रहते हैं, जिनके कारण वह वातावरण की विशेषताओं का विवेचन करने लगता है, और अपने व्यवहार को उनके अनुकूल बनाता है।

इस प्रकार व्यक्ति के सहज व्यवहार में निम्नलिखित परिवर्तन आ जाते हैं:—

(i) अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य में स्मरणशकित बहुत प्रबल होती है, जिसके कारण कुछ अनुभव के पश्चात् व्यक्त केवल प्रत्यक्ष स्थिति से ही उत्तेजना नहीं पाता, परन्तु उनकी स्मृति-मात्र से भी उसकी

मूलप्रवृत्तियाँ उत्तेजित होने लगती हैं। जैसे, बालक केवल मार खाने से ही नहीं डरता, उसकी धमकी या ध्यान-मात्र से भी भय खाता है।

(ii) प्रत्येक प्रत्यक्ष घटना का अपने परिवेश से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है कि साधारणतया उसे उससे पृथक् नहीं किया जा सकता। इसलिए परिवेश में से एक घटना का अनुभव सारे परिवेश का ही अनुभव हो जाता है। बच्चे में सम्मान पाने की इच्छा स्वाभाविक रहती है। उसके लिए अपमान अत्यन्त कष्टकर और घृणाप्रद है। यदि बच्चे को पढ़ने के समय उसके अन्य साथियों के सामने अपमानित किया जाय, तो वह पढ़ने से भी घृणा करने लगता है।

इस प्रकार वह स्थितियाँ जो आरंभ में मूलप्रवृत्तियों को उत्तेजित करने में असमर्थ होती हैं, अनुभव के आधार पर उन्हें सफलतापूर्वक उत्तेजित करने लगती हैं।

(iii) सहज प्रेरणा और चेष्टा में भी बुद्धि की तीव्रता के अनुसार बहुत परिवर्तन आ जाते हैं। यदि स्वाभाविक क्रिया या साधन से इच्छा की तृप्ति नहीं होती, तो व्यक्ति उन्हें छोड़कर अपनी बुद्धि के अनुसार नये प्रयत्न करने लगता है। संतोषजनक क्रिया का प्रभाव व्यक्ति के मन पर बहुत सुखद और गहरा रहता है, और इसीलिये वह उस क्रिया को बार-बार प्रयोग में लाता है। क्रिया को सुगम तथा सफल बनाने में बुद्धि उसको बहुत सहायक होती है। चूँकि अनुभव के आधार पर वह अपनी क्रिया को स्थितियों के अनुकूल बनाता रहता है, इसीलिए यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति में जितनी अधिक तीव्र बुद्धि होती है, उतनी ही उसके सहज व्यवहार में परिवर्तन होने की सभावना रहती है।

(iv) जैसा कि पहले कहा जा चुका है, व्यक्ति में मूलप्रवृत्तियाँ एक नहीं अनेक हैं। वातावरण भी विभिन्न प्रकार की उत्तेजना से परिपूर्ण रहता है। इसलिए बहुधा व्यक्ति की दो या अधिक मूलप्रवृत्तियों को एक साथ ही उत्तेजना मिल जाती है। इसके अतिरिक्त अनुभव के

परिणाम-स्वरूप कभी-कभी एक ही स्थिति व्यक्ति की अनेक मूलप्रवृत्तियों को उत्तेजित करने में समर्थ हो जाती है।

इनके कारण व्यक्ति के सहज-व्यवहार में सरलता नहीं रह जाती। उसके व्यवहार में प्रायः अनेक मूलप्रवृत्तियों का प्रभाव रहता है—जैसे पढ़ना-लिखना। व्यक्ति की इस पढ़ने-लिखने की इच्छा में केवल भोजनान्वेषण प्रवृत्ति की ही प्रेरणा नहीं होती, उसमें आत्मगौरव का भी प्रभाव रहता है। इनके अतिरिक्त सामूहिक जीवन की इच्छा तथा कामप्रवृत्ति से भी प्रेरणा मिलती है, अर्थात् व्यक्ति के व्यवहार में केवल एक मूलप्रवृत्ति की पूर्ण विशेषता नहीं रह जाती, वह अनेक मूलप्रवृत्तियों का प्रभावित रूप होता है।

सीखना

प्रत्येक व्यक्ति में बहुत-सी प्रवृत्तियाँ होती हैं, जो वातावरण के संपर्क से उसमें कई प्रकार की इच्छाएँ उत्पन्न करती हैं। इन इच्छाओं की पूर्ति क्रिया द्वारा होती है। क्रिया को अधिक से अधिक सुगम तथा सफल बनाना ही "सीखना" है।

शिक्षा का सबसे पहला कर्तव्य व्यक्ति की क्रियाविधि को सुगम तथा सुलभ बनाना है। बच्चा शिक्षा द्वारा यह सीखता है कि किस प्रकार वह अपनी क्रिया को वातावरण के अनुकूल बनाये, ताकि परिश्रम कम हो और सफलता अधिक। बहुत-सी क्रियाएँ तो बच्चा अनुकरण द्वारा ही सीख लेता है, परन्तु जो क्रियाएँ कठिन या उलझी हुई रहती हैं, उसको सीखने के लिए, व्यक्ति का ध्यान विशेष रूप से उनकी ओर आकर्षित करना पड़ता है।

उदाहरणः-किसी छोटी-सी वस्तु को देखने के लिए हम अपनी आँखों को उस वस्तु के निकट ले जाते हैं। उसी प्रकार किसी धीमी आवाज को सुनने के लिए कान को उस ओर लगा देना भी स्वाभाविक ही है; परन्तु हम अनुकरण द्वारा, अनजाने में ही, यह सीख लेते हैं कि जब कोई व्यक्ति हम से बात कर रहा है, तो हमें उसकी तरफ अपना मुँह रखना चाहिए, कान नहीं। यह क्रिया इतनी साधारण-सी लगती है कि इसे सीखी हुई मानना कठिन हो जाता है; परन्तु जन्मांध बालकों के लिए यह भी एक समस्या है। आँखों के अभाव के कारण, वह दूसरे बालकों का अनुकरण नहीं कर सकते। इसलिए उन्हें यह सिखाने के लिए उनका ध्यान बार-बार इसकी ओर आकर्षित करना पड़ता है। इस तरह जब अन्धे

बालकों से इस व्यवहार को मिलाकर देखा जाय, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि छोटी-छोटी साधारण क्रियाओं में भी सीखने का कितना महत्त्वपूर्ण प्रभाव है।

व्यक्ति अनजाने में ही, अपने वातावरण से इतना कुछ सीखता है कि उसका अनुमान लगाना कठिन हो जाता है। पूर्वानुभूति उसकी प्रत्येक क्रिया को व्यक्त या अव्यक्त रूप से प्रभावित करती रहती है; यहाँ तक कि उसकी कोई भी नूतन क्रिया सर्वथा नवीन नहीं होती। उसमें पूर्व अनुभव का प्रभाव अव्यक्त रूप से छिपा रहता है। जो क्रियाविधि सन्तोषजनक सिद्ध नहीं होती वह अपने ही आप कमज़ोर पड़ जाती है; और जो व्यक्ति को सफलता की ओर ले जाती है, वह स्वतः पुष्ट हो जाती है।

बच्चा जब किसी कारण रोता है, तो माता का ध्यान सहज ही उसकी ओर आकर्षित हो जाता है। वह उसके कष्ट को दूर करने के उपाय करती है। बार-बार ऐसा होने पर बच्चा अपनी क्रिया के परिणाम से इतना सन्तुष्ट होता है कि उसके लिए रोना दूसरे के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करने का साधन बन जाता है। यहाँ तक कि कुछ बच्चे अपनी प्रत्येक आवश्यक या अनावश्यक माँग को पूरा कराने के लिए रोने लगते हैं। परन्तु जो माता पिता विवेकशील होते हैं, वह बच्चे के उस रोने की ओर ध्यान ही नहीं देते, जो केवल दूसरे के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करने का साधन होता है। फलस्वरूप, बच्चों के व्यवहार में से ऐसा रोना अपने आप मिट जाता है।

बाल्यकाल में बच्चा बहुत सहज और सरल स्वभाव का होता है, जिसके कारण वह, अनजाने में ही, अपने वातावरण से बहुत कुछ सीख लेता है। वह जिसे स्नेह करता है, उसका अनुकरण भी करता है। इसलिए माता के व्यवहार का प्रभाव बच्चे पर बहुत गहरा रहता है।

अनुकरण द्वारा सीखने की विधि केवल बच्चों तक ही सीमित नहीं

रहती, इसका प्रयोग सब आयु के व्यक्ति करते हैं, और बहुधा उन्हें यह ज्ञात भी नहीं रहता कि दूसरों के अनुकरण के आधार पर उनकी अपनी क्रिया-विधि या व्यवहार में कितना परिवर्तन आ रहा है। जो गाना बहुत प्रचलित हो जाता है, उसे बहुत से व्यक्ति प्रायः अनजाने में ही गुनगुनाने लगते हैं। इस तरह अज्ञात रूप से हम प्रत्येक क्षण कुछ न कुछ सीखते ही रहते हैं, और इस सीखने के कारण हमारे व्यवहार में बहुत कुछ व्यक्तिगत विशेषता आ जाती है।

सीखने की विधियाँ

प्रयत्न और भूल अथवा क्रियात्मक विधि

व्यक्ति को जब कुछ सीखना होता है, परन्तु उसमें उसे समझने की विशेष इच्छा नहीं होती, या वह समस्या उसकी बुद्धि की अपेक्षा बहुत जटिल रहती है, तो वह उसे सीखने के लिए क्रियात्मक विधि का प्रयोग करता है। सीखने की इस विधि में क्रिया ही प्रधान रहती है। वह उसे करने का बार-बार प्रयत्न करता है। प्रत्येक प्रयत्न में बहुत-सी भूलें भी होती हैं; परन्तु धीरे-धीरे भूलें स्वयं कम होती जाती हैं और वह व्यक्ति अपनी क्रिया में निपुण हो जाता है। सीखने की इस विधि को 'प्रयत्न और भूल' की विधि भी कहते हैं, क्योंकि इस विधि से बार-बार के प्रयत्नों में व्यक्ति की गलतियाँ या भूलें स्वयं ही दूर हो जाती हैं।

उदाहरण—यदि कोई बालक भूलभुलैयों में चला जाता है तो उसे बाहर निकलने का रास्ता समझ में नहीं आता। वह इधर उधर चारों ओर चक्कर लगाने लगता है, और प्रत्येक बार अपने को नई उलझन में फँसा हुआ पाता है; परन्तु कुछ देर इसी तरह घूमते रहने पर वह उन भूलभुलैयों से बाहर आ जाता है। यदि इसी बालक को बार-बार उन्हीं भूलभुलैयों में भेज दिया जाय, तो कुछ प्रयत्न के पश्चात् वह बिना किसी भूल के,

इनमें से बाहर आ जाना सीख लेता है। उसकी गलतियाँ धीरे-धीरे कम होती जाती हैं और इसी प्रकार प्रत्येक प्रयत्न में समय भी क्रमशः कम लगने लगता है। यह गलतियाँ कैसे और क्यों दूर होगईं. इसका उसे कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। उसके सीखने की विधि में क्रिया ही प्रधान रहती है। इसलिए इस विधि को सीखने की क्रियात्मक-विधि भी कहा जाता है।

यदि प्रौढ़ व्यक्ति भी ऐसी भूलभुलैयों में से बिना भूल के बाहर निकलना सीखना चाहें तो उन्हें भी 'प्रयत्न तथा भूल विधि' का ही प्रयोग करना पड़ता है। उसमें से बाहर निकलने के प्रयत्न में वे उन भूलभुलैयों में इधर-उधर भटक जाते हैं। किन्तु वे छोटे बालकों की भाँति उतावले होकर इधर-उधर नहीं भागते, बल्कि बहुत चैतन्य रूप से धीरे धीरे उसके विभिन्न रास्तों में भटकते हुए और अनेक भूलें करते हुए अन्त में बाहर निकल आते हैं। कुछ प्रयत्नों के पश्चात् भूलें स्वयं ही दूर हो जाती हैं। पहले ग़लतियाँ तेज़ी से और फिर क्रमशः धीरे-धीरे दूर होती जाती हैं। कुछ प्रयत्नों के पश्चात्, वे अन्दर घुसते ही बिना किसी भूल के उससे बाहर निकल आते हैं। चैतन्य होने के कारण, उनकी ग़लतियाँ बालकों की अपेक्षा कम प्रयत्नों में ही दूर हो जाती हैं, किन्तु बार-बार प्रयत्नों के बाद भी उन्हें भूलभुलैयों के सम्बन्ध में कुछ विशेष सूझ नहीं प्राप्त होती।

प्रयत्न और भूल की विधि का प्रयोग प्रयोगशाला में भी किया जाता है। यह प्रयोग बहुधा बहुत से कोण वाले चित्र के प्रतिबिम्ब को दर्पण में देखते हुए उसे खींचने का प्रयत्न होता है। अर्थात्, व्यक्ति खींचनेवाले चित्र को सीधे नहीं देखता, बल्कि उसके प्रतिबिम्ब को देखकर उसे खींचने का प्रयत्न करता है। चित्र को इस प्रकार खींचने में उसे बहुत कठिनाई होती है। रेखा खींचने में तो कुछ विशेष कठिनाई नहीं होती, किन्तु कोणों पर भूलें बहुत होती हैं। इस उलझन से बच निकलने के लिए बिना जाने ही वह पेंसिल को समस्यापूर्ण स्थानों से हटाकर समस्या को हल करना चाहता है। पेंसिल का इस प्रकार उठा लेना भी भूल है।
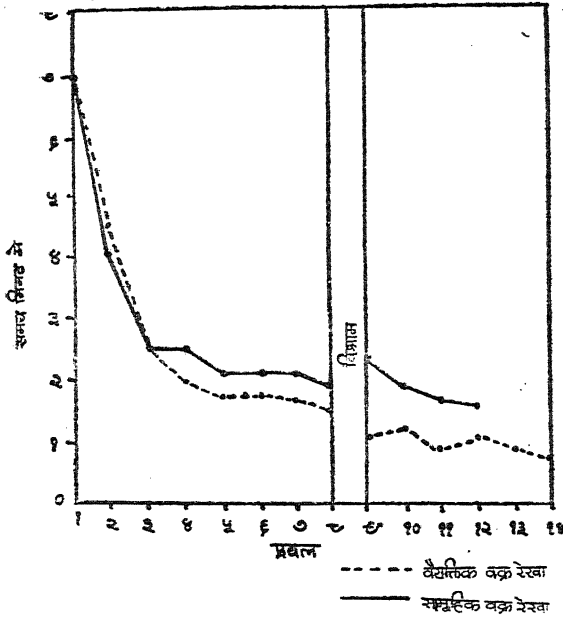
दर्पण में प्रतिबिम्बित तारे को खींचने के प्रयोगफल की वक्र रेखा।

यह वक्र रेखाएँ सामूहिक प्रयोग के औसत तथा वैयक्तिक परिणाम को अंकित करती हैं। (इन्स्टीट्यूट ऑफ़ एजूकेशन देहली की प्रयोग-शाला में किया गया प्रयोग)।

पहले एक दो प्रयत्नों में समय का उतार बहुत अधिक, फिर क्रमशः धीमा हो जाता है। विश्राम के तुरन्त पश्चात् प्रतिबिम्बित तारे को खींचने में व्यक्ति पहले की अपेक्षा अधिक समय लेता है, किन्तु एक दो प्रयत्नों में ही उसके सीखने में उन्नति स्पष्ट दिखाई पड़ने लगती है।

इस प्रयोग से आरंभ के प्रयत्नों में व्यक्ति समय भी अधिक लेता

है और भूलें भी बहुत होती हैं, किन्तु यह भूलें पहले बहुत तेज़ी से और फिर धीरे-धीरे दूर होती जाती हैं।
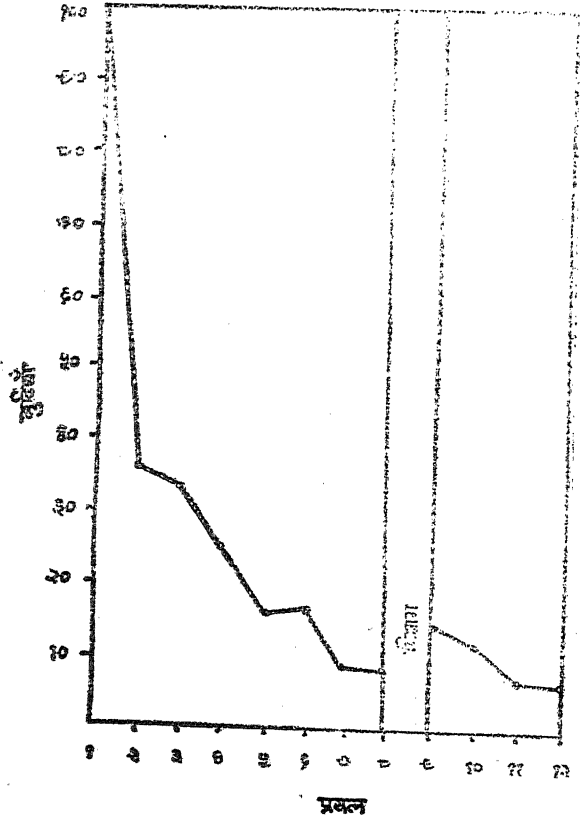
यह वक्ररेखा इसके पहले दिये हुए सामूहिक प्रयोग में त्रुटियों के कम होने के क्रम को अंकित करती है।

प्रयोग के लिए अनेक कोणों की आकृति इप्रकार उपयुक्त मानी जाती है कि प्रत्येक कोण का विभिन्न दिशा में होना व्यक्ति के लिए विशिष्ट समस्या बन जाता है। अर्थात्, प्रतिबिम्बित सितारे का प्रत्येक कोण व्यक्ति के लिए नई समस्या उपस्थित कर देता है।

सीखने की इस क्रियात्मक विधि का प्रयोग व्यक्ति प्रायः उसी स्थिति में करता है जिसे वह समझ नहीं पाता। मनुष्य तीव्र बुद्धि का प्राणी है, इसलिए उसके सीखने में क्रिया के साथ-साथ बुद्धि की भी प्रधानता रहती है। अर्थात् उसके सीखने की विधि बिलकुल क्रियात्मक नहीं होती। परन्तु पशु आदि मन्द बुद्धि क प्राणी हैं। वे सीखने के लिए अधिकतर क्रियात्मक विधि का ही प्रयोग करते हैं। वह स्थितियाँ जो हमें साधारण-सी लगती हैं, उनकी समझ से बाहर की होती हैं। यदि किसी भूखी बिल्ली को पिंजरे में बन्द कर दिया जाय और एक टुकड़ा मछली या मांस उसके पिंजरे से बाहर रखा जाय तो बिल्ली उस पिंजरे में से निकलने को छटपटाने लगेगी। यदि पिंजरा ऐसा बना हुआ रहे कि वह एक बटन दबाने पर ही खुल सकता हो तो बिल्ली उस स्थिति को समझने में असमर्थ होती है। फलस्वरूप वह भूल भूलैयों में पड़े बच्चे की तरह बाहर निकलने के लिए इधर-उधर भटकने लगती है। इसी भाग-दौड़ में संयोग से बटन दब जाने पर पिंजरा खुल जाता है। यदि उस बिल्ली को फिर से उसी पिंजरे में बन्द कर दिया जाय तो उसका व्यवहार दूसरी बार भी पहले जैसा ही दिखाई पड़ता है, मानो पूर्व क्रिया से उसने कुछ सीखा ही नहीं। परन्तु कुछ प्रयत्न के पश्चात् वह बड़ी सुगमता से बटन दबाकर बाहर निकलने लग जाती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक प्रयत्न में बिल्ली ने कुछ न कुछ सीखा अवश्य है, परन्तु उसके सीखने की गति इतनी मन्द रहती है कि यह कहना कठिन हो जाता है कि बिल्ली ने कब क्या सीखा।

परीक्षण द्वारा यह भी पता चला है कि एक बिल्ली दूसरी सीखी हुई

बिल्ली के व्यवहार को देखते रहने पर भी उससे कुछ लाभ नहीं उठा पाती। उसे अपनी ही क्रिया तथा प्रयत्न द्वारा सीखना पड़ता है।

क्रियात्मक विधि के सम्बन्ध में थॉर्नडाइक का मत

(क) प्रभाव का नियम:—

क्रियात्मक विधि के प्रयोग में व्यक्ति किसी समस्या को बार-बार क्रिया द्वारा सीखने का प्रयत्न करता है। प्रत्येक प्रयत्न में बहुत-सी त्रुटियाँ भी रहती हैं, परन्तु अन्तिम क्रिया इच्छापूर्ति का साधन बनती है। इसीलिए वह प्राणी के लिए बहुत सन्तोषजनक रहती है।
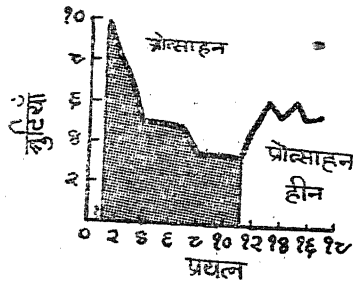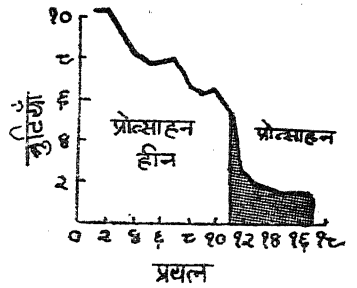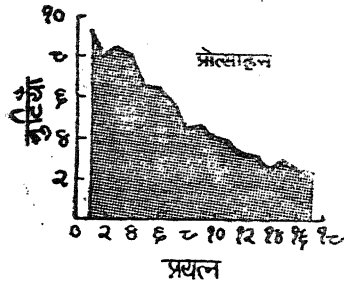
भिन्न-भिन्न अवस्था में रखे गए चूहों के तीन समूहों के सीखने के परिणाम का नीचे अलग-अलग चित्र में अंकित किया गया है। (वुडवर्थ के आधार पर)

(i) पहले समूह को पूरे प्रयोग में आरंभ से ही प्रत्येक सफल क्रिया के तुरन्त उपरान्त प्रोत्साहन के रूप में खाने को कुछ दिया गया।

(ii) दूसरे चित्र में प्रदर्शित समूह को पहले दस प्रयत्नों में तो कुछ भी नहीं दिया गया, किन्तु उसके बाद प्रत्येक सफल क्रिया के तुरन्त पश्चात् खाने को मिलने लगा।

(iii) तीसरे समूह को पहले दस प्रयत्नों में तो सफल क्रिया के साथ खाद्य पदार्थ मिला, किन्तु उसके बाद की सफल क्रियाएँ प्रोत्साहन से वंचित रखी गई।

थॉर्नडाइक का मत है कि जो क्रिया सन्तोषजनक रहती है, वह स्वयं ही इच्छापूर्ति के कारण पुष्ट हो जाती है, और वह क्रियाएँ जो असफल रहती हैं कमज़ोर पड़ती जाती है। थॉर्नडाइक का यह विचार महत्वपूर्ण होते हुए भी सर्वथा सत्य नहीं हैं।

चूहों को जब पिंजरे से बाहर निकलने पर खाने के लिए कुछ नहीं मिला तो उनकी क्रिया उत्साह हीन हो गई। ऐसा लगने लगा कि वह कुछ सीख ही नहीं रहे हैं। भूलें कम होती दिखाई नहीं पड़ीं। उनके सीखने की रेखा में कुछ उन्नति नहीं हुई। परन्तु कुछ प्रयत्नों के पश्चात् उन्हें जब कुछ खाने को मिलने लगा तो उनकी त्रुटियाँ एकदम ही बहुत कुछ कम हो गईं। क्रियात्मक विधि में भूलों का सहसा कम हो जाना इसी बात का संकेत है कि चूहे पहले भी सीख रहे थे, केवल उनके सीखने का फल स्पष्ट नहीं था।

इस प्रकार क्रियात्मक विधि को विभिन्न स्थितियों में प्रयोग करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राणी केवल 'क्रिया के फल' के आधार पर ही उसे नहीं सीखता, वह उस क्रियाविधि को भी सीखता है जिसमें प्रोत्साहन का अभाव रहता है।

(ख) सद्यस्कता का नियम

थॉर्नडाइक का यह भी कहना है कि चूँकि सफल क्रिया सदा प्रयत्न के अन्त में पाई जाती है, इसलिए उसके पश्चात् अगले प्रयत्न के लिए उसी का प्रभाव सबसे अधिक रहता है। थॉर्नडाइक के इस विचार का समर्थन वाटसन ने भी किया है। परन्तु थॉर्नडाइक का यह मत सन्तोषजनक नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि सफल क्रिया प्रत्येक अगले प्रयत्न के आरंभ में व्यक्ति के अनुभव में सबसे सद्यस्क रहती है; परन्तु एक सफल क्रिया और दूसरी सफल क्रिया के बीच इतनी भूलें रहती हैं कि इन दोनों सफल क्रियाओं में कुछ भी सीधा सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता।

(ग) आवृत्ति का नियम

थॉर्नडाइक का कहना है कि क्रियात्मक विधि का आधार आवृत्ति है। यद्यपि क्रियात्मक विधि में कई प्रयत्न करने पड़ते हैं और प्रत्येक प्रयत्न में अनेक भूलें होती हैं, तो भी प्रत्येक प्रयत्न में एक सफल क्रिया अवश्य रहती है। भूलें भिन्न भिन्न होती हैं, परन्तु सफल क्रिया सब में एक समान रहती है। इसलिए व्यक्ति जितनी बार प्रयत्न करता है, उतनी ही बार अपनी सफल क्रिया को दोहराता है। आवृत्ति के कारण सफल क्रिया पक्की हो जाती है और बाकी सब क्रियाएँ कमजोर हो जाती हैं। थॉर्नडाइक के इस नियम का समर्थन वॉटसन ने भी किया है।

किन्तु, वह प्रायः देखा करता है कि एक ही प्रयत्न में एक ही भूल अनेक बार होती है, जब कि सही क्रिया केवल एक ही बार होती है। इस प्रकार कभी-कभी कुछ भूलें सफल क्रिया से भी अधिक बार दोहराई जाती है, तो भी धीरे धीरे वह दूर हो जाती हैं, और सफल क्रिया पक्की हो जाती है।

इसके अतिरिक्त, यह भी देखा जाता है कि प्राणी जो सीखता है, वह केवल विशिष्ट क्रिया मात्र नहीं होती, वह समस्या को सुलझाने की एक विधि रहती है। क्रियात्मक रूप से सीखी हुई स्थिति में यदि कुछ परिवर्तन

कर दिये जायँ तो सीखी हुई विशिष्ट क्रिया में भी उसके अनुसार परिवर्तन आ जाते हैं। प्राणी अपने व्यवहार में परिवर्तित स्थिति के अनुकूल उचित परिवर्तन ले आता है।

उदाहरण :—जिस पिंजरे में खाना रखा हो उस तक पहुँचने के लिए एक चूहे को बहुत से रास्ते दिखाई पड़ते हैं किन्तु उनमें से केवल एक ही रास्ता सुरक्षित रूप से पिंजरे तक पहुँचता है, बाकी सब रास्तों में बिजली बिछी रहने के कारण चूहे को उनमें घुसने पर पीड़ा का अनुभव होता है। कुछ ही प्रयत्नों में चूहा बिना भूल के सही रास्ते का प्रयोग करना सीख लेता है।

इस रास्ते को ठीक प्रकार सीख लेने के पश्चात् यदि उसमें इतना पानी भर दिया जाय कि चूहा केवल तैरकर ही वहाँ पहुँच सके, तो उसे नई क्रियाविधि को अपनाना होगा। परीक्षण द्वारा यह देखा गया है कि चूहा इसमें भूल नहीं करता। वह तैरकर तुरन्त ही खाने के पिंजरे में पहुँच जाता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सीखने की क्रियात्मक विधि के प्रयोग से व्यक्ति केवल विशिष्ट क्रिया ही नहीं सीखता, बल्कि अपने व्यवहार को स्थिति के अनुकूल बनाना सीख लेता है।

सीखने की सूझ-विधि

कोहलर का मत है कि सीखने में सूझ की प्रधानता है। व्यक्ति समस्या को समझता है और अपनी क्रियाविधि को उसके अनुकूल बनाता है। जब स्थिति, प्राणी की बुद्धि की अपेक्षा, बहुत उलझी हुई रहती है, तो वह उसे इतना धीरे-धीरे समझ पाता है कि उसके सीखने में क्रिया ही प्रधान दिखाई पड़ती है, सूझ नहीं; परन्तु, वह जो सीखता है, वह केवल क्रिया मात्र नहीं होती, उस समस्या को हल करने की क्रियाविधि होती है।

उदाहरण :—यदि किसी चूहे के सामने दो छोटे-छोटे एक ही रंग के घर रख दिये जायँ जिनमें से दाहिनी ओर का घर दूसरे की अपेक्षा गहरे रंग का हो और उसी में चूहे के लिए खाना हो, तो कुछ प्रयत्न के पश्चात् चूहा सीधे ही दाहिनी ओर के घर में जाने लगता है। उसका एक घर से दूसरे घर की ओर भटकना बन्द हो जाता है।

उसके बाद यदि बाईं ओर के घर को इतना गहरा रँग दिया जाय कि दाहिनी ओर के घर का रंग उसकी अपेक्षा हल्का हो जाय तो चूहा बिना किसी भूल के बाईं ओर के घर में जाने लगता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि चूहे ने केवल दाहिनी या बाईं ओर ही जाना नहीं सीखा था परन्तु उसमें पूरी स्थिति की सूझ आ गई थी—अर्थात् उसने अपनी क्रियाविधि को सम्पूर्ण स्थिति के अनुकूल बनाना सीख लिया था।

कोहलर ने भिन्न-भिन्न प्रकार के जन्तुओं के सीखने की क्षमता तथा उनके सीखने के ढंग के निरीक्षण द्वारा अपने इस मत का समर्थन किया है। उनका कहना है कि सूझ की क्षमता सब प्राणियों में एक-सी तीव्र नहीं होती। इसीलिए उनमें सीखने की क्षमता भी बराबर नहीं होती। उनके सीखने की क्षमता में बहुत भेद पाया जाता है। जो स्थिति प्राणी की सूझ से सर्वथा बाहर रहती है, उसे वह सीख भी नहीं सकता, भले ही वह उसे सीखने के कितने ही प्रयत्न क्यों न करे।

प्राणी क्या सीखता है, और कैसे सीखता है, यह स्पष्ट करने के लिए कोहलर ने बहुत से परीक्षण किये हैं, जिनके आधार पर उनका कहना है कि प्राणी अपनी सूझ द्वारा अपने व्यवहार को सम्पूर्ण स्थिति के अनुकूल बनाना सीखता है। प्राणी की बुद्धि जितनी अधिक तीव्र होती है, उतनी ही सुगमता से वह सीख सकता है। अर्थात्, तीव्र-बुद्धि वाले व्यक्ति के लिए जो स्थितियाँ साधारण-सी रहती हैं, और जिन्हें वह सहज ही समझ लेता है, वही स्थितियाँ मन्द-बुद्धि प्राणी के लिए जटिल समस्या हो जाती हैं। उन्हें समझने के लिए उसे भाँति-भाँति के प्रयास करने पड़ते हैं। इस

विषय के सम्बन्ध में कोहलर के प्रयोग बहुत प्रसिद्ध हैं, जिनमें से कुछ का वर्णन सक्षेप में इस प्रकार है:—

(i) कोहलर ने बनमानुस को एक पिंजरे में बन्द कर पिंजरे के बाहर एक केला डाल दिया। बनमानुस के पास दो ऐसी छड़ियाँ रख दीं, जो सुगमता से एक दूसरे में जुड़ सकती थीं। इन दोनों के जुड़ जाने पर वह इतनी लम्बी हो जाती थीं कि उनकी सहायता से केला सुगमता से पिंजरे में खींचा जा सकता था।

बनमानुस ने छड़ियों का पहले अलग-अलग प्रयोग किया, परन्तु केला उसके हाथ न लगा। अनेक असफल प्रयत्नों के पश्चात् केले का ध्यान छोड़कर बनमानुस उन दोनों छड़ियों से खेलने लगा। खेल-खेल में वह एक दूसरे में जुड़ गईं। उन्हें इस प्रकार जुड़ा हुआ पाते ही बनमानुस ने उनकी सहायता से केले को तुरन्त पिंजरे में खींच लिया। उसके बाद, जब भी वह दोनों छड़ियाँ अलग-अलग रहतीं, वह उन्हें झट से जोड़कर केले को भीतर खींच लेता। इससे यह स्पष्ट है कि बनमानुस को खेल ही खेल में सहसा स्थिति की 'सूझ' आ गई, और इस सूझ के आते ही उसका व्यवहार स्थिति के अनुकूल हो गया।

इसी प्रकार एक बनमानुस को पिंजरे में बन्द कर, कोहलर ने केले को पिंजरे की छत से लटका दिया। पिंजरे में दो संदूक थे, जिनमें से एक इतना छोटा था कि बनमानुस उसे उठाकर दूसरे सदूक पर सुगमता से रख सकता था। बनमानुस कभी एक बक्स पर कूदा और कभी दूसरे पर, परन्तु केला उसके हाथ नहीं लगा। ऐसे अनेक प्रयत्न करने के बाद बनमानुस थक कर इधर उधर खेलने लगा। खेल-खेल में एक सदूक का दूसरे पर रखना ही था कि वह तुरन्त उस पर कूदा और केला उसके हाथ आ गया। इसके पश्चात् उसने जब भी संदूक अलग-अलग पाये तो उन्हें तुरन्त ऊपर नीचे रखकर केला पा लिया।

तब कोहलर ने यह जानने के लिए कि बनमानुस ने क्या सीखा है, उस स्थिति में थोड़ा-सा परिवर्तन कर दिया। दूसरा बनमानुस जब तक छोटे संदूक पर बैठा रहा, पहला बनमानुस उस केले को पाने के लिए बड़े संदूक पर एक-दो बार उछल-कूदकर दूसरे खेलों में लग गया। परन्तु जैसे ही दूसरा बनमानुस छोटे संदूक पर से उतरा, पहले बनमानुस ने उछलकर उस संदूक को दूसरे पर रखा, और केला खाने लगा। उसके व्यवहार की इस तत्परता से यह स्पष्ट था कि दूसरे बनमानुस के छोटे बक्स पर बैठ जाने से पहले बनमानुस के लिए स्थिति इतनी बदल गई थी कि उसने जो कुछ सीख रखा था उसका प्रयोग इस नवीन स्थिति में करने में असमर्थ था; परन्तु ज्यों ही दूसरा बनमानुस संदूक पर से उतरा, उसे फिर पूर्व-स्थिति का आभास हुआ, और तब वह अपनी क्रियाविधि को प्रयोग में ला सका।

इसी प्रकार बनमानुस के यह सीख जाने के पश्चात् कि पिंजरे में पड़ी तीन रस्सियों में से किसके खींचने पर केला अन्दर आ सकता है, कोहलर ने और भी बहुत-सी रस्सियाँ डालकर उन्हें इतना उलझा दिया कि बनमानुस के लिए यह समझना कि किस रस्सी के साथ केला बँधा है, असंभव हो गया। बनमानुस को सीखने का अवकाश बहुत दिया गया, उसने बहुत प्रयत्न भी किये; परन्तु स्थिति उसकी सूझ की अपेक्षा इतनी उलझी हुई थी कि वह उसे सीख नहीं सका। इससे कोहकर ने यह स्पष्ट कर दिया कि प्राणी जिस स्थिति को समझने में असमर्थ है, उसे सीखने में असमर्थ ही रहता है।

कोहलर का कहना है कि प्राणी जो सीखता है, वह स्थिति के अलग-अलग भाग का ज्ञान नहीं होता। वह सम्पूर्ण स्थिति के अनुकूल क्रिया-विधि होती है। वह परिवतन, जो उस स्थिति के 'सम्पूर्ण रूप' में कुछ अन्तर नहीं लाते, प्राणी के लिए कुछ भी कठिनाई पैदा नहीं करते; परन्तु यदि स्थिति के उन्हीं भागों के नवीन मेल से स्थिति का रूप बदल

जाता है, तो प्राणी के लिये स्थिति नई हो जाती है, जिसे उसे फिर से सीखना पड़ता है।

सीखने की सम्बद्ध-प्रतिक्रिया-विधि

सीखने की इस विधि को खोज निकालने का श्रेय पावलोव को है। उन्होंने यह पाया कि जब किसी पशु को कोई विशेष व्यक्ति खाना देता है, या उसे किसी विशेष बर्तन में खाना दिया जाता है, तो उस व्यक्ति या बर्तन के सामने आते ही उस पशु के मुँह में पानी आ जाता है। खाना खाते समय पानी का मुँह में आ जाना एक सहज क्रिया है; परन्तु व्यक्ति या प्लेट के सामने आने पर, इस प्रतिक्रिया का होना अस्वाभाविक है। सहज क्रिया का, इस प्रकार किसी अन्य वस्तु या स्थिति से उत्तेजित हो जाना सम्बद्ध-प्रतिक्रिया कहलाता है। इसमें प्रतिक्रिया उस स्थिति या वस्तु से उत्तेजित होने लगती है जो साधारणतया पूर्व अनुभव के अभाव में उसे उत्तेजित करने में असमर्थ रहती है। वह स्थिति जो अपने स्वाभाविक गुण से किसी प्रतिक्रिया को सहज ही उत्तेजित करती है, उस क्रिया के लिए सहज-उत्तेजक कहलाती है। और वह उत्तेजक जो सहज-उत्तेजक के निरन्तर सपर्क में रहने के कारण सहज-उत्तेजक से सम्बन्धित प्रतिक्रिया को उत्तेजित करने लगता है उस प्रतिक्रिया का कृत्रिम-उत्तेजक कहलाता है। अर्थात्, यदि किसी प्राणी के अनुभव में सहज तथा कृत्रिम उत्तेजक बहुत दिन तक मिले रहते हैं, तो कुछ समय पश्चात् केवल कृत्रिम उत्तेजक के होने से ही सहज उत्तेजक से सम्बन्धित प्रतिक्रिया उत्तेजित हो जाती है।

पावलोव ने सम्बद्ध-प्रतिक्रिया का परीक्षण अपने कुत्ते पर किया। उन्होंने उसे नियमित रूप से घण्टी बजने के तुरन्त पश्चात् खाना देना आरंभ किया। कुछ दिनों के बाद उन्होंने देखा कि कुत्ते के मुँह में घण्टी की आवाज पर भी पानी आने लगता है।

सीखने की यह विधि केवल पशुओं तक ही सीमित नहीं है, मनुष्य के बहुत से व्यवहार इसी विधि का परिणाम है। उसके बहुत से व्यवहार का आधार सम्बद्ध-प्रतिक्रिया ही होता है—जैसे डर। बच्चा साधारणतया अचानक उत्पन्न ऊँची आवाज़ से डरता है। यदि किसी खिलौने को हाथ लगाते ही ऐसी आवाज़ कहीं से आ जाय, तो बच्चा उस खिलौने से भी डरने लगता है।

परन्तु सम्बद्ध-प्रतिक्रिया में वह दृढ़ता नहीं पाई जाती जो सहज क्रिया में रहती है। जिस प्रकार यह सम्बन्ध बनाया जाता है, उसी प्रकार इसे हटाया भी जा सकता है। अर्थात् यदि सम्बद्ध-प्रतिक्रिया के बन जाने के पश्चात् घण्टी तो रोज़ बजाई जाय; परन्तु उसके साथ खाना न दिया जाय, तो कुछ ही दिन में घण्टी और मुँह में पानी आने का सम्बन्ध टूट जाता है। पावलोव ने अपने प्रयोगों के आधार पर सहज तथा कृत्रिम उत्तेजकों के सम्बन्ध में निम्नलिखित नियमों का विशेष उल्लेख किया है:—

(i) कृत्रिम उत्तेजक सहज उत्तेजक के साथ या उससे कुछ पूर्व आना चाहिए, उसके पश्चात् नहीं। यदि वह सहज उत्तेजक के पश्चात् आता है, तो उसमें तथा सहज उत्तेजक की प्रतिक्रिया में सम्बन्ध स्थापित नहीं होता।

(ii) कृत्रिम उत्तेजक तथा सहज उत्तेजक के बीच के अवकाश की अवधि इतनी कम रहनी चाहिए कि उन दोनों के बीच में कोई और घटना न हो पावे।

(iii) कृत्रिम उत्तेजक न तो इतना मन्द होना चाहिए कि वह प्राणी के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करने में असमर्थ रहे, और न वह इतना तीव्र होना चाहिए कि प्राणी उससे बचने को उतावला हो उठे।

सीखने की निषेधात्मक-विधि

यदि किसी स्थिति से उत्तेजित व्यक्ति की प्रतिक्रिया प्रति बार निर-

र्थक सिद्ध होती है, तो कुछ अनुभव के पश्चात् वह स्थिति उस प्रतिक्रिया को उत्तेजित करने में असमर्थ हो जाती है। यदि बच्चा किसी विशेष आवाज़ से डरता है, परन्तु वही आवाज़ वह बार-बार सुनता है और प्रत्येक बार उसका डर निरर्थक सिद्ध होता है, तो कुछ अनुभव के पश्चात् उसका डर चला जाता है। उस आवाज़ से कुछ भी हानि न होने से धीरे-धीरे उस आवाज़ से उसका डर मिट जाता है। इसी प्रकार यदि बच्चा बार-बार ज़िद करता है, किन्तु उसकी ज़िद पर ध्यान नहीं दिया जाता, तो धीरे-धीरे उसमें से ज़िद की आदत ही दूर हो जाती है।

सीखने की वक्ररेखा

सीखने की वक्ररेखा द्वारा यह बड़ी सुगमता से देखा जा सकता है, कि व्यक्ति साधारणतः कितना सीख सकता है, और उसके सीखने की गति कैसी रहती है।
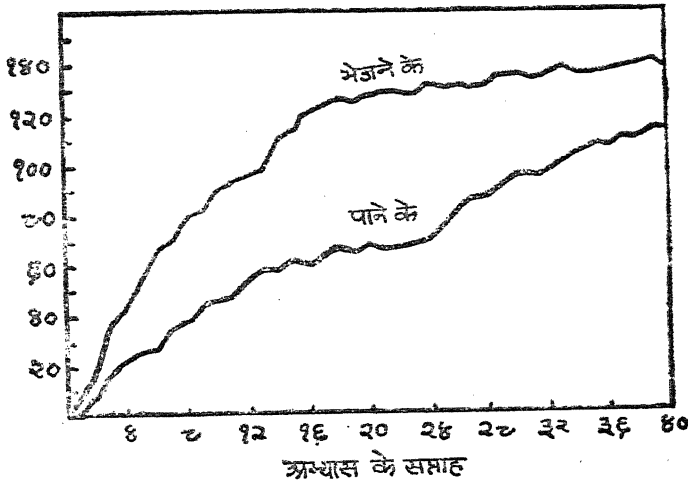
तारबर्क़ी के एक छात्र के सीखने की वक्ररेखा (वुडवर्थ के आधार पर)

व्यक्ति के सीखने को वक्ररेखा में व्यक्त करने के लिए यह आवश्यक है कि :—

(i) व्यक्ति की क्रिया इस प्रकार की हो जिसका अनुमान गणित के रूप में लगाया जा सके, अर्थात् जिसकी शुद्धियाँ या अशुद्धियाँ सही प्रकार से गिनी जा सकें, और

(ii) व्यक्ति के सीखने की पूरी अवधि को बराबर-बराबर भागों में बाँटा जा सके।

सीखने की वक्ररेखा को पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

(i) सीखने की पहली स्थिति

व्यक्ति आरम्भ में बहुत तीव्र-गति से सीखता है। इस तीव्रता के कई कारण हैं :—

(क) आरंभ में क्रिया विधि सरल रहती है।

(ख) व्यक्ति में उसे सीखने की इच्छा तीव्र होती है।

(ग) क्रिया की नूतनता उसकी जिज्ञासा को उत्तेजित कर देती है, जिसके कारण वह उसे सीखने के लिए बहुत उत्साहित रहता है।

(घ) थकान के न होने के कारण वह उसमें दत्तचित्त रहता है।

(ii) सीखने की दूसरी स्थिति :—

थोड़ा सीख लेने के पश्चात् व्यक्ति के सीखने की गति पहले की अपेक्षा मन्द पड़ जाती है। यद्यपि व्यक्ति कुछ न कुछ नया सीखता अवश्य रहता है, किन्तु उसके सीखने में वह तीव्रता नहीं रह जाती, जो पहली स्थिति में थी। सीखने की गति के इस प्रकार मन्द पड़ जाने के कई कारण हैं :-

(१) क्रिया की नवीनता के दूर होते ही जिज्ञासा बहुत कुछ मिट जाती है, जिससे व्यक्ति का क्रिया में पहले जैसा उत्साह नहीं रहता।

(२) क्रिया भी पहले-सी सरल नहीं रहती। वह जितनी जटिल

या कठिन होती जाती है, उतनी ही उसके सीखने की गति मन्द पड़ती जाती है।

(३) व्यक्ति ने जो पहली स्थिति में सीखा है, उसे नये सीखने के साथ-साथ पक्का भी करना होता है। इसलिए सीखने की गति का मन्द पड़ जाना स्वाभाविक ही है।

(iii) सीखने का पठार

सीखने की तीसरी स्थिति में अर्थात्, सीखने की मन्द गति के पश्चात्, व्यक्ति के सीखने में कुछ उन्नति नहीं होती। बार-बार के प्रयास के पश्चात् भी उसकी क्रिया जहाँ की तहाँ बनी रहती है। इस स्थिति को सीखने का पठार कहते हैं।

व्यक्ति के सीखने में उन्नति का इस प्रकार रुक जाना स्वाभाविक होता है। कुछ व्यक्ति इसके स्वाभाविक रूप से अनभिज्ञ होने के कारण, निराश होकर सीखना ही छोड़ देते हैं, परन्तु व्यक्ति यदि सीखने में लगा रहे, तो कुछ ही समय के पश्चात् उसकी क्रिया में उन्नति होने लगती है।

सीखने के पठार के विषय में बहुत मतभेद हैं :—(१) कुछ लोगों का कहना है कि व्यक्ति की 'उदासीनता' ही उसके सीखने के पठार का कारण होती है। क्रिया की नवीनता के मिटते ही व्यक्ति की जिज्ञासा भी दूर हो जाती है, और उसका उत्साह धीमा पड़ जाता है। व्यक्ति जब इतना सीख लेता है कि उसे उस क्रिया में कुछ विशेष कष्ट या असुविधा नहीं रहती, तो वह उसकी ओर से प्रायः उदासीन हो जाता है। तब वह उसमें कुछ उन्नति नहीं कर पाता।

परन्तु, हम यह भी देखते हैं कि बहुत बार रुचि और उत्साह के रहने पर भी, सीखने में पठार अवश्य आता है। इसलिए उदासीनता या अरुचि को सीखने के पठार का कारण नहीं माना जा सकता।

(२) यह भी विचार किया जाता है कि सीखने के पठार का कारण थकान है। सीखते-सीखते व्यक्ति शारीरिक तथा मानसिक रूप से इतना थक जाता है कि वह और उन्नति नहीं कर पाता। परन्तु सीखने का पठार वहाँ भी पाया जाता है जहाँ थकान को रोकने के लिए कार्य विश्राम के साथ किया जाता है। इसलिए थकान को भी सीखने के पठार का कारण नहीं माना जा सकता।

(३) वास्तव में, व्यक्ति के सीखने में पठार उस समय आता है जब कि उसके लिए कुछ अन्य सीखने से पूर्व पहले सीखे हुए कार्य में निपुण होना आवश्यक हो जाता है। यद्यपि पठार के आने पर, व्यक्ति सीखने में कुछ उन्नति करता हुआ नहीं दिखाई पड़ता, तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह कुछ सीख ही नहीं रहा है। सीखने के पठार की अवधि में वह पहिले सीखे हुए कार्य को पक्का करता है, जिसके कारण पठार के बाद उसके सीखने की गति फिर से तीव्र हो जाती है।

(iv) सीखने की चौथी स्थिति :—

सीखने के पठार के तुरन्त पश्चात्, व्यक्ति बहुत तेज़ी से उन्नति करता है। जैसे-जैसे समय बीतता है, यह गति भी मन्द पड़ती जाती है।

(v) शारीरिक क्षमता की सीमाः—

किसी क्रिया में दत्तचित्त रहने पर ऐसा समय भी आ जाता है कि व्यक्ति उसमें उन्नति कर ही नहीं सकता। वह क्रिया के सम्बन्ध में अपनी शारीरिक क्षमता की चरम सीमा को पहुँच जाता है।

परन्तु, साधारणतया, हम शारीरिक क्षमता की चरम सीमा तक पहुँचने से पहले ही सीखना छोड़ देते हैं, क्योंकि :—

(क) हमारी रुचियाँ तथा आवश्यकताएँ इतनी अधिक होती हैं कि हम अपने ध्यान और समय को किसी एक ही क्रिया में नहीं लगा पाते।

(ख) हम किसी क्रिया में जितना अधिक आगे बढ़ते हैं उतनी ही वह कठिन भी होती जाती है। फलस्वरूप सीखने की गति बहुत मन्द पड़ जाती है और व्यक्ति उसके प्रति उदासीन होने लगता है। उस क्रिया में उन्नति करने के लिए नित्यप्रति का अभ्यास उसके शरीर तथा मन को थका देता है।

(ग किसी क्रिया को सीखने के लिए इच्छा और उत्साह बहुत आवश्यक है। साधारणतया, जब व्यक्ति इतना सीख लेता है कि उसकी क्रिया औरों की अपेक्षा अच्छी हो जाती है, तो उसमें और सीखने की इच्छा उतनी तीव्र नहीं रह जाती।

परन्तु, जब किसी व्यक्ति की कोई विशेष क्रिया उसके आत्मगौरव का साधन बन जाती है, तो उस क्रिया के प्रति उसमें रुचि, इच्छा तथा उत्साह बने रहते हैं। इनसे प्रेरणा पा कर वह उस क्रिया में इतना लगा रहता है कि उसकी उस क्रिया में शारीरिक क्षमता की चरम सीमा तक पहुँचने की सम्भावना हो जाती है। साधारणतया, सीखने की किसी वक्ररेखा में उपरिलिखित स्थितियों में से केवल पहली चार ही पाई जाती हैं।

सीखने की सामूहिक वक्ररेखा से सीखने के साधारण नियमों का ज्ञान होता है। वैयक्तिक भिन्नता के कारण प्रत्येक व्यक्ति के सीखने में अपनी विशेषता रहती है। उनके सीखने की गति बहुत अस्थिर होती है। किसी-किसी वैयक्तिक वक्ररेखा में सीखने के पठार भी एक से अधिक मिलते हैं। जिन व्यक्तियों में जिज्ञासा तीव्र रहती है, वे पहले किसी भी नये काम में बहुत उत्साहित रहते हैं और आरम्भ में बहुत तीव्र गति से उन्नति करते हैं, किन्तु जिज्ञासा के दूर होते ही उनके सीखने की गति भी बहुत मन्द तथा अस्थिर हो जाती है। वह व्यक्ति जिन्हें किसी विषय की जानकारी से प्रोत्साहन मिलता है, पहले तो मन्द गति से सीखते हैं, किन्तु कुछ ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात् उस विषय में इतने तल्लीन हो जाते हैं कि उनके सीखने की गति बहुत तीव्र हो जाती है।

आदत

जब कोई प्राणी एक ही प्रकार की क्रिया बार-बार करता है तो कुछ प्रयासों के पश्चात् वह उस क्रिया को अनायास करने लगता है। क्रिया का इस प्रकार अनायास हो जाना ही आदत कहलाता है।

आदत तो एक प्रकार से निर्जीव वस्तुओं में भी पाई जाती है। जब हम किसी कागज़ को एक तरफ मोड़ देते हैं तो उस कागज़ का उसी तरफ मुड़ना, किसी दूसरी ओर मुड़ने की अपेक्षा इतना सुगम हो जाता है, मानों कागज़ को उस तरफ मुड़ने की आदत ही हो गई हो।

यदि कागज़ को थोड़ी देर मोड़ कर रखने के पश्चात् उसे खोलकर छोड़ दिया जाय तो उसका झुकाव मोड़ की ओर रहता है, किन्तु यदि बहुत दिनों तक वह मुड़ी अवस्था में रखा जाता है तो बाद में खोलकर छोड़ देने पर भी वह अपने आप ही उस मुड़ी अवस्था में आ जाता है।

प्राणीमात्र को इच्छा या आवश्यकता से क्रिया के लिए प्रेरणा मिलती है। वातावरण से उत्तेजना पा कर वह इच्छापूर्ति के लिए क्रिया में लग जाता है। क्रिया के सन्तोषजनक फल से उसे प्रोत्साहन मिलता है, जिससे वह उस क्रिया को बार-बार दोहराता है। इच्छा के तीव्र तथा क्रिया के सन्तोषजनक होने पर व्यक्ति को उसे एक या दो बार करने से ही उसकी आदत पड़ जाती है। इच्छा और उत्साह के बराबर बने रहने पर, जो क्रिया जितनी अधिक बार की जाती है, उसकी आदत उतनी ही पक्की बन जाती है। इच्छा के विपरीत किसी क्रिया को बार-बार करने पर भी उसकी आदत नहीं बनती। आदतों के बन जाने पर उनसे सम्बन्धित क्रियाएँ अनायास हो जाती हैं। व्यक्ति उन्हें अनायास ही करता रहता है। जैसे, नमस्कार में हाथों का उठना, भोजन के पूर्व हाथ धोना, दाँत से नाखून

काटना। यह क्रियाएँ इतनी स्वाभाविक हो जाती हैं कि इनके करने के लिए व्यक्ति को अपना ध्यान उनकी ओर केन्द्रित नहीं करना पड़ता। बुनने की क्रिया स्त्रियों के लिए इतनी सरल और सहज हो जाती है कि वह अन्य जटिल समस्याओं को सोचते हुए भी, स्वेटर इत्यादि निर्विघ्न बुनती जाती हैं। फलस्वरूप किसी क्रिया की आदत पड़ जाने पर, व्यक्ति अपना चेतन-मन अन्य नई क्रियाओं के सीखने में लगा सकता है। इस प्रकार, आदतें हमें प्रगति की ओर ले जाती हैं।

परन्तु जब कोई व्यक्ति अपनी आदत के विपरीत कुछ करना चाहता है तो आदत उसके सीखने की राह में बाधा बन जाती है, विशेषकर ऐसी स्थिति में जहाँ नई क्रिया के लिए व्यक्ति के मन में न विशेष रुचि ही होती है, और न उत्साह ही।

आदत डालने के लिए साधारणतया, निम्नलिखित नियम बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं :—

(क) जिस क्रिया की आदत व्यक्ति अपने में डालना चाहता है, उसके प्रति उसे अपना निश्चय पक्का कर लेना चाहिए। इच्छा के रहने पर भी यदि निश्चय दृढ़ नहीं रहता, तो व्यक्ति की वह क्रिया उत्साह हीन रह जाती है।

(ख) निश्चय कर लेने के पश्चात्, उस क्रिया को करने का जो प्रथम अवसर मिले, उसी में उस निश्चय को क्रियात्मक रूप में बदल देना चाहिये। अर्थात् यह निश्चय कर लेने के पश्चात्, कि पाँच बजे सवेरे उठा करना है, व्यक्ति को दूसरे दिन से ही अपने इस निश्चय को कार्यरूप में परिणत कर देना चाहिये। जहाँ किसी निश्चय को क्रियात्मक रूप में बदलने से पूर्व कुछ अवसरों को यों ही हाथ से जाने दिया जाता है, वहाँ निश्चय केवल इच्छा ही बनकर रह जाता है, उसकी आदत में बदलने की संभावना बहुत कम हो जाती है।

(ग) क्रिया के एक बार आरंभ हो जाने के पश्चात्, जब तक वह

आदत में नहीं बदल जाय, उसमें कोई भी नागा नहीं होने देना चाहिये। अर्थात् दो-चार दिन सुबह पाँच बजे उठने के पश्चात्, छुट्टी का दिन या ऐसे ही किसी और अन्य कारण से उसमें नागा नहीं आने देना चाहिए।

(घ) जहाँ तक संभव हो सके, उस क्रिया का अभ्यास प्रतिदिन करते रहना चाहिए। जैसे, किसी खेल की आदत डालनी हो तो उस खेल का अभ्यास जहाँ तक हो सके, रोज़ करना ही उचित है। आवृत्ति से आदत पक्की होती है।

(ङ) उस क्रिया के करने के किसी भी अवसर को यों ही नहीं छोड़ देना चाहिए। अर्थात् व्यक्ति को उस क्रिया के करने का जो भी अवसर मिले, उसका पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिए।

विलियम जेम्स ने इन उपर्युक्त नियमों को बहुत महत्त्व दिया है।

आदतों का त्याग

यदि किसी व्यक्ति में कुछ ऐसी आदतें पड़ गई हैं, जो उसके लिए असुविधाजनक या कष्टप्रद हैं, तो उन्हें त्यागने के लिए, उसे अपना ध्यान किसी अन्य क्रिया की ओर लगाने की चेष्टा करनी चाहिए। जैसे, बच्चे को अँगूठा चूसने की आदत पड़ जाने पर उसकी यह आदत दूर करने के लिए अँगूठा चूसने से बार बार मना करने की अपेक्षा यह कहीं उत्तम है कि उसका ध्यान किसी ऐसे खेल या क्रिया में लगा दिया जाय जिसमें हाथों की क्रिया की प्रधानता हो।

इसी प्रकार यदि आदत से विपरीत क्रिया असुविधाजनक न हो तो आदत को छोड़ने के लिए उस विपरीत क्रिया को अपनाने की चेष्टा की जा सकती है। व्यक्ति दाँतों से नाख़ून काटने की बुरी आदत को छोड़ने के लिए नाख़ूनों पर पालिश करना आरंभ कर दे, तो उस आदत के दूर हो जाने की बहुत संभावना है।

जिस प्रकार किसी आदत को बनाने में इच्छा और निश्चय का होना आवश्यक है, उसी प्रकार किसी आदत को छोड़ने के लिए भी इच्छा और निश्चय अनिवार्य है। परीक्षण द्वारा यह देखा गया है कि यदि कोई व्यक्ति किसी कार्य को बार-बार इस निश्चय से करता है, कि वह भविष्य में उसे कभी नहीं करना चाहता, तो उसे करने की उसकी आदत छूट जाती है। किसी व्यक्ति में ऐसी आदत पड़ गयी थी कि वह the के स्थान पर सदा hte लिखता था। इस आदत को छोड़ने के लिए उसने एक हज़ार बार hte ही लिखना आरम्भ किया। प्रत्येक बार hte लिखने के साथ ही वह मन ही मन यह कहता गया कि अब वह इस अशुद्धि को कभी नहीं करेगा। इसके बाद उसकी the के स्थान पर hte लिखने की आदत छूट गयी। अर्थात्, किसी आदत को बनाने या बदलने में इच्छा और निश्चय जितने महत्वपूर्ण हैं उतनी केवल क्रिया की आवृत्ति नहीं होती।

———

स्मृति

स्मृति व्यक्ति की वह मानसिक क्रिया है, जो उसके मन पर अङ्कित भूतपूर्व घटनाओं के अनुभव को, वर्तमान स्थिति के संपर्क से पुनः सचेत कर देती है। किसी घटना के होने ही व्यक्ति के मन में उन पूर्वानुभूतियों के संस्कार उत्तेजित हो जाते हैं जो उपस्थित घटना से सम्बन्धित रहते हैं। अर्थात्, वर्तमान स्थिति अपने प्रसङ्ग के अनुभवों की स्मृति को उत्तेजित करती है। वह उनके प्रति सचेत हो जाता है, और उनका प्रयोग अपनी बुद्धि तथा इच्छा के अनुसार करता है। व्यक्ति के वह अनुभव, जो उसके अचेतन-मन में पड़े, उसके व्यवहार को अज्ञात रूप से प्रभावित करते रहते हैं, स्मृति नहीं कहे जाते। स्मृति सचेत-मन की क्रिया है, और इस क्रिया के लिए पूर्व अनुभव का होना अनिवार्य है। जहाँ पूर्वानुभूति का अभाव है, वहाँ स्मृति का भी अभाव रहता है। नवजात शिशु को न अनुभव ही रहते हैं, और न स्मृति ही।

विभिन्न प्रकार की स्थितियों के संपर्क में आने से, व्यक्ति भाँति भाँति के अनुभव ग्रहण करता है। यह सब अनुभव सदा ही उसके मन में जाग्रत नहीं रहते, किन्तु संस्कारों के रूप में, उसके मन पर अङ्कित रहते हैं। उनकी जागृति के लिए प्रासङ्गिक स्थिति की उपस्थिति आवश्यक है।

जब किसी पूर्व अनुभव से सम्बधित स्थिति या घटना, प्रत्यक्ष होती है, तो व्यक्ति उसे अपने पूर्व अनुभव के आधार पर पहचान लेता है। अर्थात्, वह स्थिति या घटना उसे बिलकुल नई या अपरिचित नहीं लगती, बल्कि उसे अपनी-सी अथवा परिचित दिखाई देती है। किसी जाने-पहचाने

व्यक्ति के सामने आते ही हम उसे तुरन्त पहचान लेते हैं। भले ही उससे सम्बधित कुछ विशेष घटना हमारी स्मृति में न आती हो। पहचानने में स्थिति स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष रहती है, जिसके कारण उससे सम्बधित थोड़ा-सा परिचय रहने पर भी हम उसे सुगमता से पहचान लेते हैं।

किसी विषय के सम्बन्ध में व्यक्ति का ज्ञान जब बहुत गम्भीर रहता है, तो प्रासङ्गिक स्थिति के नाम-मात्र से उससे संबंधित बहुत-सी बातों की स्मृति उसमें जाग्रत हो जाती है। उसे उस विषय के सम्बन्ध में जितना अधिक लाभ होता है, उतना ही उसकी पुनः स्मरण की क्षमता अधिक रहती है। यदि कोई कविता किसी व्यक्ति को विशेष रूप से कण्ठस्थ हो, तो उसके सम्बन्ध में एक शब्द या कुछ अन्य संकेत ही उसके पुनः स्मरण के लिए पर्याप्त हो जाते हैं। इसीलिए पुनः स्मरण की अपेक्षा किसी विषय या स्थिति को पहचान लेना कहीं अधिक सुगम और सरल है। हम जितने व्यक्तियों को पहचानते हैं, उनमें से ऐसे बहुत कम रहते हैं जिनके नाम हमें स्मरण होते हैं, या जिनके विषय में हम कुछ विशेष घटना का वर्णन कर सकते हैं।

इस विवरण से यह स्पष्ट है कि स्मृति, यथार्थ में, व्यक्ति की विभिन्न क्रियाओं तथा मानसिक स्थिति का रूप है। यह क्रियाएँ तथा मानसिक स्थित इस प्रकार हैं:—

(i) स्मरण
(ii) धारणा
(iii) पहचान
(iv) पुनः स्मरण

इनमें से पहले दो, अर्थात् स्मरण तथा धारणा, स्मृति के आधार हैं; और पिछले दो, अर्थात् पहचान, और पुनः स्मरण, स्मृति के प्रमाण हैं। पहचान तथा पुनः स्मरण द्वारा स्मृति का पता चलता है। व्यक्ति में

पहचान तथा पुनः स्मरण की योग्यता तभी हो सकती है, यदि उसके मन पर पूर्व-अनुभव के संस्कार अङ्कित हों।

स्मरण

व्यक्ति के जीवन में अनेक अनुभव होते हैं, और वह अनुभव अपना प्रभाव उसके मन पर अङ्कित कर जाते हैं, जिन्हें प्रायः संस्कार कहा जाता है। व्यक्ति में जितने अधिक संस्कार रहते हैं, और उनमें जितना अधिक परस्पर सम्बन्ध पाया जाता है, उतनी ही सन्तोषजनक उसकी स्मृति होती है।

किसी कारणवश यदि व्यक्ति के अनुभव अपने संस्कारों को उसके मन पर अङ्कित नहीं कर पाते, तो व्यक्ति उन्हें स्मरण करने में असमर्थ रहता है। कई बार व्य.क्त की शारीरिक तथा मानसिक अवस्था कुछ ऐसी रहती है कि अनुभव को अपने संस्कार अङ्कित करने का अवकाश या सुविधा नहीं मिलती। इस दशा में वह संस्कारों के अभाव के कारण, उन घटनाओं का न पुनः स्मरण कर सकता है, और न पहचान ही सकता है। यह देखा जाता है कि सिर पर चोट लगने पर कुछ व्यक्ति उस घटना के तात्कालिक पूर्व अनुभव को स्मरण नहीं कर पाते।

कभी-कभी व्यक्ति के जीवन में कुछ घटनाएँ ऐसे अवसर पर होती हैं, जब कि उसका ध्यान पूरे संवेग के साथ किसी अन्य विषय की ओर लगा होता है। ऐसी अवस्था में, वह न तो उन घटनाओं का पुनः स्मरण कर सकता है, और न अपने को उससे परिचित ही पाता है। अर्थात, वह अनुभव उसकी स्मृति का अंश ही नहीं बन पाते।

इसी प्रकार थके हुए व्यक्ति की स्मरणशक्ति बहुत मन्द पड़ जाती है। उसकी मानसिक शक्ति इतनी शिथिल हो जाती है कि वह उस समय किसी विषय को स्मरण करते हुए, उसका सम्बन्ध अन्य प्रस्तुत

विषयों से नहीं देख पाता। इसलिए उसके मन में उस विषय के संस्कार, बहुत कुछ अलग-से रह जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि प्रासङ्गिक विषय उन संस्कारों को उत्तेजित नहीं कर पाते, जिससे उसकी पुनः स्मरण की क्षमता बहुत कुछ अशक्त रहती है।

साधारणतया, किसी विषय को स्मरण करने के लिए उसे बार-बार दोहराना पड़ता है। विषय को जितना अधिक दोहराया जाय, उतना ही गहरा उसका संस्कार रहता है। अर्थात्, उतनी ही पक्की उसकी स्मृति हो जाती है। परन्तु कुछ अनुभव व्यक्ति के लिए इतने महत्वपूर्ण रहते हैं, या वह इतने संवेग सहित उसके जीवन में आते हैं कि उनके एक ही अनुभव से वह इतना प्रभावित हो जाता है कि उन्हें कभी भूल नहीं पाता। ऐसी घटनाएँ जीवन में बहुत कम होती हैं।

किसी विषय को स्मरण करने का ध्येय उसे पुनः स्मरण करना रहता है। इसलिए स्मरण करने की विधि इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे :—

(i) स्मरण करने में समय कम लगे।

(ii) संस्कार पक्के हों, और

(iii) उनका पुनः स्मरण सुगम तथा उपयोगी सिद्ध हो।

इस दृष्टिकोण से स्मरण करने की सुगम तथा उपयोगी विधियाँ निम्नलिखित हैं.—

सम्पूर्ण अथवा आंशिक स्मरण-विधि

किसी विषय को स्मरण करने के लिए, सम्पूर्ण स्मरण-विधि का प्रयोग, बहुधा उपयोगी सिद्ध होता है। इस विधि के प्रयोग से केवल समय की ही बचत नहीं होती, पुनः-स्मरण भी सुगम तथा सही हो जाता है।

किसी विषय का तथ्य उसके अलग-अलग अक्षरों या वाक्यों में नहीं पाया जाता, परन्तु उस विषय के संयोग में मिलता है। इस विधि के

प्रयोग से व्यक्ति स्मरण-विषय का तथ्य सही तौर पर समझ जाता है। उस विषय के विभिन्न भागों के परस्पर संबन्ध भी स्पष्ट हो जाते हैं। यदि किसी बालक को स्मरण करने के लिए दस-दस शब्दों की दो सूचियाँ दी जायँ जिनमें से एक सूची अर्थहीन शब्दों की हो और दूसरी ऐसे शब्दों की जिनके अर्थ वह समझ सकता हो, तो बालक अर्थहीन शब्द-सूची को स्मरण करने में दूसरी सूची की अपेक्षा बहुत अधिक समय लेता है। अर्थ-हीन शब्द-सूची में से भी उसे वह शब्द पहले कण्ठ होते हैं, जिनके वह कुछ अर्थ लगा लेता है। स्मरण किये हुए अर्थहीन शब्द अन्य शब्दों की अपेक्षा विस्मृत भी शीघ्र होते हैं।

आंशिक-स्मरण-विधि के प्रयोग से, व्यक्ति विषय के विभिन्न भागों का परस्पर सम्बन्ध नहीं समझ पाता। विषय के विभिन्न भाग इतने अलग-अलग रह जाते हैं कि बहुधा विषय का तथ्य खो जाता है, जिससे पुनः स्मरण में सहज सरलता नहीं रह पाती।

इसके अतिरिक्त आंशिक-स्मरण विधि के प्रयोग से व्यक्ति विभिन्न भागों के अन्तिम शब्द को उसके अगले भाग का संकेत-शब्द नहीं बना पाता। प्रत्येक भाग का अन्तिम शब्द उसी भाग के प्रथम शब्द का संकेत हो जाता है। इसलिए प्रत्येक भाग के आरंभ में व्यक्ति संकेत-शब्द की खोज में रुक जाता है।

स्मरण विषय : कविता की २४० पंक्तियाँ

स्मरण विधि	दिनों की संख्या	मिनटों की संख्या
आंशिक : तीस पंक्तियाँ प्रतिदिन	१२	४३१
सम्पूर्ण : तीन आवृत्तियाँ प्रतिदिन	१०	३४८

सम्पूर्ण-स्मरण-विधि से लगभग २० प्रतिशत समय की बचत
(स्नाइडर और पाइल के अनुसार)

कभी-कभी स्मरण करने का विषय, यथार्थ में बहुत से विषयों का एक संग्रह होता है। ऐसी दशा में उस संग्रह को एक दो बार सम्पूर्ण रूप से पढ़ने के पश्चात्, अलग-अलग भागों में स्मरण किया जा सकता है। चूँकि उस संग्रह का प्रत्येक भाग एक पूर्ण विषय है, इसलिए प्रत्येक भाग को कण्ठ करने के लिए संपूर्ण-स्मरण-विधि का प्रयोग करना उचित है। उस विषय के विभिन्न भागों को इस प्रकार स्मरण करने के पश्चात्, उन सब भागों को फिर से इकट्ठा दोहरा लेना चाहिये जिससे उनके परस्पर संबंध स्पष्ट हो जायँ।

स्मरण-विषय के बहुत लम्बे होने पर कुछ व्यक्तियों के लिए उसे छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटना आवश्यक हो जाता है। उस विषय को विभाजित करते समय इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिए कि उसका प्रत्येक भाग अपने में संपूर्ण हो, जिससे उसके विभिन्न भाग अर्थहीन न हो जायँ। उस विषय को इस प्रकार अलग-अलग टुकड़ों में स्मरण-करने के पश्चात्, संपूर्ण-स्मरण-विधि का प्रयोग उसी प्रकार करना चाहिए, जिस प्रकार विभिन्न विषयों के संग्रह को स्मरण करने के लिए किया जाता है।

बहुत बार स्मरण-विषय जटिलता में कुछ ऐसा रहता है कि उसके कुछ भाग तो एक दो बार ही पढ़ने पर याद हो सकते हैं, और कुछ बहुत बार दोहराने पड़ते हैं। ऐसी दशा में यदि संपूर्ण-स्मरण-विधि का प्रयोग किया जाय तो कठिन भागों को स्मरण करने में, सरल भागों को बार-बार पढ़ना आवश्यक हो जाता है, जिससे बहुत-सा समय व्यर्थ में ही व्यय हो जाता है। ऐसी दशा में, न तो केवल सम्पूर्ण-स्मरण-विधि प्रयोग में लाई जा सकती है, और न आंशिक-स्मरण-विधि ही। इन दोनों का मिश्रित रूप ही ऐसे विषय को स्मरण करने के लिये उपयुक्त सिद्ध होता है। अर्थात्, स्मरण-विषय के लक्ष्य को समझने के लिए, पहले तो सम्पूर्ण-स्मरण-विधि प्रयोग में लानी चाहिए, तत्पश्चात विशेष जटिल या कठिन

भाग बार-बार पढ़ लेने चाहिए। इस प्रकार जब उस विषय के सब भाग कठिनाई में एक समान हो जायँ, तो उसे फिर सम्पूर्ण-स्मरण-विधि के प्रयोग से स्मरण करना उचित है।

सम्पूर्ण-स्मरण-विधि तथा व्यक्तिगत विशेषताएँ

किसी विषय को स्मरण करने के लिए, यद्यपि सम्पूर्ण-स्मरण-विधि बहुत उपयोगी पाई जाती है, तो भी सब व्यक्तियों के लिए इसकी उपयोगिता एक समान नहीं रहती। मनुष्य जाति में स्वभाव की भिन्नता के कारण व्यक्तिगत भेद बहुत पाया जाता है। सम्पूर्ण-स्मरण विधि के प्रयोग में व्यक्ति अपनी चेष्टा के फल को तुरन्त जाँच नहीं सकता, जब कि आंशिक-स्मरण-विधि के प्रयोग से व्यक्ति अपनी क्रिया के परिणाम को थोड़े-थोड़े समय के पश्चात् माप लेता है।

इसलिए वह व्यक्ति जो बहुधा प्रोत्साहन के बल पर अपनी क्रिया को बनाए रखते हैं, सम्पूर्ण-स्मरण विधि का लाभ नहीं उठा सकते। वे क्रिया के परिणाम को प्रमाणित रूप से न देख सकने के कारण शीघ्र ही निराश होकर स्मरण करना ही छोड़ देते हैं। ऐसे व्यक्तियों के लिये आंशिक-स्मरण-विधि ही उपयुक्त हैं। आंशिक-स्मरण-विधि के प्रयोग के पूर्व स्मरण-विषय को एक-दो बार सम्पूर्ण रूप से पढ़ लेना चाहिये ताकि उसके अर्थ स्पष्ट हो जायँ।

व्यवहित अथवा अव्यवहित स्मरण विधि
या
समय विभाग अथवा निरन्तर-स्मरण-विधि

किसी विषय को स्मरण करने के लिए उसे बार-बार दोहराना पड़ता है। कुछ व्यक्ति स्मरण-विषय को तब तक निरन्तर दोहराते ही रहते हैं, जब तक

कि उन्हें वह कण्ठ न हो जाय; परन्तु निरन्तर-स्मरण-विधि का इस प्रकार प्रयोग केवल वहीं हो सकता है, जहाँ स्मरण-विषय बहुत छोटा रहता है। लम्बे विषय को कण्ठ करने में साधारणतया समय-विभाग स्मरण-विधि का प्रयोग करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त समय-विभाग-स्मरण-विधि की उपयोगिता के और भी बहुत से कारण हैं:—

(क) किसी विषय को बार-बार निरन्तर दोहराने पर व्यक्ति का मन उससे ऊब जाता है। उसकी रुचि उस विषय की ओर से हटकर, अन्य स्थितियों तथा घटनाओं की ओर आकर्षित होने लगती है, जिससे उसकी स्मरणशक्ति मन्द पड़ जाती है; परन्तु समय-विभाग स्मरण-विधि के प्रयोग में व्यक्ति एक विषय को दो-चार बार दोहरा कर, उसे कुछ समय के लिए छोड़ देता है। इससे उसका मन उस विषय की ओर से थकता नहीं। उसकी रुचि उसमें बनी रहती है, जो उसे उस विषय को स्मरण करने के लिये प्रोत्साहित करती रहती है।

(ख) यदि किसी विषय को निरन्तर स्मरण किया जाय तो मन को उसे अव्यक्त रूप से पक्का करने का अवकाश नहीं मिलता। इसलिए, उसे स्मरण करने के लिए, व्यक्ति को केवल चेतन-मन की क्रिया पर ही निर्भर करना पड़ता है। यदि विषय को दोहराने के बीच में कुछ अवकाश छोड़ा जाय, तो अवचेतन मन अज्ञात रूप से उसे पक्का करता रहता है। फलस्वरूप, समय-विभाग स्मरण-विधि के प्रयोग में (१) दोहराना भी कम पड़ता है, और (२) स्मरण करने के लिए कुल समय भी कम लगता है।

समय-विभाग स्मरण-विधि के प्रयोग में निम्नलिखित बातें विशेष ध्यान देने योग्य हैं :—

(i) स्मरण करने का समय न तो इतना लम्बा हो कि व्यक्ति का मन उस विषय से ऊब या थक जाय, और न वह इतना कम होना चाहिए कि व्यक्ति को स्मरण-विषय में दत्तचित्त होने का अवकाश न मिले। व्यक्ति जब कुछ स्मरण करने लगता है, तो उसका कुछ समय अपने मन

को अन्य सब तरफ से बटोरकर एकाग्र करने तथा स्मरण-विषय में लगाने में लग जाता है। इसीलिए यदि स्मरण करने का समय बहुत कम रहता है, तो व्यक्ति का बहुत-सा समय अपने को बार-बार स्मरणकार्य में लगाने में नष्ट हो जाता है।

(ii) समय-विभाग विधि के प्रयोग में यह आवश्यक नहीं होता कि विषय के दोहराने के बीच के अवकाश को यों ही खाली छोड़ दिया जाय; अर्थात्, उस अवकाश में कुछ किया ही न जाय। उस समय को किसी भी ऐसी अन्य क्रिया में लगाया जा सकता है, जो स्मरण-विषय से बहुत कुछ मिलती-जुलती न हो। इन दोनों के एक समान रहने पर, अवचेतन मन की क्रिया, तथा चेतन मन की क्रिया, आपस में कुछ इस प्रकार मिल जाती हैं कि दोनों ही विषय एक दूसरे से उलझ जाते हैं।

(iii) इस अवकाश की अवधि को क्रमशः बढ़ाया जा सकता है। किसी विषय को भूलने की गति पहले बहुत तीव्र रहती है, परन्तु जैसे-जैसे समय बीतता है, यह गति क्रमशः धीमी पड़ती जाती है। एबिंगहॉज़ का मत है कि स्मरण किये हुए विषय में से व्यक्ति लगभग १/२ पहले आठ घण्टों में, २/३ दिन भर में, और ३/४ सप्ताह भर में और ४/५ महीने भर में भूलता है। अर्थात्, जितना वह पहले ८ घण्टों में भूलता है, उससे आधा और भूलने में उसे महीना भर लग जाता है।

परन्तु ऐबिंगहॉज़ का यह विस्मृति का नियम सब प्रकार के स्मरण-विषय के लिए सही नहीं माना जा सकता। व्यक्ति को जो विषय बहुत अच्छी तरह स्मरण रहते हैं, उन्हें वह बहुत धीरे-धीरे भूल पाता है; किन्तु साधारण रूप से स्मरण किये हुए विषय वह तीव्रगति से भूलता है। इसके अतिरिक्त वह विषय, जिनके तथ्य और अर्थ से वह भलीभाँति परिचित रहता है अर्थहीन शब्दों की अपेक्षा भूलने में बहुत समय लेते हैं।

इसलिए विस्मृति के संबंध में यही निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि व्यक्ति की विस्मृति की गति पहले बहुत तीव्र रहती है, परन्तु जैसे-

जैसे समय बीतता जाता है, यह गति भी धीमी पड़ती जाती है।
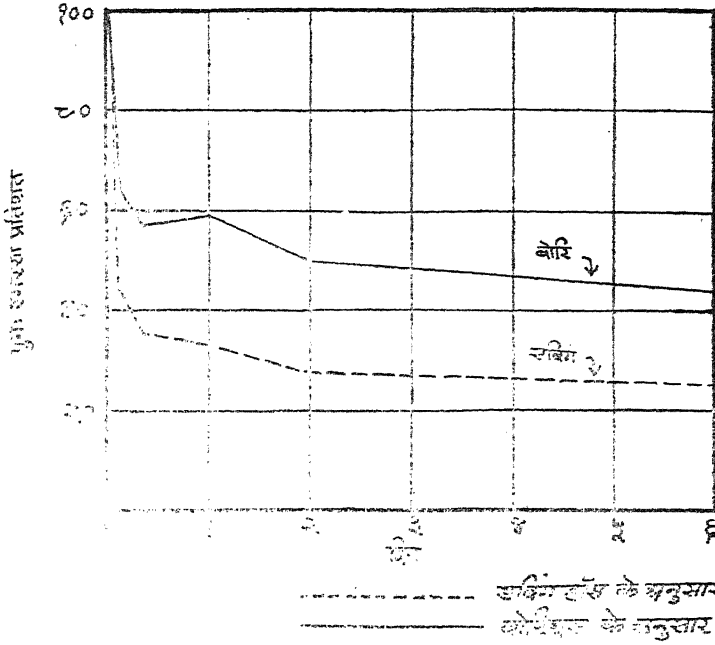
विस्मृति की वक्र रेखाएँ

ऐबिंगहॉज़ की यह वक्र रेखा वैयक्तिक है, जो अर्थहीन शब्दांश की विस्मृ त के नियम को अकित करती है। बोरियस की रेखा सामूहिक है, किन्तु उनका स्मरण विषय भी अर्थहीन शब्दांश की सूचियाँ ही था।

(गेट्स तथा जरसिल्ड के शिक्षा मनोविज्ञान के आधार पर)

इसीलिए किसी विषय के स्मरण करते समय, दोहराने के बीच की अवधि पहले छोटी होनी चाहिए, जो धीरे-धीरे क्रमशः बढ़ाई जा सकती है।

स्थितियाँ जिनमें निरन्तर-स्मरण-विधि का प्रयोग उचित रहता है:—

(क) यद्यपि समय-विभाग स्मरण-विधि सदा उपयोगी सिद्ध होती है, किन्तु ऐसे अवसर पर, जहाँ विषय को स्मरण करने के लिए समय बहुत कम रहता है, निरन्तर-स्मरण-विधि को ही अपनाना पड़ता है।

(ख) जहाँ किसी विषय को केवल थोड़े ही समय के लिए स्मरण रखना आवश्यक होता है, वहाँ निरन्तर-स्मरण-विधि का प्रयोग भी ठीक रहता है।

(ग) इसके अतिरिक्त, उतावले स्वभाव के व्यक्ति समय विभाग स्मरण-विधि का लाभ नहीं उठा सकते। ऐसे लोग, और विशेषकर बालक, अपनी क्रिया के फल को इतना तुरन्त जाँचना चाहते हैं कि उनके लिए निरन्तर-स्मरण-विधि का प्रयोग उपयुक्त सिद्ध होता है।

स्मरण करने की पठन-विधि

किसी विषय को स्मरण करने के लिए, उसे केवल वैसे ही बार-बार दोहराते जाने से यह कहीं उत्तम है कि व्यक्ति बीच-बीच में उसका पाठ भी करता जाय। पाठ द्वारा व्यक्ति को यह अनुमान लग जाता है कि विषय के कौन-कौन से भाग विशेष कठिन हैं और कहाँ उसे अधिक ध्यान देना चाहिए।

पठन-विधि द्वारा व्यक्ति को अपनी स्मरण-क्रिया के परिणाम का पता चलता रहता है, जिससे उसे अपनी क्रिया में बहुत प्रोत्साहन मिलता है।

संकेत-शब्द द्वारा उसका ध्यान विषय के कठिन भागों की ओर इतना आकर्षित हो जाता है, कि कठिनाइयाँ बहुत कुछ अपने आप सुलझ

स्मरण करने की पठन-विधि तथा साधारण पाठ का प्रयोग

स्मरण विषय :—	१६ निरर्थक शब्दांश		१७० शब्द, पाँच संग्रह में	
	पुनः स्मरण प्रतिशत में		पुनः स्मरण प्रतिशत में	
स्मरण-विधि	सीखने के तत्काल बाद	सीखने के ४ घण्टे बाद	सीखने के तत्काल बाद	सीखने के ४ घण्टे बाद
सब समय पढ़ने में	३५	१५	२५	१६
समय का १/५ भाग पठन में	५०	२६	३७	१९
समय का २/५ भाग पठन में	५४	२८	४१	२५
समय का ३/५ भाग पठन में	५७	३७	४२	२६
समय का ४/५ भाग पठन में	७४	४८	४२	२६

इस तालिका से स्पष्ट हो जाता है कि किसी पाठ को कण्ठ करने के लिये जितना अधिक समय उसके पठन में व्यय किया जाता है, उतना ही उसका परिणाम संतोषजनक होता है। सीखने के कुल समय में से ८० प्रतिशत समय उपयोगी रूप से पठन में व्यय किया जा सकता है। निरर्थक शब्दांश को कण्ठ करने के लिए पठन-विधि विशेषकर उपयुक्त है, क्योंकि ऐसे पाठ को स्मरण करने के लिए आवृत्ति विशेष आवश्यक है। (गेट्स के आधार पर)

जाती हैं। फलस्वरूप पठन-विधि के प्रयोग से किसी विषय को स्मरण करने में समय भी कम लगता है और उसकी स्मृति भी पक्की हो जाती है।

धारणा

व्यक्ति के अनुभव यद्यपि क्षणिक होते हैं, परन्तु जो संस्कार वे अपने

पीछे छोड़ जाते हैं, वह उसके मन पर अङ्कित रहते हैं। धारणा मन की उस स्थिति का नाम है जिसमें संस्कार बने रहते हैं। धारणा के अस्तित्व का ज्ञान हमें पुनः स्मरण से होता है।

जिस प्रकार वस्त्र आदि संदूक में सुरक्षित पड़े रहते हैं, उसी प्रकार धारणा में संस्कार बने रहते हैं। भेद केवल इतना ही है कि संदूक में वस्त्र ज्यों-के-त्यों ही पड़े रहते हैं, जब कि धारणा में कुछ संस्कारों की पुष्टि होती रहती है और कुछ आवृत्ति के अभाव में मन्द पड़ते जाते हैं।

प्रयोग द्वारा यह सिद्ध है कि धारणा में से कोई भी संस्कार संपूर्ण रूप से लोप नहीं होता। समय की गति से कुछ संस्कार इतने मन्द पड़ जाते हैं कि व्यक्ति उनसे सम्बन्धित विषय को न तो पुनः स्मरण कर सकता है और न वह अपने को उस विषय से परिचित ही पाता है। परन्तु यदि वही विषय उसे फिर से स्मरण करने को दिया जाय तो समान कठिनाई के अन्य विषयों की अपेक्षा उसे स्मरण करने में समय कम लगता है और दोहराना भी कम पड़ता है। यह समय और परिश्रम की बचत उसके पूर्व-संस्कार के ही कारण होती है।

धारणा, चूँकि व्यक्ति के मन की स्थिति है, उसकी क्रिया नहीं, इसलिए उसमें कुछ उन्नति नहीं की जा सकती। अस्वस्थ दशा में धारणा के ह्रास की संभावना रहती है। इसलिए धारणा को बनाये रखने के लिए, व्यक्ति को अपने स्वास्थ्य को ठीक बनाये रखना आवश्यक है।

व्यक्ति अपनी स्मृति की इस अवस्था का पूरा लाभ उठाने के लिए केवल यही कर सकता है कि वह अपने विभिन्न अनुभवों में परस्पर इतना अधिक सम्बन्ध रखे कि उनमें से किसी एक संस्कार की आवृत्ति बहुत से अन्य प्रासङ्गिक संस्कारों को भी साथ ही पुष्ट करती जाय। संस्कारों की इस प्रकार पुष्टि होने पर, वह मन्द पड़ने से रुक जाते हैं, परन्तु इसे धारणा की उन्नति नहीं कहा जा सकता। वह व्यक्ति का एक स्वाभाविक गुण है।

वृद्ध अवस्था के आ जाने पर, जैसे-जैसे शारीरिक तथा अन्य मानसिक

शक्तियाँ क्षीण होने लगती हैं, उसी प्रकार धारणा में भी कमज़ोरी आने लगती है।

पहचान

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पहचानने में परिचित स्थिति या घटना व्यक्ति के सामने प्रत्यक्ष रहती है। उस स्थिति या घटना के सामने आते ही व्यक्ति उसे अपने पूर्व अनुभव के आधार पर तुरन्त पहचान लेता है। उस प्रत्यक्ष स्थिति से सम्बन्धित कुछ बातें भी प्रायः उसे याद आ जाती हैं, परन्तु केवल पहचान के लिए उन बातों का याद आ जाना आवश्यक नहीं है। पहचानने के लिए तो केवल यही आवश्यक है कि व्यक्ति को प्रत्यक्ष स्थिति या विषय के परिचय में शंका न रहे। अर्थात्, उसको इसमें सन्देह न हो कि वह स्थिति या विषय उसका पहले से जाना हुआ है।

कभी-कभी किसी स्थिति या विषय के परिचय में व्यक्ति को शंका-सी बनी रहती है। वह न तो अपने को उस स्थिति से बिलकुल अपरिचित ही पाता है, और न पूर्ण रूप से परिचित ही। उसे वह स्थिति या विषय केवल परिचित-सा लगता है।

इस प्रकार की अधूरी पहचान प्रायः वहाँ रहती है, जहाँ स्थिति परिचित तथा अपरिचित घटनाओं का एक मिश्रित रूप होती है; या, जब व्यक्ति स्थिति के तथ्य को छोड़कर उसकी किसी छोटी-मोटी व्याख्या द्वारा उसे पहचानने लगता है। व्याख्या में बहुत-सी स्थितियाँ एक समान रहती हैं, परन्तु उनके अर्थ तथा तथ्य भिन्न-भिन्न स्थिति में अलग-अलग रहते हैं; जैसे कि, एक ही शब्द संग्रह से बहुत से भिन्न-भिन्न वाक्य बन सकते हैं। इसलिए जो व्यक्ति विषय के तथ्य या अर्थ को छोड़कर, केवल उसकी बहिरंग व्याख्या में ही उलझा रहता है, उसकी पहचान में दृढ़ता नहीं आती। उसकी पहचान में शंका लगी रहती है।

पहचानने की योग्यता को सन्देह-रहित तथा उपयोगी बनाने का सबसे उत्तम उपाय यही है कि व्यक्ति अपने में विषय तथा स्थिति के तथ्य को ग्रहण करने की आदत डाले, उसके केवल बाहरी आकार में ही उलझा न रहे।

पुनः स्मरण

जब व्यक्ति किसी विषय से भली-भाँति परिचित रहता है, तो उसके संकेतमात्र से, उससे सम्बन्धित बहुत-सी घटनाएँ या विषय, उसे पुनः स्मरण आ जाते हैं। जैसे परीक्षा में प्रश्न को देखते ही विद्यार्थी को उससे सम्बन्धित या प्रासङ्गिक विषय आ जाते हैं। उस विषय के संस्कार उसमें जितने दृढ़ रहते हैं उतनी ही उसकी पुनः स्मरण शक्ति तीव्र रहती है। जब संकेत तथा पुनः स्मरण विषय में परस्पर सही सम्बन्ध रहता है, तब पुनः स्मरण यथातथ्य कहलाता है। उदाहरण के लिये किसी व्यक्ति को देखते ही उसका नाम याद आ जाय, तो पुनः स्मरण यथातथ्य है।

परन्तु, कभी-कभी संकेत तथा पुनः स्मरण विषय में सही संबन्ध नहीं पाया जाता। जैसे कि किसी व्यक्ति के सम्मुख आने पर हम उसे पहचान तो लेते हैं परन्तु उसके नाम के स्थान पर कुछ और ही नाम याद पड़ता है। अपने ऐसे पुनः स्मरण से व्यक्ति सन्तुष्ट नहीं हो पाता। उसका मन चेतन या अचेतन रूप से सही नाम की खोज करता रहता है। फल-स्वरूप, एक नाम के पश्चात् दूसरा, और दूसरे के पश्चात् तीसरा उसके मन में आता रहता है और यह चेष्टा तब तक बनी ही रहती है जब तक कि आंशिक पुनः स्मरण यथातथ्य नहीं हो जाता।

उदाहरण :—परमात्मा स्वरूप नाम को पुनःस्मरण करने की चेष्टा में पुनः स्मरण, इस प्रकार के हो सकते हैं :—

(१) रघुपति,
(२) राघव,
(३) भगवान दास,
(४) भगवान स्वरूप,
(५) परमात्मा स्वरूप ।

इसी प्रकार 'नसीबचन्द' जैसे अप्रचलित नाम को पुनः स्मरण करते समय 'क़िसमत' जैसा प्रचलित शब्द याद आ सकता है। इन दोनों शब्दों में अर्थ की समानता है और भिन्नता आकार की है। व्यक्ति के नाम के अर्थ का प्रचलित शब्द पहले स्मरण हो जाता है, और सही नाम, यानी नसीबचन्द, उसके बाद याद आ सकता है; अर्थात, आंशिक पुनः स्मरण के पश्चात्, व्यक्ति की मानसिक प्रक्रिया, ज्ञात या अज्ञात रूप से सही नाम की खोज करती रहती है और कुछ समय के बाद, पुनःस्मरण यथातथ्य हो जाता है।

पुनः स्मरण में बाधाएँ

यद्यपि, साधारणतया व्यक्ति की पुनःस्मरण की योग्यता, उसके संस्कार की गम्भीरता के अनुसार होती है, तो भी अनेक बार वह अपने ऐसे अनुभव भी, जिनसे वह बहुत अच्छी तरह परिचित होता है, पुनःस्मरण नहीं कर पाता। उसकी इस असमर्थता के अनेक कारण हो सकते हैं :-

(क) यदि किसी व्यक्ति के मन में, एक विषय को व्यक्त करने की दो या अधिक शैली, एक साथ ही उमड़ आयें, तो वह एक दूसरे की राह में रुकावट बन जाती हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति उस विषय के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कह पाता। इस प्रकार की बाधा बहुत देर तक नहीं बनी रहती। यदि उस विषय को थोड़ी देर के लिए यों ही छोड़ दिया जाय तो वह बाधा अपने आप दूर हो जाती है।

(ख) कभी-कभी संवेग के कारण व्यक्ति की मानसिक स्थिति बहुत अस्थिर हो जाती है। संवेग को उत्तेजित करनेवाली स्थिति उसके ध्यान को अपनी ओर इतना आकर्षित कर लेती है कि वह और कुछ सोच या समझ नहीं पाता। उसकी बुद्धि की प्रखरता मन्द पड़ जाती है। फलस्वरूप, वह प्रत्यक्ष स्थिति को सही तौर से समझ नहीं सकता और न उससे प्रासङ्गिक विषय ही उसे याद आते हैं। इसलिए किसी भी शिक्षा-प्रणाली में भय का प्रयोग हानिकारक है। बच्चे की स्मरणशक्ति तथा पुनः स्मरण योग्यता को भय मन्द कर देता है और साथ ही बच्चे के मन में शिक्षा के प्रति अरुचि पैदा हो जाती है। प्रचलित परीक्षा-विधि इस दोष से मुक्त नहीं है। वह बच्चे में भय पैदा करती है, जिसके कारण बहुत से बच्चे किसी विषय के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानते हुए भी, उसे ठीक प्रकार से व्यक्त नहीं कर पाते। ऐसे बच्चों की परीक्षा में असफलता विशेष रूप से दुखद है, क्योंकि वह बच्चों के मन को इतना खिन्न कर देती है कि वे परीक्षा-विधि, शिक्षा-प्रणाली तथा समाज सब के प्रति कटु हो जाते हैं।

(ग) शरीर तथा मन में पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण, शारीरिक थकान का बच्चे की स्मृति पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति जितना अधिक थका रहता है, उतनी ही उसकी स्मरणशक्ति तथा पुनः स्मरण योग्यता कम हो जाती है। इसीलिए किसी विषय के संस्कारों के गहरे होने पर भी, यदि व्यक्ति बहुत थका रहता है, तो वह उनसे सम्बन्धित अनुभवों को पुनः स्मरण नहीं कर पाता।

क्या स्मृति में उन्नति की जा सकती है?

स्मृति में उन्नति के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों में बहुत मतभेद पाया जाता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि स्मृति व्यक्ति का एक स्वाभाविक गुण है। इसलिए इसमें कुछ भी उन्नति नहीं हो सकती।

इसके विपरीत कुछ मनोवैज्ञानिकों के विचार में व्यक्ति अपनी इच्छानुसार अपनी स्मृति में उन्नति कर सकता है। उनका विचार है कि स्मृति में उन्नति अभ्यास द्वारा होती है। इसलिए, स्मृति में उन्नति करने के लिए, व्यक्ति को कुछ न कुछ स्मरण करते ही रहना चाहिए, भले ही स्मरण विषय बिलकुल निरर्थक ही क्यों न हो।

परन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है, स्मृति यथार्थ में व्यक्ति की मानसिक स्थिति तथा क्रियाओं का एक संग्रह है। अर्थात् स्मृति, (i) स्मरण, (ii) धारणा, (iii) पहचान और (iv) पुनः स्मरण का एक समुच्चय है। इनमें से 'धारणा' उसकी मानसिक स्थिति है और शेष तीनों विभिन्न प्रकार की मानसिक क्रियाएँ हैं।

जहाँ तक स्मरण, पहचान तथा पुनःस्मरण का सम्बन्ध है, व्यक्ति इनमें उचित विधि के प्रयोग से बहुत उन्नति कर सकता है। स्मरणशक्ति में उन्नति करने के लिए, जिन सुगम तथा उपयोगी विधियों का प्रयोग किया जाता है, उनका वर्णन हम पहले कर चुके हैं।

इसी प्रकार, पहचान तथा पुनः स्मरण की योग्यता में उन्नति की विधियों का भी उल्लेख पहले किया जा चुका है।

व्यक्ति स्मरण विषय को जितनी अच्छी तरह समझ सकता है, उतनी ही जल्दी वह उसे स्मरण कर लेता है, और वह अपने ज्ञान में जितना अधिक परस्पर सम्बन्ध बना सकता है, उतनी ही उसकी पुनः-स्मरणशक्ति तीव्र रहती है।

परन्तु, जहाँ तक धारणा का सम्बन्ध है, वह व्यक्ति की मानसिक स्थिति है। इसलिए उसमें व्यक्ति अपनी इच्छानुसार या परिश्रम द्वारा कुछ उन्नति नहीं कर सकता। वह उसके मन का स्वाभाविक गुण है, जिसे वह अपने को स्वस्थ रखकर क्षीण होने से बचा सकता है, परन्तु उसमें उन्नति नहीं की जा सकती।

ध्यान

मन को एकाग्र करने तथा उसे किसी विषय विशेष की ओर लगाने को ध्यान देना कहते हैं। जब तक व्यक्ति किसी विषय-विशेष के प्रति एकाग्र-चित्त नहीं होता, वह उसके संबंध में कुछ विशेष ज्ञान भी ग्रहण नहीं कर सकता, यहाँ तक कि साधारण प्रत्यक्षीकरण के लिए भी ध्यान का होना आवश्यक है।

यद्यपि वातावरण विभिन्न प्रकार की वस्तुओं से परिपूर्ण है, तो भी व्यक्ति का अनुभव उन्हीं वस्तुओं या घटनाओं तक सीमित रह जाता है, जो उसके ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ होती हैं। जिस वस्तु या घटना के प्रति उसका ध्यान आकर्षित नहीं होता, उसका उसे ज्ञान भी नहीं होता।

एक ही परिवेश में रहने वाले व्यक्तियों के साधारण ज्ञान में जो परस्पर भिन्नता पाई जाती है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न व्यक्तियों के लिए ध्यान आकर्षित करने वाली स्थितियाँ या घटनाएँ भी भिन्न भिन्न रहती हैं। सब ही वस्तुएँ व्यक्ति के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करने में एक-सी समर्थ नहीं होती। इसीलिए यह कहा जा सकता है कि ध्यान चयनात्मक है। संसार की विभिन्न वस्तुओं या घटनाओं में से व्यक्ति केवल उन्हीं की ओर आकर्षित होता है, जो उसके लिए रुचिकर या आवश्यक हैं। भूखे व्यक्ति का ध्यान खाद्यपदार्थ की ओर विशेष रूप से आकर्षित होता है जब कि तृप्त व्यक्ति का ध्यान उस ओर जाता ही नहीं। इसी प्रकार विषय-विशेष में किसी व्यक्ति को जब खास रुचि रहती है, तो तत्सम्बन्धित छोटी-सी घटना के होते ही उसका ध्यान उस ओर आकर्षित हो जाता है।

ध्यान चेतनमन की क्रिया है। जिस घटना या स्थिति की ओर व्यक्ति का ध्यान आकर्षित होता है, वह उसके प्रति सचेत हो जाता है। चेतन-मन में उस वस्तु या घटना के आते ही उससे भिन्न सब विषय अवचेतन-मन में चले जाते हैं और वे उस सुषुप्त अवस्था में तब तक पड़े रहते हैं, जब तक कि उचित उत्तेजना के मिलने पर फिर से चेतना में नहीं आ जाते।

किसी रुचिकर पुस्तक को पढ़ते समय व्यक्ति का ध्यान उसमें इतना केन्द्रित हो जाता है कि उसे आसपास की किसी भी अन्य वस्तु की चेतना नहीं रह जाती। परन्तु, जैसे ही उस परिवेश में कुछ परिवर्तन होता है, उसका ध्यान पुस्तक से हटकर उस परिवर्तन की ओर आकर्षित हो जाता है। कुछ ही क्षण के पश्चात् वह फिर पुस्तक में तल्लीन हो जाता है।

ध्यान के इस गुण के आधार पर मन को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :—

(i) चेतन-मन

(ii) अवचेतनमन

(iii) अचेतनमन

चेतन और अवचेतन मन के विषय परस्पर बदलते रहते हैं, परन्तु अचेतन मन के विषय सीधे-सीधे चेतनमन में प्रवेश नहीं कर पाते।

व्यक्ति जब किसी विषय-विशेष पर ध्यान देता है, तो उसका ध्यान उस विषय के विभिन्न अंगों पर विभिन्न क्षणों में केन्द्रित रहता है। ध्यान का यह स्थानान्तरण उसका स्वाभाविक गुण है। ध्यान के इस गुण के कारण, व्यक्ति विषय को भिन्न-भिन्न पहलुओं से देख लेता है, जिससे उस विषय के अन्वेषण में उसे बहुत सहायता मिलती है।

ध्यान का विषय जब बहुत छोटा होता है, या कुछ ऐसा रहता है कि उसे व्यक्ति केवल एक ही पहलू से देख सकता है, तो वह अपने ध्यान को उस पर बहुत देर तक स्थिर नहीं रख पाता, तथापि व्यक्ति का ध्यान उससे उचटने लगता है। इच्छा रहने पर भी, वह उसे बहुत

देर तक ध्यान में नहीं रख सकता। कुछ ही क्षण में वह अपने को किसी अन्य विषय पर सोचते हुए पाता है। इसीलिए बच्चों के ध्यान को किसी विषय पर एकाग्र करने के लिए यह आवश्यक है कि वह विषय ऐसे रहें, जिनमें बालक के ध्यान के स्थानान्तरित होने में सुविधा हो। यही कारण
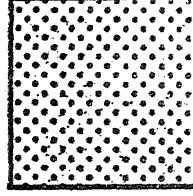
इस चित्र को ध्यान से देखते रहने पर, तरह-तरह के नमूने दिखाई पड़ते हैं। उनका इस प्रकार स्वतः बदलते जाना ध्यान के सहज स्थानान्तरण के गुण को स्पष्ट करता है।

है कि खेल या क़िस्से-कहानियों में बच्चे घण्टों ही लगे रहते हैं, जब कि अक्षर-ज्ञान के समय वह अपने ध्यान को बहुत समय के लिए एकाग्र नहीं रख सकते। इसीलिए खेल इत्यादि बच्चों की शिक्षा के श्रेष्ठ माध्यम हैं।

ध्यान में स्थानान्तरण के साथ ही एक स्वाभाविक अस्थिरता भी पाई जाती है। जब हम किसी वस्तु को देखते हैं, तो हमारा ध्यान बार-बार उससे हट जाता है पर क्षण भर में ही फिर उसी की ओर लौट आता है। ध्यान की यह अस्थिरता इतनी क्षणिक और त्वरित है कि व्यक्ति को साधारणतया इसका अनुभव भी नहीं होता।

किसी छोटी घड़ी को यदि कान से इतनी दूर रखा जाय कि उसकी टिक-टिक की आवाज केवल ध्यान देने पर ही सुनाई दे, तो उस ओर पूरा ध्यान लगा देने पर भी वह आवाज बीच-बीच में सुनाई नहीं पड़ती है; अर्थात्, उस ओर एकाग्र रहने पर भी ध्यान अस्थिर अवश्य रहता है।

ध्यान के विषय से हट कर मन जब किसी अन्य विषय की ओर

आकर्षित हो जाता है, तो उसे ध्यान की अस्थिरता नहीं कहते, उसे ध्यान का उच्चाटन कहते हैं। ऐसा प्रायः होता है कि कक्षा में बैठे बालक का ध्यान अध्यापक की बातें सुनते-सुनते कहीं और ही भटक जाता है। ध्यान का इस प्रकार उचाट होना, यथार्थ में ध्यान का अभाव नहीं होता। ध्यान सदा किसी न किसी ओर लगा ही रहता है, परन्तु जब ध्यान अपने ध्येय से हट कर किसी अन्य वस्तु की ओर केन्द्रित हो जाता है तो उसे ध्यान का उच्चाटन कहते हैं।

व्यक्ति का ध्यान एक समय केवल एक ही वस्तु या विषय पर केन्द्रित हो सकता है। कभी-कभी वह अपने ध्यान को दो या अधिक विषयों पर इतनी तीव्रता से अदलता-बदलता जाता है कि प्रतीत होने लगता है जैसे वह दोनों विषयों पर एक ही समय ध्यान दे रहा है। उदाहरण के लिये, दूसरे के बोलने पर लिखनेवाले व्यक्ति का ध्यान सुनने और लिखने में बँटा हुआ दिखाई पड़ता है; परन्तु, वास्तव में, उसका ध्यान एक के बाद दूसरी क्रिया में अदलता-बदलता रहता है। सुनने के बाद जब वह लिखने की ओर ध्यान देता है, तो कुछ क्षण पश्चात् लिखने की क्रिया अपने आप अवचेतन रूप से चलती रहती है और उसका ध्यान सुनने में लग जाता है। जिन व्यक्तियों को लिखने का बहुत अभ्यास नहीं रहता, वह इन दोनों क्रियाओं का इस प्रकार परस्पर सम्बन्ध भी नहीं बनाये रख सकते। वह जब सुनते हैं, तो लिखना छोड़ देते हैं, और इसी प्रकार जब वे लिखते हैं तो यह नहीं समझ पाते कि क्या बोला जा रहा है।

यद्यपि व्यक्ति का ध्यान एक समय केवल एक ही वस्तु या विषय पर केन्द्रित हो सकता है, किन्तु उसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह विषय अत्यन्त सरल भी हो, जैसे शब्द या वाक्य। बहुत से शब्द अनेक अक्षरों के संयोजन हैं, और वाक्य शब्दों का व्यवस्थित संग्रह। ध्यान के लिये ऐसे व्यवस्थित संग्रह केवल एक ही विषय होते हैं।

ध्यान और रुचि

व्यक्ति का ध्यान केवल उस वस्तु या विषय की ओर आकर्षित होता है, जो उसके लिए विशेष रुचिकर रहता है। रुचि के मिटते ही व्यक्ति का ध्यान भी उसकी ओर से हट जाता है।

रुचियाँ दो प्रकार की होती हैं :—

(१) नैसर्गिक

(२) अर्जित।

इन रुचियों के अनुसार ध्यान के प्रेरक भी (i) बाह्य और (ii) अन्तरंग दो वर्गों में बाँटे जा सकते हैं।

बाह्य-प्रेरक

नैसर्गिक रुचियाँ सब में समान रहती हैं। इनका सम्बन्ध व्यक्ति की मूलप्रवृत्तियों से है। मूलप्रवृत्तियों के सहज उत्तेजक साधारणतः मनुष्य के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ रहते हैं। इसीलिए उन्हें ध्यान आकर्षित करने का बाह्य प्रेरक माना गया है।

स्थितियों की वे विशेषताएँ जो ध्यान को सरलता से आकर्षित करती हैं

तीव्रता:—

प्रेरक जितना तीव्र रहता है उतनी ही सुगमता से वह व्यक्ति के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। बिजली की चमक, बादलों का ज़ोर से गरजना इत्यादि अपनी तीव्रता के कारण ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ होते हैं।

नवीनता: —

नवीन वस्तु व्यक्ति के ध्यान को बरबस अपनी ओर खींच लेती है। नये फैशन की ओर सब का ध्यान आकर्षित होता है। परन्तु प्रचलित हो

जाने पर उसकी ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता। इसी कारण फ़ैशन में नूतनता का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है।

गतिशीलता:—

ध्यान आकर्षित करने में गतिशील वस्तु स्थिर वस्तुओं की अपेक्षा अधिक सफल रहती है। बिजली की घूमती हुई रोशनी मन्द रहने पर भी, एक बार व्यक्ति के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित अवश्य कर लेती है, जब कि साधारण बिजली की रोशनी की ओर प्रायः ध्यान नहीं जाता। इसी प्रकार उड़ता हुआ काग़ज़ का छोटा-सा टुकड़ा ध्यान को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है जब कि काग़ज़ का पूरा ताव ध्यान आकर्षित करने में प्राय: असमर्थ रहता है।

आयतन:—

स्थिति का जितना आयतन अधिक रहता है, उतनी ही उसमें ध्यान आकर्षित करने की क्षमता रहती है। इसीलिए ध्यान को बरबस किसी आवश्यक विषय की ओर आकर्षित करने के लिए अख़बार में प्रायः पूरे पन्ने का विज्ञापन दिया जाता है।

यद्यपि इन्हें ध्यान के बाह्य-प्रेरक कहा गया है, किन्तु यह वास्तव में व्यक्ति की नैसर्गिक रुचियों से सम्बन्धित रहने के कारण ही उसके ध्यान को अपनी ओर आकृष्ट कर पाते हैं। प्रेरक की नवीनता व्यक्ति की जिज्ञासा को उत्तेजित करने में सफल होती है, और उत्तेजक की तीव्रता उसमें प्रायः भय उत्तेजित करती है। इसलिए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ध्यान के बाह्य-प्रेरक यथार्थ में व्यक्ति की रुचियों से सम्बन्धित रहते हैं। रुचि के न रहने पर उनकी तीव्रता, नवीनता आदि व्यक्ति के लिए कुछ महत्व नहीं रखतीं।

अन्तरंग प्रेरक

व्यक्ति में बहुत-सी अर्जित रुचियाँ भी रहती हैं, जिनमें बहुत व्यक्ति-

मत भेद रहता है, इस भेद के कारण जो विषय एक व्यक्ति के लि विशेष रुचिकर होता है, दूसरे व्यक्ति के ध्यान में नहीं आता। इसी लिए इन्हें ध्यान के अन्तरंग प्रेरक कहते हैं। इनमें वैयक्तिक भिन्नता स्पष्ट रहती है।

ध्यान के प्रकार

ध्यान तीन प्रकार का होता है :—

(क) अनैच्छिक ध्यान

(ख) ऐच्छिक ध्यान

(ग) ऐच्छिक-अनैच्छिक ध्यान

अनैच्छिक ध्यान

कुछ प्रेरक ऐसे रहते हैं, जो व्यक्ति के ध्यान को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं, भले ही यह आकर्षण क्षणिक क्यों न हो। परीक्षा में बैठे विद्यार्थियों का ध्यान अनैच्छिक रूप से उस विद्यार्थी की ओर आकर्षित हो जाता है, जो सहसा खड़ा होकर कुछ कहने लगता है। इसी प्रकार काम में तल्लीन माता का ध्यान तुरन्त ही अपने बालक के रोने से उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है।

अनैच्छिक ध्यान, यथार्थ में, प्राथमिक है। वह मूलप्रवृत्तियों की प्रेरणा से सम्बन्धित है। कोई भी वस्तु जो मूलप्रवृत्ति को उत्तेजित करती है व्यक्ति के ध्यान को बरबस अपनी ओर खींच लेती है।

ऐच्छिक ध्यान

ऐच्छिक ध्यान में व्यक्ति को प्रयत्न के साथ अपना मन उस विषय की ओर एकाग्र करना पड़ता है जिसमें उसे सहज रुचि नहीं होती, जैसे अक्षर-ज्ञान। बालक को अक्षरों पर अपना ध्यान केन्द्रित रखने के लिए विशेष चेष्टा करनी पड़ती है। इस अभ्यास में उसे विशेष रूप से प्रयत्न-

शील रहना पड़ता है। इसीलिए अक्षर-ज्ञान के साथ किसी सहज रुचि का सम्बन्ध जोड़ना आवश्यक हो जाता है। पढ़ने-लिखने के सम्बन्ध में पहले भय का प्रयोग किया जाता था। परन्तु भय के प्रयोग से बालक के मन में पढ़ने-लिखने के प्रति अप्रिय भाव बन जाने की विशेष संभावना है। अतः भय के प्रयोग के स्थान पर बालक की सृजन, आत्मगौरव जैसी मूलप्रवृत्तियों को उत्तेजित करना ही उचित है। इन प्रवृत्तियों के उत्तेजित होने पर शिक्षा-सम्बन्धी कार्य बालक को सुखद और प्रिय लगने लगते हैं, जिससे अपने ध्यान को उस विषय पर केन्द्रित करने में उसे बहुत सहायता मिलती है।

ऐच्छिक-अनैच्छिक ध्यान

कुछ क्रियाएँ या घटनाएँ ऐसी भी रहती है जिनमें व्यक्ति को सहज रुचि नहीं होती, परन्तु किसी न किसी कारण से उनपर ध्यान देना आवश्यक होता है। व्यक्ति अपना ध्यान यत्नपूर्वक उनमें एकाग्र करता है। अभ्यास से उसे उनपर ध्यान देने की आदत हो जाती है, जिससे उसका ध्यान उन विषयों की ओर अनैच्छिक रूप से आकर्षित होने लगता है। यद्यपि ऐसे विषय ध्यान को सरलता से अपनी ओर आकृष्ट करने लगते हैं, तो भी इस प्रकार के ध्यान को सर्वथा सहज या अनैच्छिक नहीं कहा जा सकता। यह व्यक्ति के ऐच्छिक ध्यान का परिणाम है। अभ्यास के कारण व्यक्ति को उनकी ओर ध्यान देने की आदत पड़ जाती है। इस प्रकार के ध्यान को ऐच्छिक-अनैच्छिक ध्यान कहते हैं।

संवेदना

ज्ञानात्मक अनुभव का सबसे सहज और प्राथमिक-रूप-संवेदना है। उत्तेजक के संपर्क से ज्ञानेन्द्रियों में उत्तेजना होती है, जिसकी सूचना ज्ञान-तन्तुओं द्वारा मस्तिष्क को पहुँचती है। इससे व्यक्ति को संवेदना का अनुभव होता है। संवेदना उत्तेजक का परिचयमात्र ही रहता है, उसका बोध नहीं।

पूर्व-अनुभव के कारण संवेदना साधारणतः वस्तु का परिचयमात्र न रहकर प्रत्यक्षीकरण में परिणत हो जाती है। पूर्व-अनुभव के संस्कार इतने अज्ञात रूप से उत्तेजित होते हैं, और उनके उत्तेजित होने की गति इतनी तीव्र रहती है कि व्यक्ति को यह पता ही नहीं चलता कि कब और कैसे उसकी संवेदना प्रत्यक्षीकरण में परिणत हो जाती है, जैसे ध्वनि-तरंगों से श्रवणेन्द्रियों में प्रक्रिया के होते ही ध्वनि-संवेदना का अनुभव होता है। यह ध्वनि बहुधा वस्तु-बोध के रूप में हमें मिलती है। अर्थात्, हम केवल सुनते ही नहीं हैं, यह भी जानते हैं कि क्या सुन रहे हैं। उदाहरण के लिए, हमसे जब कोई बात करता है, तो आवाज़ के सुनने के साथ ही हम उसके अर्थ भी समझ जाते हैं। प्रकट रूप से सुनने और समझने में कुछ भी अन्तर नहीं लगता, पर यह अन्तर तब स्पष्ट हो जाता है, जब हम दुर्बोध भाषा को सुनते हैं। सिनेमा में मातृभाषा के शब्द स्पष्ट लगते हैं। उन्हें सुनने के लिए व्यक्ति को विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता, परन्तु उस भाषा को सुनने में उसे कठिनाई होती है, जिससे वह भलीभाँति परिचित नहीं रहता। ऐसे अवसर पर उसे बार-बार यह अनुभव होता है कि आवाज़ ठीक नहीं है। आवाज़ दोनों दशा में एक समान होती है।

भेद केवल एक यह होता है कि पहली दशा में ध्वनि अर्थ का संकेत मात्र रहती है। व्यक्ति उसे सुनते ही उसके अर्थ समझ लेता है, जब कि दूसरी अवस्था में भाषा से बहुत कुछ अनभिज्ञ रहने के कारण वह प्रत्यक्षीकरण में परिणत नहीं हो पाती।

पूर्व-अनुभव के आधार पर ही व्यक्ति किसी वस्तु को परिचित या अपरिचित कह सकता है। किसी ध्वनि को सुनते ही यदि व्यक्ति को यह बोध हो जाता है कि वह ध्वनि अपरिचित है, तो उसका यह अनुभव प्रत्यक्षीकरण का है, केवल विशुद्ध ध्वनि संवेदना का नहीं।

चूँकि व्यक्ति की प्रत्येक संवेदना, पूर्व-अनुभव के कारण तुरन्त ही प्रत्यक्षीकरण में परिणत हो जाती है, इसलिए प्रत्यक्षीकरण का अनुभव ही उसे प्राथमिक तथा सहज लगता है। हमारे अनुभव में संवेदना प्रत्यक्षीकरण का अंगमात्र रहती है। इसलिए संवेदना के यथार्थ स्वरूप को समझने में हमें कल्पना की सहायता लेनी पड़ती है। यदि हम किसी वस्तु के प्रत्यक्षीकरण में से पूर्व अनुभव के ज्ञान को अलग कर दें तो ज्ञानेन्द्रियों की क्रिया से उत्तेजित, जो मानसिक अनुभव शेष रह जाता है, वही संवेदना है, जैसे वृक्ष का प्रत्यक्षीकरण। यदि हम इस अनुभव में से वृक्ष के बोध को निकाल दें, तो जो अनुभव शेष रह जायगा वही संवेदना है। संवेदना का ऐसा विशुद्ध अनुभव केवल कुछ दिन के शिशु को ही होता है। कुछ अनुभव के पश्चात् उसकी संवेदना भी विशुद्ध नहीं रहती। अनुभव के कारण वह प्रत्यक्षीकरण में परिणत हो जाती है।

वेबर-फेक्नर-नियम

संवेदना की तीव्रता उत्तेजक की तीव्रता पर निर्भर करती है; किन्तु इनका परस्पर संबंध आनुपातिक है। संवेदना को तीव्र करने के लिये उत्तेजक की तीव्रता में वृद्धि करनी आवश्यक है, किन्तु किसी उत्तेजक की तीव्रता में एक ही मात्रा से वृद्धि करने पर उसकी संवेदना की तीव्रता में बराबर

वृद्धि नहीं होती। संवेदना की तीव्रता में समान वृद्धि या कमी करने के लिए उत्तेजक को क्रमशः गुणा या भाग करना पड़ता है। अर्थात् , यदि संवेदना की तीव्रता में वृद्धि १, २, ३, ४, ५...है तो उत्तेजक की मात्रा क्रमशः १, २, ४, ८, १६...की होंगी। यह वेबर-फैक्नर नियम कहलाता है।

संवेदना का वर्गीकरण

प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय की संवेदना तथा उसका उत्तेजक अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा भिन्न होता है। इसलिए संवेदना का वर्गीकरण ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर किया गया है। ज्ञानेन्द्रियाँ तीन प्रकार की हैं :—

(i) अवयव संवेदना की ज्ञानेन्द्रियाँ

(ii) स्नायविक संवेदना अथवा गति संवेदना की ज्ञानेन्द्रियाँ।

(iii) बाह्योत्तेजित संवेदना की ज्ञानेन्द्रियाँ।

अवयव संवेदना

इस संवेदना की ज्ञानेन्द्रियाँ विभिन्न अवयवों में पाई जाती हैं, और इन्हें शारीरिक अवस्था से ही उत्तेजना मिलती है। जब आन्तरिक शारीरिक अवस्था में कुछ परिवर्तन होता है, तो इस परिवर्तन से अवयव संवेदना की इन्द्रियों में प्रक्रिया होने लगती है और ज्ञानतन्तुओं के द्वारा इस शारीरिक अवस्था की सूचना मस्तिष्क को पहुँच जाती है, जिससे व्यक्ति को अवयव संवेदना का अनुभव होता है। भूख प्यास आदि के अनुभव इसी संवेदना के परिणाम हैं।

अवयव संवेदना के माध्यम से हमें अपनी शारीरिक अवस्था का बोध होता है। जिस प्रकार पाचनशक्ति की क्रिया की संवेदना से हमें भूख की चेतना होती है, उसी प्रकार अन्य अन्तरावयव की अवस्था को समझने के लिए भी अवयव संवेदना का होना अनिवार्य है।

स्नायविक अथवा गति-संवेदना

स्नायविक संवेदना की ज्ञानेन्द्रियाँ, स्नायु, पुट्ठों तथा जोड़ों में पाई जाती हैं, और इन्हीं की गति से उन्हें उत्तेजना मिलती है। किसी जोड़ या स्नायु के हिलने से उनमें प्रक्रिया होती है, और ज्ञानतन्तुओं द्वारा इस प्रक्रिया की सूचना मस्तिष्क को पहुँच जाती है, जिससे व्यक्ति को स्नायविक संवेदना होती है।

स्नायविक संवेदना से हमें अपने उठने-बैठने तथा अन्य प्रकार की गति और चेष्टा का अनुभव होता है। व्यक्ति जब आँखें बन्द किये रहता है तब भी स्नायविक संवेदना के कारण उसे अपनी शारीरिक स्थिति का पूरा ज्ञान रहता है। अर्थात्, उसे यह पता रहता है कि वह खड़ा है या बैठा, उसके हाथ फैले हुए हैं या नहीं, उसकी उँगलियाँ खुली हैं या मुट्ठी बन्द है, इत्यादि। स्नायविक संवेदना से हम अपने को डगमगाने से बचाते हैं, अपने शरीर को सीधा रखते हैं। विभिन्न अंगों की क्रियाओं में परस्पर सम्बन्ध बनाये रखने में भी इससे बहुत सहायता मिलती है। किसी वस्तु के दबाव या वज़न का अनुमान पुट्ठों की संवेदना से होता है।

बाह्योत्तेजित संवेदना

कुछ ज्ञानेन्द्रियाँ ऐसी हैं जो बाह्य पदार्थ के संपर्क से उत्तेजित होती हैं। अर्थात् उन्हें शरीर की गति अथवा किसी अन्य अन्तरावयव प्रतिक्रिया से उत्तेजना नहीं मिलती। उनके उत्तेजक बाह्य होते हैं, जिनके सम्पर्क से इन ज्ञानेन्द्रियों में उत्तेजना होती है। इस उत्तेजना से व्यक्ति में जो संवेदना होती है, उसे बाह्योत्तेजित संवेदना कहते हैं। बाह्यपदार्थ भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं और उनसे उत्तेजित होनेवाली ज्ञानेन्द्रियों के अंग भी विशिष्ट हैं। इसलिए बाह्योत्तेजित संवेदना को विशिष्ट संवेदना भी कहा जाता है।

इन्द्रियों के अनुसार बाह्योत्तेजित संवेदना का वर्गीकरण इस प्रकार है :—

संवेदना	अंग
दृष्टि	आँख
श्रोतृ	कान
रस	जिह्वा
घ्राण	नाक
त्वक्	त्वचा

दृष्टि संवेदना

अंग

दृष्टि-संवेदना का अंग आँख है। आँख की बनावट साधारण कैमरे से मिलती-जुलती है। भेद केवल इतना है कि कैमरे में अलग-अलग अन्तर के लिए अभियोजन करना पड़ता है, जबकि आँख की पुतली अलग-अलग अन्तर के लिए स्वयं ही ठीक होती रहती है।
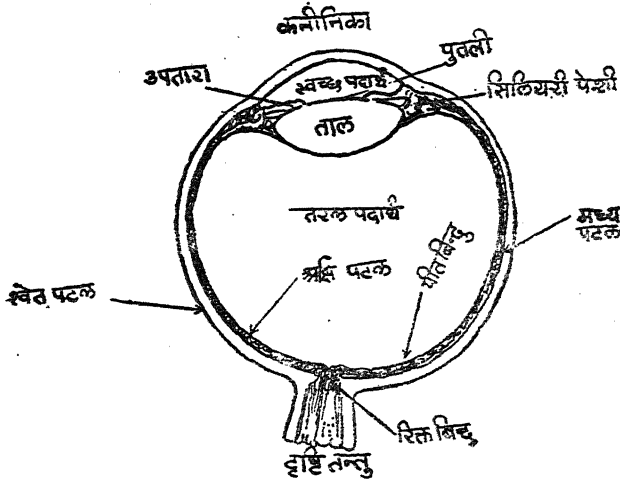
दृश्येन्द्रियाँ अक्षिपटल पर दण्ड और सूचियों के रूप में होती हैं। जब प्रकाश की तरंगें पुतली में से होकर अक्षिपटल पर पड़ती हैं, तो इन दृश्ये-

न्द्रियों में प्रक्रिया होने लगती है। ज्ञान-तन्तुओं के द्वारा जब इस प्रक्रिया की सूचना मस्तिष्क को पहुँचती है तो व्यक्ति को दृष्टि-संवेदना होती है।
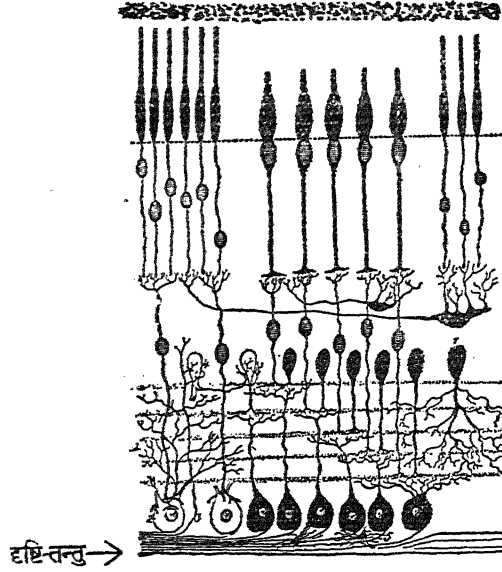
इस चित्र में ऊपर दोनों ओर लम्बे तथा पतले दण्ड हैं, तथा बीच में मोटी आकृति की सूचियाँ हैं (दंड, सूचियाँ आदि वास्तविक आकार से बढ़ाकर दिखाई गई हैं)।

दण्ड और सूचियों की संवेदना में बहुत अन्तर रहता है। दण्डरूपी दृश्येन्द्रियाँ प्रकाश-तरंगों में बहुत भेद नहीं कर पातीं। उनकी उत्तेजना से काला-उजला और भूरे की संवेदना होती है।

सूचियाँ, दण्ड की अपेक्षा अधिक सूक्ष्मग्राही हैं। वह प्रकाश-तरंगों की लम्बाई में अधिक सूक्ष्म-भेद करने में समर्थ हैं, इससे व्यक्ति को

प्रकाश-तरंगों की विभिन्न लम्बाई के अनुसार कई प्रकार के रंगों का अनुभव होता है।

अक्षिपटल पर जो पीत-बिन्दु है, उसमें केवल सूचियाँ ही पाई जाती हैं। उनके उत्तेजित होने पर व्यक्ति की दृष्टि बहुत स्पष्ट रहती है। परन्तु छाया तथा मन्द प्रकाश में पीत-बिन्दु से कुछ दिखाई नहीं पड़ता। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सूचियाँ केवल तेज़ प्रकाश से ही उत्तेजना पाती हैं। छाया या मन्द प्रकाश में वह अन्धी हो जाती हैं। छाया तथा मन्द प्रकाश में दृष्टि संवेदना केवल दण्ड की होती है, उसमें रंग का आभास नहीं पाया जाता।

इसके अतिरिक्त, यह भी देखा जाता है कि अक्षिपटल के उन सीमा-स्थित भागों से जहाँ सूचियों का अभाव रहता है, रंग की संवेदना भी नहीं होती। जिन प्रकाश तरंगों से, साधारणतः रंगों की संवेदना होती है, वे जब आँख के केवल इस सीमा-स्थित भाग पर पड़ती हैं तो प्रकाश का अनुभव होता है, रंग का नहीं। अर्थात्, व्यक्ति उन्हें भूरा देखता है। परन्तु जब उसी वस्तु से प्रतिबिम्बित प्रकाश-तरंगें अक्षिपटल के सीमास्थित भागों में पीतबिन्दु के निकट आ जाते हैं तो रंग की संवेदना होती है।

इन सबसे यह स्पष्ट हो जाता है कि रंग की संवेदना सूचियों की उत्तेजना से होती है, दण्ड से नहीं। दण्ड की संवेदना केवल प्रकाश की होती है। उनमें रंग का अनुभव नहीं रहता।

इस प्रकार दण्ड तथा सूचियों के अनुसार दृष्टि संवेदना को दो भागों में बाँटा जा सकता है :—

(१) प्रकाश-संवेदना—काला, उजला और भूरा।

(२) रंग-संवेदना—पीला, नीला, लाल, हरा तथा इनके मिश्रण।

रिक्त बिन्दु

अक्षिपटल पर पीत-बिन्दु के निकट, रिक्त-बिन्दु भी होता है। इस

बिन्दु में न सूचियाँ होती हैं और न दण्ड। इस बिन्दु से कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता।

दाहिनी आँख को बन्द कर, बाईं आँख से नीचे दिये चित्र में छोटे बिन्दु को ध्यान से देखते हुए चित्र को धीरे-धीरे आगे-पीछे हटाइये। ऐसा
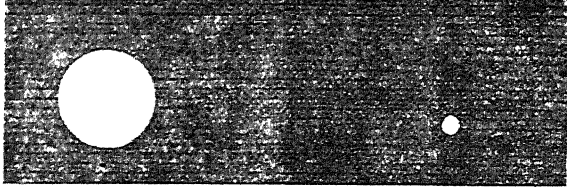
करते रहने पर एक समय बड़ा घेर अदृश्य हो जाता है। जब तक चित्र आँख से इसी अन्तर पर रहेगा, छोटे श्वेत-बिन्दु को छोड़कर शेष सारा चित्र ही काला दिखाई देता रहेगा। इसी प्रकार बाईं आँख को बन्द कर यदि बड़े सफेद वृत्त को दाहिनी आँख से देखा जाय तो छोटा बिन्दु अदृश्य हो जाता है।

प्रकाश की संवेदना

उजले, काले तथा भूरे की संवेदना को प्रकाश की संवेदना कहा जाता है। यदि हम काले के निकट भूरा और उसके निकट उससे हल्का भूरा रखते जायँ तो हम काले से उजले तक पहुँच जाते हैं। हल्का भूरा उजले के निकट मिलेगा, और गहरा भूरा काले के निकट। इस प्रकार हम उजले और काले के मिश्रण से एक किनारे से दूसरे किनारे तक पहुँच जाते हैं। इसीलिए प्रकाश-संवेदना को सीधी रेखा पर प्रदर्शित किया

जाता है, जिसके दोनों किनारों पर उजला तथा काला, और रेखा के साथ-साथ एक किनारे से दूसरे किनारे तक भूरा दिखाई पड़ता है।

उजला

काला

मनुष्य की आँख लगभग सात सौ भूरे में भेद कर पाती है।

यद्यपि उजले से काले तक पहुँचने के लिये पहले हल्के भूरे और गहरे भूरे दिखाई पड़ते हैं; किन्तु एक दूसरे के निकटतम पड़े दो भूरे एक दूसरे से इतने मिले हुए रहते हैं कि उनमें परस्पर भेद नहीं किया जा सकता।

रंग तथा उनका मिश्रण

प्रकाश तरंगों से जब सूचियों को उत्तेजना मिलती है, तो रंग की संवेदना होती है। प्रकाश-तरगों की लम्बाई की विभिन्नता भिन्न-भिन्न रंगों की संवदना का कारण है, अर्थात् प्रकाश तरंगों की लम्बाई के अनुसार ही भिन्न-भिन्न रंगों का अनुभव होता है।

प्राथमिक रंग केवल चार हैं :—

(१) लाल, (२) हरा, (३) पीला, (४) नीला।

इनमें सबसे लम्बी प्रकाश-तरंग लाल की है और सबसे छोटी नीले की। अन्य रंगों की प्रकाश-तरंगों की लम्बाई इन दोनों के बीच में रहती है।

इन प्राथमिक रंगों के अतिरिक्त बाकी सब रंग इनका मिश्रण है। यदि सब रंगों और उनके मिश्रण को इस क्रम से रखा जाय कि परस्पर मिलते रंग एक दूसरे के निकट रहें, तो अन्त में आरंभ का ही रंग आ जायगा। इसीलिए रंगों तथा उनके मिश्रण को परिधि पर चित्रित किया जाता है।
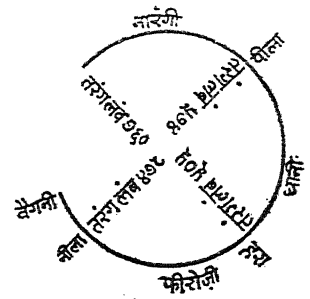
ऊपर दिये गये वर्णवृत्त में प्राथमिक रंग के अतिरिक्त उनके मिश्रण को भी अंकित किया गया है। परिधि पर निकट पड़े रंगों के परस्पर मिश्रण से रंग, तथा दूरस्थ पड़े रंगों के परस्पर मिश्रण से भूरा दिखाई पड़ता है। किसी भी व्यास के दोनों किनारों पर पड़े रंगों के मिश्रण से भूरा ही दिखाई पड़ेगा। दूसरे चित्र में इन्द्रधनुष में दिखाई देनेवाले रंग तथा उनकी प्रकाश-तरंगों की लम्बाई को अंकित किया गया है।

इन्द्रधनुष में बैंगनी से गहरे नारंगी तक के सब रंग दिखाई पड़ते हैं। अर्थात् (i) लाल, और (ii) बैंगनी तथा लाल के मिश्रण को छोड़कर बाकी सब ही रंग दिखाई पड़ते हैं। यदि उनके एक किनारे पर लाल, तथा दूसरे किनारे पर लाल और बैंगनी के मिश्रण को जोड़ दिया जाय तो रंगों का वृत्त पूरा हो जायगा।

रंग का मिश्रण

मिश्रण दो प्रकार के होते हैं :—

(i) सामंजस्यपूर्ण

(ii) विरोधी

सामंजस्यपूर्ण रंगों के मिश्रण से हमें नये रंग की संवेदना होती है। ऐसे मिश्रण में मिश्रित रंगों के लक्षण पाये जाते हैं। जैसे :—

(i) लाल और पीले का मिश्रण—नारंगी

(ii) लाल और नीले का मिश्रण—बैंगनी

(iii) हरे और नीले का मिश्रण—फ़ीरोज़ी

(iv) पीले और हरे का मिश्रण—धानी।

सामंजस्य पूर्ण रंग वर्णवृत्त की परिधि पर एक दूसरे के निकट पाये जाते हैं।

विरोधी रंग

विरोधी रंगों के मिश्रण से रंग-संवेदना के स्थान पर व्यक्ति को वर्णहीन आभा की, अर्थात् भूरे की संवेदना होती है। ऐसे रंगों को एक दूसरे के पूरक रंग भी कहा जाता है। पूरक रंग वर्णवृत्त में व्यास के दोनों सिरों पर स्थित होते हैं। जैसे—

(१) लाल और हरा

(२) पीला और नीला

वर्णवृत्त में जितने व्यास बनाये जा सकते हैं, उतने ही पूरक रंगों के जोड़े हो सकते हैं। किसी भी व्यास के दोनों किनारों पर पड़े रंगों के मिश्रण से भूरा ही दिखाई पड़ेगा।

संक्षेप में, लाल रंग, पीले और नीले रंग का सामंजस्यपूर्ण और हरे का पूरक रंग है। इसी प्रकार, पीला रंग, लाल और हरे का सामंजस्य-पूर्ण और नीले का पूरक रंग है।
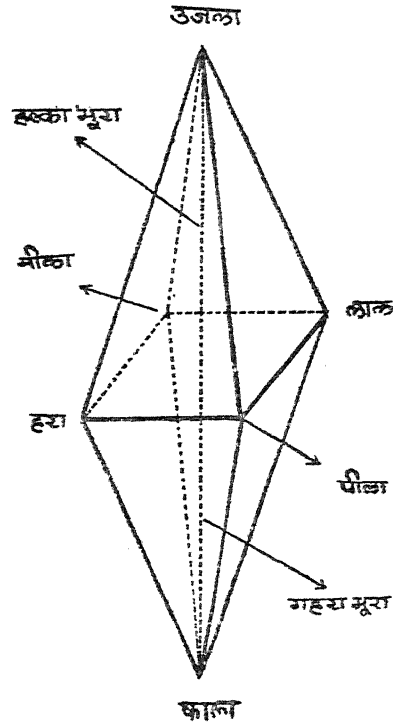
(यह चित्र विभिन्न रंगों में आभा के प्रभाव को अंकित करता है)

रंग संवेदना के सम्बन्ध में यह बात उल्लेखनीय है कि एक ही रंग के हल्के या गहरे रूप अपनी अलग-अलग आभा देते हैं।

यही कारण है कि लाल रंग को गहरे लाल से हल्के गुलाबी तक आते-आते लाल के ही अनेक रूपान्तरों में देखा जाता है; किन्तु इन सब रूपान्तरों में मूलभूत प्राथमिक रंग केवल लाल ही है। इनमें परस्पर जो अन्तर दिखाई पड़ता है, उसका कारण आभा का प्रभाव है।

रंग का अन्धापन

जिस व्यक्ति में रंग-संवेदना नहीं होती; उसे रंग-अन्धा कहा जाता है। रंग का अन्धापन दो प्रकार का होता है :—

(i) रंग का संपूर्ण अन्धापन।

(ii) रंग का आंशिक अन्धापन।

(i) रंग का सम्पूर्ण अन्धापन

रंग के सम्पूर्ण अन्धेपन में व्यक्ति को केवल प्रकाश की ही संवेदना होती है, रंग की नहीं। वह प्रकाश-तरंगें, जो साधारणतः औरों में रंग की संवेदना पैदा करती हैं, रंग-अन्धे व्यक्ति को केवल भूरी ही दिखाई पड़ती है। अर्थात् उसकी दृष्टि-संवेदना केवल दंड की होती है, सूचियों की नहीं।

(ii) रंग का आंशिक अन्धापन

रंग के आंशिक अन्धेपन में, व्यक्ति को प्रकाश के अतिरिक्त पीले और नीले का भी अनुभव होता है। अर्थात् , वह लाल और हरे को छोड़ और सब प्रकार के रंग और प्रकाश देख सकता है। लाल प्रकाश-तरंगें उसे पीली और हरी प्रकाश-तरंगें नीले दिखाई पड़ते हैं।

रंग-अन्धेपन की कुछ विशेषताएँ

(i) व्यक्ति कभी भी किसी एक रंग के प्रति अन्धा नहीं होता। रंग अन्धापन सदा दो पूरक रंगों का होता है। अर्थात् व्यक्ति को यदि लाल रंग की संवेदना नहीं होती, तो वह हरा भी नहीं देख सकता। इसी प्रकार पीले के साथ साथ नीला भी ग़ायब रहता है।

(ii) इसके अतिरिक्त, जो व्यक्ति पीले और नीले को नहीं देख सकता, वह किसी भी रंग को नहीं देख सकता। अर्थात्, वह सम्पूर्णतया रंग-अन्धा होता है। रंग के आंशिक अन्धेपन में अभाव सदैव लाल और हरे रंग का ही होता है।

(iii) रंग-अन्धापन वंशगत दोष है; परन्तु बहुत बार इस वंशानुगति में एक-दो पीढ़ी छूट भी जाती है। वंश में स्त्रियाँ प्रायः इस दोष से बची रहती हैं।

(iv) रंग-अन्धेपन का दोष व्यक्ति में बहुधा जन्मजात होता है और इसे दूर भी नहीं किया जा सकता।

(v) रंग अन्धापन पूर्व की अपेक्षा पश्चिम में और स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिक पाया जाता है। प्रायः ४ प्रतिशत व्यक्ति इस दोष से ग्रस्त रहते हैं। जिनमें से इस दोष से ग्रस्त स्त्रियों की संख्या लगभग ·१% होती है।

रंग-अन्धेपन का अनुमान

रंग-अन्धेपन में व्यक्ति को रंग-संवेदना नहीं होती। फिर भी व्यक्ति को अपने इस दोष का प्रायः पता नहीं चलता। संवेदना व्यक्ति का इतना निजी अनुभव है कि कोई भी व्यक्ति अपने इस अनुभव की तुलना किसी अन्य व्यक्ति के अनुभव से सीधे-सीधे नहीं कर सकता। इसलिए यह

जान लेना अत्यन्त कठिन है कि वास्तव में व्यक्ति क्या देख रहा है। बहुत से रंग-अन्धे व्यक्ति वास्तव में देखते भूरा है, परन्तु उसे लाल-पीला नीला हरा आदि कहते हैं, अर्थात् वे भूरे के विभिन्न चढ़ाव-उतार को ही अलग-अलग रंग के नाम से पुकारने लगते हैं, जिससे उनके कथन के आधार पर उनकी संवेदना का अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

इसलिए रंग-अन्धापन का सही अनुमान लगाने के लिए क्रियात्मक विधि का ही प्रयोग उत्तम सिद्ध होता है, जैसे :—

(१) यदि बहुत से रंगों के फूलों को मिलकर कुछ चित्र या शब्द बनाये जायँ, तो रंग-अन्धे व्यक्ति उन्हें पहचान नहीं पाते।

(२) यदि व्यक्ति को बहुत से रंगों के नमूने क्रम से लगाने को दे दिये जायँ, तो उनके लगाने की विधि से उनका दोष स्पष्ट हो जाता है।

लैड फ्रैंकलिन का रंग-संवेदना का सिद्धान्त

रंग संवेदना का सबसे सन्तोषजनक मत लैड फ्रैंकलिन का है। इनके सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति में सबसे प्राथमिक दृष्टि-संवेदना केवल प्रकाश की है, रंग की नहीं। अर्थात् व्यक्ति आदि में केवल उजले, काले और भूरे को ही देख सकता था। धीरे-धीरे उसकी आँख ने उन्नति कर ली, और दृष्येन्द्रियाँ प्रकाश-तरंगों की लम्बाई में भेद करने लगीं, जिससे प्रकाश के अतिरिक्त व्यक्ति को कुछ रंगों की भी संवेदना होने लगी। छोटी आकाश-तरंगों से नीले की और लम्बी प्रकाश तरंगों से नीले की संवेदना होने लगी। व्यक्ति उजले, काले और भूरे के अतिरिक्त पीला और नीला भी देखने लगा। जब पीले और नीले रंग की प्रकाश तरंगों को एक ही साथ आँख पर डाला जाता है, तो व्यक्ति को उनकी औसत लम्बाई की प्रकाश तरंग की संवेदना होती है, अर्थात् पीले और नीले के मिश्रण से भूरे की संवेदना होती है।

इसी तरह धीरे-धीरे जब आँख ने और भी उन्नति कर ली तो पीले रंग की प्रकाश तरंगों में भी दृष्येन्द्रियों ने भेद आरम्भ किया। छोटी लम्बई की प्रकाश तरंगों से हरे रंग की और लम्बी प्रकाश तरंगों से लाल रंग की संवेदना होने लगी। यही कारण है कि जब लाल और हरे रंग की प्रकाश तरंगों को एक साथ आँखों पर डाला जाता है, तो व्यक्ति को उनकी औसत प्रकाश तरंग की संवेदना होती है। अर्थात् लाल और हरे के मिश्रण से पीले की संवेदना होती है। लैड फ्रैंकलिन के सिद्धान्त से पहले, लाल और हरे के मिश्रण के पीलेपन पर ध्यान ही नहीं दिया जाता था। परन्तु अब इससे सब सहमत हैं।

दृष्टि-संवेदना के रंग विकास को नीचे दिए चित्र के अनुसार अंकित किया जा सकता है :—
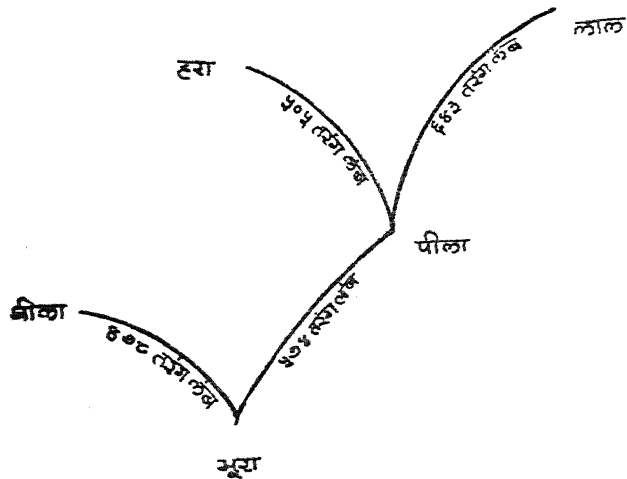
मनुष्य की आँखे बहुत उन्नति कर चुकी हैं, परन्तु कई निम्न वर्ग के प्राणी अब भी दृष्टि-संवेदना में प्राथमिक अवस्था में ही पाये जाते हैं

और बहुत से प्राणी ऐसे भी हैं जो प्रकाश के अतिरिक्त पीले और नीले को भी देख सकते हैं। मनुष्यों में रंग-अन्धापन प्रायः आंशिक ही रहता है।

इस सिद्धान्त से यह समझना सरल हो जाता है कि :—

(i) रंग का आंशिक अन्धापन सदा लाल और हरे रंग का ही क्यों होता है।

(ii) पीले और नीले की संवेदना के अभाव में, लाल और हरा भी क्यों दिखाई नहीं पड़ता।

(iii) रंग-अन्धे व्यक्तियों में रंग का आंशिक अन्धापन ही अधिकतर क्यों होता है।

(iv) रंग अन्धापन सदा परस्पर पूरक रंगों का क्यों रहता है।

(v) लाल और हरे का मिश्रण पीला-सा क्यों दिखाई पड़ता है।

(vi) पीले और नीले का मिश्रण भूरा क्यों होता है।

अनुबिम्ब

उत्तेजक के सामने से हटते ही दृष्टि-संवेदना तुरन्त समाप्त नहीं हो जाती, बल्कि दृश्येन्द्रियों की क्रिया उसके बाद भी कुछ क्षण के लिए बनी रहती है। उत्तेजक के अभाव में, संवेदना का इस प्रकार कुछ क्षण के लिए बना रहना अनुसंवेदना या अनुबिम्ब कहलाता है।

अनुबिम्ब दो प्रकार के होते हैं :—

(i) निषेधात्मक

(ii) विध्यात्मक

निषेधात्मक अनुबिम्ब में व्यक्ति को उत्तेजक के पूरक रंग का अनुभव होता है। किसी रंगीन वस्तु को कुछ देर तक देखने के पश्चात् दृष्टि को किसी वर्णहीन स्तर पर ले जाया जाय, तो कुछ क्षण के लिए उसी आकार

में उसका पूरक रंग दिखाई पड़ता है, जैसे पीले के पश्चात् नीला और लाल के पश्चात् हरा। यह अनुसंवेदना विलीन होने से पहले क्रमशः धीमी पड़ती जाती है। अनुबिम्ब के लिए प्राथमिक रंग का होना आवश्यक नहीं है। किसी भी रंग-मिश्रण का पूरक रंग-मिश्रण इस प्रकार देखा जा सकता है।

विध्यात्मक अनुबिम्ब में उत्तेजक का ही रंग मन्द रूप में पाया जाता है, और वह क्रमशः धीमा पड़ता जाता है। किसी तेज़ रोशनी को देखते हुए यदि उसे एकदम बन्द कर दिया जाए, तो उसकी संवेदना तुरन्त ही नहीं मिट जाती। रोशनी धीरे-धीरे मन्द पड़ती दिखाई देती है।

विध्यात्मक अनुबिम्ब के आधार पर ही हम चीजों की गति को देखते हैं। गतिशील वस्तु की पृथक् संवेदनाएँ उसकी विभिन्न स्थिर स्थितियों की सूचक होती हैं, परन्तु जब विध्यात्मक अनुबिम्ब की सहायता से उस वस्तु की विभिन्न स्थितियों की संवेदनाएँ परस्पर जुड़ जाती हैं, तो हमें उनसे उस वस्तु की गति का अनुभव होता है।

सिनेमा की तस्वीरें अलग-अलग स्थिर अवस्था की होती हैं, परन्तु जब वह एक के बाद दूसरी इस प्रकार प्रदर्शित की जाती हैं कि पहली तस्वीर की अनुसंवेदना के साथ ही दूसरी तस्वीर की संवेदना मिल जाय, तो देखनेवाले उन्हें स्थिर रूप में देखने के स्थान पर गतिशील देखते हैं। यदि एक के पश्चात् दूसरी तस्वीर बहुत ही शीघ्र प्रदर्शित कर दी जाय तो गति का अनुभव स्पष्ट नहीं रहता। गति धुँधली-सी पड़ जाती है, और यदि दो प्रदर्शित तस्वीरों के बीच की अवधि को और भी कम कर दिया जाय तो वह गतिशील के स्थान पर स्थिर दिखाई देने लगती है। जैसे, तेजी से घूमते हुए गाड़ी के पहिये घूमते हुए दिखाई नहीं पड़ते, वह निश्चल ही दिखाई पड़ते हैं। इसी प्रकार यदि तस्वीरों के प्रदर्शन के बीच की अवधि को आवश्यकता से अधिक बढ़ा दिया जाय, तो तस्वीरें स्थिर ही दिखाई पड़ती हैं, चलती-फिरती नहीं।

गति का अनुभव वास्तव में वस्तुओं के प्रदर्शन करने की रीति पर निर्भर करता है। इस विषय पर वरदेमर के प्रयोग बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने दो रेखाओं को एक दूसरे के निकट खींचकर, एक के पश्चात् दूसरे को प्रदर्शित किया। उन दोनों के प्रदर्शन के बीच की अवधि को कभी कम कर, और कभी बढ़ा कर गति के प्रत्यक्षीकरण का अध्ययन किया। अवधि के कम रहने पर दोनों रेखाएँ एक ही लम्बी रेखा के आकार में दिखाई दीं, परन्तु अवधि के ठीक रहने पर पहली रेखा, अपने स्थान से दूसरे स्थान पर चलती हुई दिखाई दी।

गति के प्रत्यक्षीकरण की व्याख्या-द्वारा वरदेमर ने यह सिद्ध किया कि सम्पूर्ण स्थिति अपने विभिन्न तत्वों का केवल जोड़ ही नहीं होती, बल्कि उन तत्वों के परस्पर सम्बन्ध से उनमें विशिष्ट गुण पैदा हो जाते हैं।

द्विनेत्र-संवेदना

दो आँखों के होने के कारण मनुष्य किसी दृश्य की दाईं और बाईं ओर को दूर तक देखने की क्षमता रखता है। वह अपनी दाहिनी आँख
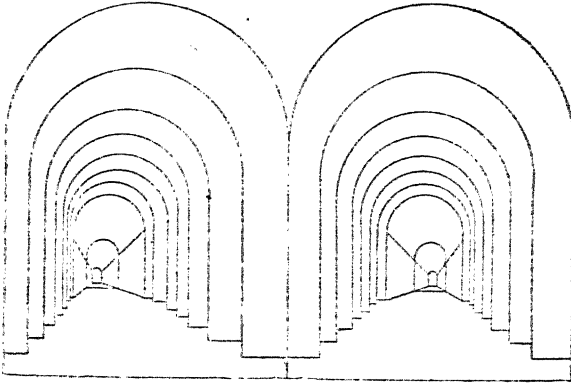
(टिचनर सीरीज़ से)

से विशेष कर दाहिनी तरफ का तथा सामने और कुछ बाईं ओर का दृश्य, और बाईं आँख से विशेष कर बाईं तरफ का तथा सामने और कुछ दाईं ओर का दृश्य देखता है। अर्थात्, आँखों की निकटता के कारण दृश्य के बीच का भाग दोनों आँखों से देखा जाता है, और किनारों का केवल दाईं और बाईं आँख से।

इससे किसी वस्तु के दृश्य में लम्बाई-चौड़ाई के साथ गहराई का भी अनुभव स्पष्ट हो जाता है। गहराई को तस्वीर में प्रकाश और छाया की सहायता से अंकित किया जाता है; परन्तु गहराई का स्पष्ट अनुभव दो आँखों के इस प्रकार निकट होने से होता है। स्टीरीयस्कोप की सहायता से इन दोनों के अन्तर का सहज ही अध्ययन किया जा सकता है।

दाहिने और बाएँ ओर के दृश्य एक दूसरे में किस प्रकार मिल जाते हैं, इसका अनुमान भी स्टीरीअस्कोप से सहज ही लगाया जा सकता है। स्टीरीअस्कोप में यदि एक तरफ लाल रंग हो, और दूसरी तरफ पीला, तो
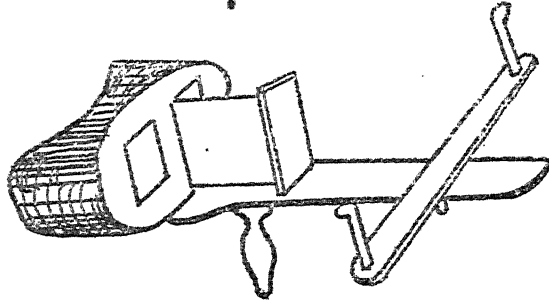
स्टीरीयस्कोप

व्यक्ति उनके मिश्रण, अर्थात् नारंगी रंग को ही देख पाता है। परन्तु यदि वह दोनों रंग या दृश्य ऐसे रहें, जिनमें परस्पर सम्बन्ध नहीं हो सकता,

तो व्यक्ति को जल्दी-जल्दी एक के बाद दूसरा दृश्य दिखाई पड़ने लगता है। पूरक रङ्गों के प्रयोग से यह स्पष्ट हो जाता है। इसी को दोनों आँखों की प्रतिद्वन्द्विता कहा जाता है।

इसी प्रकार दोनों आँखों के प्रयोग से दूरी का अनुभव भी एक आँख की अपेक्षा अधिक सही रहता है। यदि हाथ की एक उँगली को सामने कुछ दूरी पर रख कर दूसरे हाथ की उसी उँगली के सिरे को ऊपर से सामने रक्खी उँगली के ऊपर सीधा रखने की चेष्टा की जाय, तो व्यक्ति को कुछ कठिनाई नहीं होती। वह दोनों हाथों की उँगलियों को बिना भूल मिला देता है; परन्तु एक आँख बन्द कर लेने पर उँगली के सिरे सहज नहीं मिलते। उँगली उसके निकट इधर-उधर पड़ती है।

दोनों नेत्रों के दृष्टितन्तु तथा उनका मस्तिष्क-सम्बन्ध

दृष्टितन्तु, आँख के पीछे, मस्तिष्क में जाते हुए ऐसे लगते हैं, मानों कि दाईं आँख के सब ज्ञानतन्तु बाईं ओर, और बाईं आँख के सब ज्ञानतन्तु दाईं ओर जा रहे हों; किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता, केवल वही दृष्टितन्तु जो आँखों के उस अर्धभाग से सम्बन्धित हैं, जो नाक की ओर दाईं से बाईं और बाईं से दाईं ओर जाते हैं, बाकी नहीं। दाईं आँख के नाक के निकट के अर्धभाग के ज्ञानतन्तु बाईं ओर को जाते हैं, और इसी प्रकार बाईं आँख के नाक के निकट के अर्धभाग के ज्ञानतन्तु मस्तिष्क के दाएँ भाग को जाते हैं। शेष ज्ञानतन्तु अपनी-अपनी दिशा नहीं बदलते। आगे दिये चित्र से यह स्पष्ट हो जायगा।

चूँकि दाईं दिशा का प्रकाश दोनों आँखों के बायें भाग के ज्ञानतन्तुओं को उत्तेजित करता है, इसलिए उसकी सूचना मस्तिष्क के बायें भाग को पहुँचती है। इसी प्रकार बाईं दिशा के दृश्य की सूचना मस्तिष्क के दायें

भाग को पहुँचती है। इसलिए मस्तिष्क के दृष्टि-सम्बन्धित दाहिने भाग में चोट आ जाने पर दोनों आँखों की दायें भाग की दृष्टि मिट जाती है। चूँकि
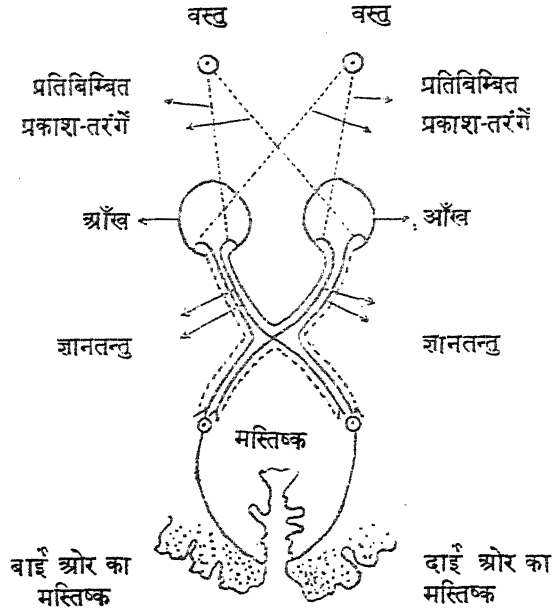
दोनों आँखों के दाँयें भाग के दृष्टितन्तु मस्तिष्क के दायें भाग को और आँखों के बायें भाग के दृष्टि-तन्तु मस्तिष्क के बायें भाग को पहुँचते हैं।

आँख का दाँया भाग बाईं दिशा के दृष्टि से सम्बधित है, इसलिए ऐसी अवस्था में व्यक्ति बाईं दिशा के दृश्य के प्रति अन्धा हो जाता है। इसी

प्रकार मस्तिष्क के दृष्टि सम्बन्धित बायें भाग में चोट आ जाने पर व्यक्ति दाईं दिशा के दृश्य के प्रति अन्धा हो जाता है। अर्थात् मस्तिष्क किसी एक ओर के दृष्टि-सम्बन्धित भाग में चोट आ जाने पर दोनों ही आँखों के अर्धभाग में दोष आ जाता है। सम्पूर्ण रूप से केवल एक ही आँख में नहीं।

अन्य संवेदनाएँ

श्रोतृ-संवेदना

श्रोतृ-संवेदना अर्थात् सुनने की संवेदना का अंग कान है। कान तीन भागों में बाँटा जा सकता है, (i) बाह्य, (ii) मध्य, और (iii) आन्तरिक।

बाह्य कान का काम केवल वायु के कम्पन को एकत्रित करना तथा उन्हें मध्य कान में पहुँचाना है। मनुष्य का बाह्य कान इतना चपटा है कि वह इस काय के लिए बहुत कुछ असमर्थ है। परन्तु घोड़े और कुत्ते इत्यादि के कान ध्वनि-तरगों को एकत्रित करने में बहुत उपयुक्त हैं।

एकत्रित ध्वनि-तरंगें मध्य कान में स्थिति झिल्ली में कम्पन उत्पन्न करती हैं। यह कम्पन मध्य कान की तीन: छोटी-छोटी हड्डियों में से हो कर आन्तरिक कान के तरल पदार्थ में कम्पन पैदा कर देता है।

आन्तरिक कान को तीन भागों में बाँटा जा सकता है :—

(i) घोघे के आकार का चक्राकार कोष्ट

(ii) कर्णकुटी

(iii) तीन अर्धवृत्ताकार नालियाँ

चक्राकार कोष्ठ तथा श्रोतृ-संवेदना

श्रवणेन्द्रियाँ चक्राकार कोष्ठ में पाई जाती हैं। इसी कोष्ठ में एक तरफ पदार्थ रहता है, जिसमें ध्वनि-तरगों की तीव्रता या मन्दता के अनुसार कम्पन पैदा होते हैं। इसी कोष्ठ में एक झिल्ली के ऊपर आभ्यन्तरिक जाल लगे रहते हैं जिनसे श्रोतृसंवेदना के ज्ञानतन्तु जुड़े हैं।

मध्य कान द्वारा जब ध्वनि-तरंगों का कम्पन आन्तरिक कान में पहुँ-चता है तो आन्तरिक कान के तरल पदार्थ में कम्पन पैदा हो जाता है। यह कम्पन ध्वनि-तरंग की लम्बाई के अनुसार ही रहता है। इस कम्पन से आभ्यतरिक बालों को उत्तेजना मिलती है, जिससे उन बालों से लगे श्रवण-तन्तु उत्तेजित हो जाते हैं। इस उत्तेजना की सूचना श्रवण-तन्तुओं द्वारा मस्तिष्क को पहुँचते ही व्यक्ति को सुनने का अनुभव होता है।
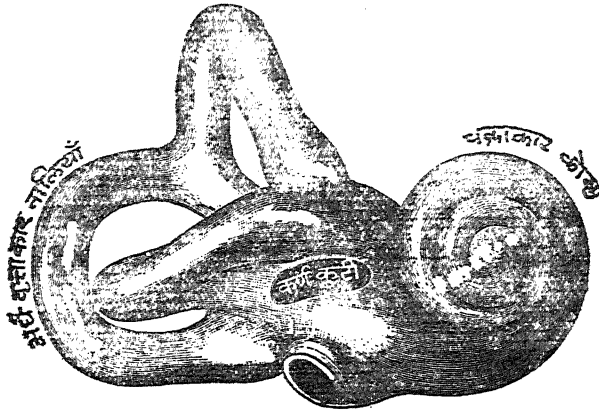
चक्राकार कोष्ठ अपनी पूरी लम्बाई में एक समान चौड़ा नहीं है। मध्य कान से भीतर की ओर वह क्रमशः पतला होता चला जाता है और उसमें पंक्तियों में बिछी श्रवणेन्द्रियाँ क्रमशः परस्पर निकट होती जाती हैं। पतले किनारे की श्रवणेन्द्रियाँ ऊँची ध्वनि-तरंगों को ग्रहण करती हैं, और चौड़े किनारे की धीमी ध्वनि-तरंगों को। अर्थात्, चक्राकार कोष्ठ में लगी श्रवणेन्द्रियाँ जितनी अधिक निकट होती हैं, उतनी ही तीव्रगति के ध्वनि-कम्पन से वह उत्तेजना भी पाता है।

यदि किसी कारण से कुछ श्रवणेन्द्रियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं तो व्यक्ति

को उनसे सम्बन्धित ध्वनि-तरंगों के कम्पन का अनुभव नहीं होता। ऐसे व्यक्तियों में आंशिक-बहरापन आ जाता है, जो प्रायः ऊँची ध्वनि के प्रति रहता है। परन्तु कभी-कभी व्यक्ति केवल धीमी ध्वनि के प्रति ही बहरा होता है।

ऐसे व्यक्तियों के कान की परीक्षा से यह देखा गया कि उनके कान की कुछ श्रवणेन्द्रियाँ नष्ट हो चुकी थीं। साथ ही यह भी पाया गया कि ऊँची ध्वनि के प्रति आंशिक बहरे व्यक्ति के चक्राकार कोष्ठ के पतले भाग की श्रवणेन्द्रियाँ, तथा धीमी ध्वनि के प्रति बहरे व्यक्ति के चक्राकार कोष्ठ के चौड़े भाग की श्रवणेन्द्रियाँ नष्ट थीं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि चक्राकार कोष्ठ के विभिन्न भागों की श्रवेणन्द्रियाँ भिन्न-भिन्न लम्बाई की ध्वनि-तरंगों के प्रति संवेदनशील हैं।

यद्यपि मनुष्य बहुत ऊँची या बहुत धीमी ध्वनि सुनने में समर्थ है, किन्तु वायु-कम्पन में और भी बहुत-सी ध्वनि-तरंगें हैं जो उसकी श्रवण-शक्ति से अधिक ऊँची या नीची हैं। इन्हें सुनने में वह असमर्थ है। अर्थात् जिन ध्वनि-तरंगों की कम्पन की तीव्रता या मन्दता व्यक्ति के चक्राकार कोष्ठ की श्रवणेन्द्रियों की ग्राहिकाशक्ति से अधिक या कम है, उन्हें वह सुनने में भी असमर्थ है।

ध्वनि-संवेदना के प्रकार

ध्वनि-संवेदना दो प्रकार की हैं:—

(i) स्वर

(ii) शोर

स्वर

जब ध्वनि-तरंगों के कम्पन में नियमित अन्तर तथा विस्तार रहता है, तो श्रवणेन्द्रियों की प्रक्रिया भी नियमित रूप से होती है। इनसे उत्तेजित संवेदना स्वर कहलाती है।

शोर

जब ध्वनि तरंगों के कम्पन में कुछ नियमित रूप नहीं रहता, तब बहुत-सी श्रोतृ-संवेदना अव्यवस्थित रूप से उत्तेजित हो जाती हैं। इनके अनुभव को शोर कहा जाता है।

श्रोतृ-संवेदना की विशेषताएँ

(क) चढ़ाव-उतार
(ख) ऊँचा या धीमापन
(ग) ध्वनि की अपनी विशेषता

ध्वनि-तरंगों से जितनी जल्दी-जल्दी कम्पन पैदा होता है, उस तीव्रता के अनुसार ध्वनि का चढ़ाव और उतार रहता है। अर्थात् आन्तरिक कान में जितनी तीव्रगति से एक के बाद दूसरी तरङ्ग उठती है, उतना ही स्वर का चढ़ाव अधिक रहता है। इसके विपरीत जितनी ध्वनि-तरङ्गों की गति मन्द रहती है, उतना ही स्वर का उतार अधिक रहता है।

ध्वनि-तरंगों में केवल समय का ही अन्तर नहीं होता, उनका विस्तार भी अलग-अलग रहता है। उनसे उत्तेजित आभ्यंतरिक बालों के आगे-पीछे मुड़ने का जितना अधिक विस्तार रहता है, उतनी ही ध्वनि ऊँची रहती है। इसके विपरीत, ध्वनि-तरंगों का विस्तार जितना कम रहता है, उतनी ही ध्वनि धीमी सुनाई पड़ती है।

इसके अतिरिक्त ध्वनि-तरंगों के कम्पन की तीव्रता से भी ध्वनि के ऊँचे या धीमेपन का अनुभव होता है।

विभिन्न ध्वनि-तरंगों के परस्पर संयोजन से ध्वनि में अपनी विशेषता आ जाती है, जिसके आधार पर व्यक्ति सहज ही, एक-सी ऊँची तथा एक-से चढ़ाव की दो ध्वनियों में अन्तर का अनुभव करता है। दो प्रकार के वाद्य-यन्त्र की एक-सी ऊँची ध्वनि, एक से चढ़ाव-उतार की होने पर भी,

एक-सी नहीं होती। सितार की ध्वनि वीणा से, और वीणा की सरोद से भिन्न रहती है। इनमें जो विशिष्टता पाई जाती है, उसी को ध्वनि की अपनी विशेषता कहते हैं।

दो कानों की उपयोगिता

(द्विकर्ण संवेदना)

दोनों कानों की स्थिति इस प्रकार की है कि दायें या बायें ओर की ध्वनि दोनों कानों में एक साथ नहीं पहुँच पाती। दाईं ओर की ध्वनि बायें कान की अपेक्षा पहले दायें कान में पहुँचती है। यही बात बाईं

चित्र के अनुसार यदि व्यक्ति ध्वनि-यन्त्र को अपने कानों में इस प्रकार लगा ले कि दाईं ओर की ध्वनि बाईं ओर के कान को और बाईं ओर की ध्वनि दाईं ओर के कान को पहुँचे; तो ऐसी स्थिति में व्यक्ति आँख बन्द किये रहने पर ध्वनि के उद्गम की दिशा को समझने में भूल करता है। वह दाईं ओर की ध्वनि को बाईं ओर, और बाईं ओर की ध्वनि को दाईं ओर की समझता है।

ओर की ध्वनि के सम्बन्ध में भी सत्य है। समय के इस अन्तर के कारण,

दाईं या बाईं ओर से आनेवाली ध्वनि की दिशा का पता सहज लग जाता है।

परन्तु जो ध्वनि सामने या पीछे की ओर से आती है, वह दोनों कानों में एक ही समय तथा समान तीव्रता से पहुँचती है। ऐसी दशा में सिर को बिना घुमाये, केवल ध्वनि के सहारे ही यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि ध्वनि किधर से आ रही है। अर्थात्, सामने या पिछली ओर से आनेवाली ध्वनि के उद्गम स्थान के सम्बन्ध में बहुत अनिश्चय बना रहता है और उसके निर्णय में व्यक्ति भूल करता है।

आँख के खुले रहने पर इस भूल का अंदेशा नहीं रहता। यही कारण है कि व्यक्ति को साधारणतः यह भूल नहीं होती कि ध्वनि सामने की ओर से आ रही है या पिछली ओर से। परन्तु जब वह ध्वनि के उद्गम को नहीं देख सकता तो उसे सिर को घुमाने की आवश्यकता पड़ती है। सिर को घुमाये बिना वह उसका सही अनुमान नहीं लगा पाता।

इसमें सन्देह नहीं कि दृष्टि-संवेदना से हमें ध्वनि की दिशा को जानने में बहुत सहायता मिलती है। परन्तु जब ध्वनि का उद्गम दिखाई नहीं पड़ता, तो साधारणतः व्यक्ति अपने सिर को इस प्रकार घुमाता है कि सामने की दिशा दाईं या बाईं हो जाए। ऐसा करते ही ध्वनि की दिशा का अनुभव लगाना सहज हो जाता है।

कान की अर्धवृत्ताकार नालियाँ तथा कर्णकुटी
(चक्कर आने की संवेदना तथा सिर की स्थिति का ज्ञान)

कान में तीन अर्धवृत्ताकार नालियाँ हैं। इनके द्वारा हमें चक्कर आने की संवेदना होती है। यह वास्तव में कान की प्राथमिक सवेदना है।

यद्यपि यह नालियाँ अर्धवृत्ताकार कहलाती हैं, किन्तु प्रत्येक नाली

अर्धवृत्त से अधिक है। यह तीनों एक दूसरे के समकोण हैं और लगभग पूरा वृत्त ही बना देती हैं। इसलिए उनके द्वारा सिर की प्रत्येक स्थिति का अनुभव व्यक्ति को होता रहता है

दोनों कानों की अर्धवृत्ताकार नालियाँ

इन अर्धवृत्ताकार नालियों में पानी रुका रहता है, जिसमें लम्बे-लम्बे रोम खड़े रहते हैं। चक्कर खाने से इन नालियों का पानी उलटा चलने लगता है। पानी के इस आन्दोलन से रोम झुक जाते हैं, जिससे उनसे लगे ज्ञानतन्तुओं को उत्तेजना मिलती है और चक्कर आने की संवेदना होती है।

अर्धवृत्ताकार नालियों के अतिरिक्त शरीर और विशेषकर सिर की स्थिति का ज्ञान आन्तरिक कान की कर्णकुटी से भी होता है। यह कुटी चक्राकार कोष्ठ तथा अर्धवृत्ताकार नालियों के बीच छिद्र के रूप में स्थित है। इस कर्णकुटी में छोटे-छोटे आभ्यंतरिक बाल खड़े रहते हैं और उसमें पत्थर के-से छोटे-छोटे कण बिछे रहते हैं। जब सिर किसी ओर झुकता है तो यह कण भी उसी ओर झुक जाते हैं। इस प्रकार वह स्वयं झुककर छिद्र में लगे आभ्यंतरिक बालों को भी उधर ही झुका देते हैं, जिससे इनसे लगे ज्ञान-तन्तुओं को उत्तेजना मिलती है। ज्ञान-तन्तुओं की यह प्रक्रिया जब मस्तिष्क को पहुँचती है तो व्यक्ति को सिर की स्थिति का ज्ञान होता है।

किसी कारणवश जब पक्षी की यह संवेदना खो जाती है तो

वह अपने सिर को सीधा रखने में असमर्थ हो जाता है। इस संवेदना के आंशिक रूप से नष्ट हो जाने पर भी उसे दाना चुगने में बहुत कठिनाई होती है। मछली इत्यादि भी इसी संवेदना के आधार पर पानी में अपने को सीधा बनाये रखती हैं। इसी के आधार पर वह सन्तुलन में समर्थ रहती हैं।

यद्यपि मनुष्य को अपनी शारीरिक स्थिति का ज्ञान स्नायविक-संवेदना तथा दृष्टि-संवेदना से भी होता है, तोभी उसके जीवन में से इस संवेदना के महत्त्व को कम नहीं किया जा सकता।

त्वक् संवेदना

त्वचा पर जो छोटे-छोटे छिद्र दिखाई पड़ते हैं, इन्हीं में त्वक् संवेदना के ज्ञान-तन्तु व्यवस्थित हैं। बहुत से ज्ञान-तन्तुओं के साथ रोम भी लगे रहते हैं, जो त्वचा के ऊपर दिखाई पड़ते हैं। इन रोमों के स्पर्शमात्र से व्यक्ति को उस वस्तु से भी स्पर्श का अनुभव हो जाता है जो इन रोमों को छूते हुए वास्तव में त्वचा के निकट भर से ही केवल निकल जाता है।

त्वक् संवेदना चार प्रकार की है :—

(i) स्पर्श-संवेदना

(ii) उष्ण-संवेदना

(iii) शीत-संवेदना

(iv) पीड़ा-संवेदना

त्वचा के जिस अंश से जैसी त्वक् संवेदना होती है, वह अंश उसी संवेदना का बिन्दु कहलाता है। इस प्रकार त्वचा पर चार प्रकार के बिन्दु पाये जाते हैं :—

(क) स्पर्श विंदु :—त्वचा पर के वह बिन्दु जिनकी उत्तेजना से स्पर्श-संवेदना होती है।

(ख) उष्ण-बिन्दु :—जिनकी उत्तेजना से उष्ण-संवेदना होती है।

(ग) शीत-बिन्दु :—इनकी उत्तेजना से शीत-संवेदना होती है।

(घ) पीड़ा-बिन्दु :—वह बिन्दु जिनकी उत्तेजना से पीड़ा की संवेदना होती है।

यद्यपि इन चारों संवेदना के बिन्दु सारी त्वचा पर बिछे रहते हैं, किन्तु वह त्वचा के सब भागों पर एक समान नहीं रहते। अर्थात् विभिन्न प्रकार की त्वक्-संवेदना के बिन्दु त्वचा के अलग-अलग भागों में बहुतायत से पाये जाते हैं।

त्वचा का एक भाग यदि उष्णता के प्रति अत्यन्त संवेदनशील है, तो दूसरा भाग शीत के प्रति, और कुछ भागों में एक से अधिक प्रकार की त्वक्-संवेदना का समान अनुभव होता है। इसी प्रकार त्वचा के कुछ अंश किसी विशेष त्वक्-संवेदना के प्रति बहुत कुछ शून्य भी रहते हैं। अन्य शब्दों में त्वचा के हर भाग से हमें सब प्रकार की त्वक्-संवेदना का एक-सा अनुभव नहीं होता।

त्वचा के कुछ भागों की संवेदनशीलता निम्नलिखित विवरण में प्रदर्शित है :—

त्वक्-संवेदना के बिन्दु	संवेदनशील भाग	अपेक्षाकृत शून्य भाग
(१) स्पर्श-संवेदना के बिन्दु	नाक, जिह्वा, उँगलियाँ	हाथ का पृष्ठ भाग, पिंडली, पैर के तलवे।
(२) उष्ण-संवेदना के बिन्दु	पलक, कपोल	हाथ पैर की उँगलियाँ।
(३) शीत-संवेदना के बिन्दु	नाक, ठोढ़ी, कान, हाथ-पैर की उँगलियाँ	हथेली।
(४) पीड़ा के बिन्दु	जिह्वा, कपोल, आँख के नीचे का भाग, पीठ, घुटना	उँगलियाँ, हथेली, पैर।

विभिन्न प्रकार की त्वक् संवेदना के बिन्दु के संस्थान जानने के लिए अलग-अलग प्रकार के उत्तेजकों का प्रयोग किया जाता है।

स्पर्श-बिन्दु

इन्हें जानने के लिये उत्तेजक ऐसा होना चाहिये जिससे केवल स्पर्श का अनुभव हो, दबाव का नहीं। प्रयोग के लिये घोड़े के बाल को डण्डी पर बाँध कर उत्तेजक बनाया जाता है, जिसे त्वचा पर हल्के-हल्के रखा जाता है। स्पर्श बिन्दु का उत्तेजक से संपर्क होते ही स्पर्श-संवेदना का अनुभव होता है। यदि बाँह के ऊपर एक छोटा-सा ऐसा वर्ग अंकित कर लिया जाय, जो बहुत से छोटे-छोटे समान वर्गों में विभाजित हो, तो इस उत्तेजक को प्रत्येक वर्ग पर लगाने से, त्वचा के उस भाग के स्पर्श-बिन्दुओं का पता चल जायगा। यदि पास काग़ज़ पर भी वैसा ही वर्ग अंकित रहे तो स्पर्श संस्थानों को उसपर प्रदर्शित किया जा सकता है।
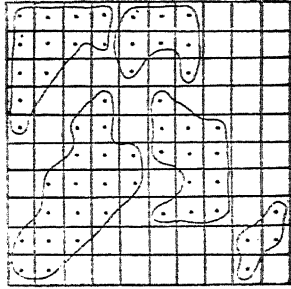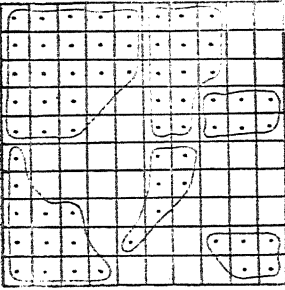
स्पर्श-बिन्दु पीड़ा-बिन्दु

(पूर्वीय पंजाब विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान-विभाग से प्राप्त प्रयोगफल)

पीड़ा-बिन्दु :—

इन्हें जानने के लिये किसी भी पतली नुकीली वस्तु का हल्के से प्रयोग किया जा सकता है। उत्तेजक का प्रयोग करते समय इस बात का

विशेष ध्यान रखना चाहिये कि उसके तापमान और त्वचा के तापमान में बहुत अन्तर न हो। पेंसिल की नोक प्रयोग में लाई जा सकती है।

उष्ण-बिन्दु :—

इन्हें जानने के लिये ऐसा उत्तेजक होना चाहिये जिसका तापमान त्वचा के तापमान से नाममात्र अधिक हो।

शीत-बिन्दु :—

इन्हें जानने के लिये उत्तेजक का तापमान त्वचा के तापमान से नाममात्र कम रहना चाहिये।

तापमान का उचित ध्यान रखते हुए उष्ण तथा शीत-बिन्दु जानने के लिये किसी भी धातु की पतली सलाई का प्रयोग किया जा सकता है।

उष्ण-बिन्दु

शीत-बिन्दु
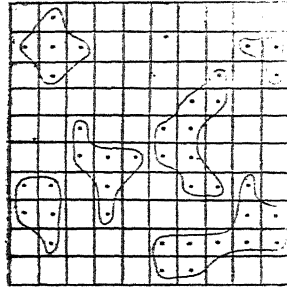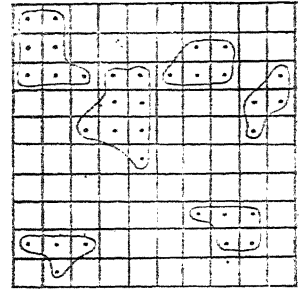
पूर्वीय पंजाब विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान-विभाग से प्राप्त प्रयोगफल। यह, चारों वर्ग कलाई के उस भाग को अंकित करते हैं जहाँ रोम नहीं पाये जाते। एक ही वर्ग इंच भाग को लेकर चारों प्रकार की त्वक्-संवेदना के बिन्दु प्रदर्शित किये गये हैं।

चारों प्रकार की त्वक्-संवेदना के बिन्दुओं को जानने के लिये अलग-अलग उपयुक्त उत्तेजकों का प्रयोग किया जाता है। ऊपर दिये प्रयोग में त्वचा के एक ही भाग की विभिन्न त्वक्-संवेदना के संस्थानों को अलग-अलग प्रदर्शित किया गया है। इनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न त्वक्-संवेदना के बिन्दु समूह में पाये जाते हैं। कोई समूह बहुत से बिन्दुओं का होता है और कुछ कम बिन्दुओं का। इसके अतिरिक्त इन्हें ध्यान से देखने पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि किसी संस्थान से केवल एक ही और किसी-किसी संस्थान से एक से अधिक प्रकार की त्वक्-संवेदना का अनुभव होता है। बड़े वर्गों के भीतरी छोटे वर्गों की पक्तियों को दाईं से बाईं ओर देखने से यह स्पष्ट हो जाता है। पहली पंक्ति में दूसरे वर्ग के संस्थान से व्यक्ति को पीड़ा, शीत, स्पर्श तथा उष्ण अर्थात् चारों ही प्रकार की त्वक् संवेदना का अनुभव हुआ, जब कि उसी पंक्ति के पहले वर्ग के संस्थान से पीड़ा, शीत तथा स्पर्श संवेदना का ही अनुभव हुआ। इसी प्रकार, सातवीं पंक्ति के दूसरे वर्ग के संस्थान से उष्ण तथा स्पर्श संवेदना का, और दूसरी पंक्ति के दसवें वर्ग के संस्थान से केवल उष्ण संवेदना का अनुभव हुआ।

घ्राण-संवेदना

घ्राण-संवेदना का अनुभव नाक से होता है। इस संवेदना के वाहक-तन्तु नाक के पिछले भाग में रोमों के रूप में रहते हैं और वह घ्राण-संवेदना के ज्ञान-तन्तुओं से जुटे रहते हैं। जब वायु के साथ रासायनिक गन्ध-कण नाक में प्रवेश करते हैं तो वह इन रोमों के संपर्क में आकर घ्राण-संवेदना के ज्ञान-तन्तुओं को उत्तेजित करते हैं। उनकी उत्तेजना से व्यक्ति को घ्राण-संवेदना का अनुभव होता है। यदि रासायनिक गन्ध-कण को नाक में प्रवेश करने से रोक दिया जाय तो घ्राण-संवेदना नहीं होती। इसीलिए यदि किसी ओर से दुर्गन्धमय हवा आती है, तो व्यक्ति अपनी

नाक को बन्द कर लेता है, ताकि दुर्गन्ध के रासायनिक कण नाक में प्रवेश न कर पायें।

यद्यपि घ्राण-संवेदना बहुत प्रकार की हैं किन्तु घ्राणेन्द्रियाँ नाक के पिछले भाग में इस प्रकार छिपी पड़ी हैं कि उनका अध्ययन करना सरल नहीं है। घ्राण-संवेदना का वर्गीकरण साधारण अनुभव के अनुसार किया जाता है।

अभीतक किये गये वर्गीकरण में हेनिंग का वर्गीकरण ही सबसे प्रसिद्ध है। इनके कथनानुसार घ्राण-संवेदना छः प्रकार की हैं :—

(i) सुगन्ध,	फूलों इत्यादि की।
(ii) भीनी-मीठी-गन्ध,	सन्तरे के तेल-सी
(iii) मसालों की गन्ध,	दाल-चीनी, लौंग, इलायची इत्यादि की।
(iv) जले हुए की गन्ध,	खाद्यपदार्थों के जलने की-सी।
(v) सड़े हुए की गन्ध,	कन्दमूल फल के सड़ने की गन्ध।
(vi) बिरोज़े की गन्ध,	जैसे चीड़ के जंगल या तारपीन के तेल की गन्ध।

घ्राण-संवेदना के सम्बन्ध में यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि घ्राणेन्द्रियाँ बहुत जल्दी थक जाती हैं। यही कारण है कि किसी विशेष गन्ध के कुछ समय तक निरन्तर अनुभव के पश्चात् व्यक्ति को उसका ज्ञान नहीं रहता। जिस तरह ज्ञानेन्द्रियाँ जल्दी थक जाती हैं, वैसे ही वह शीघ्र ही स्वस्थ भी हो जाती हैं।

उदाहरणस्वरूप, यदि एक ही प्रकार की गन्ध व्यक्ति को कुछ समय तक के लिए निरन्तर आती रहती है, तो उसे उस गन्ध का अनुभव होना बन्द हो जाता है। परन्तु जब थोड़ी देर के लिए वह उस जगह से दूर हो जाता है तो उसकी घ्राणेन्द्रियाँ फिर से स्वस्थ हो जाती हैं और वह उस गन्ध को ग्रहण करने योग्य हो जाता है।

रस संवेदना

जिह्वा को रसना भी कहते हैं, क्योंकि यह अंग रस संस्थान है। जिह्वा पर जो छोटे-छोटे छिद्र दिखाई पड़ते हैं, उन्हीं में रस संवेदना के ज्ञान-तन्तु अवस्थित हैं। इन ज्ञान-तन्तुओं के उत्तेजित होने से ही रसबोध होता है।

रसना का एक छिद्र
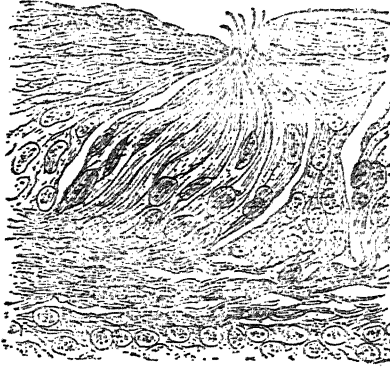
(बढ़ाए हुए आकार में, मिचेल के आधार पर)

चूँकि रसेन्द्रियाँ अत्यन्त सूक्ष्म छिद्रों के भीतर हैं, इसलिए यह आवश्यक है कि उत्तेजक रस-पदार्थ तरल रूप में हों, अथवा ऐसे हों जो सरलता से तरल रूप में परिणत हो सकें। जब कोई ठोस पदार्थ खाया जाता है तो वह लार के साथ मिलकर इन छिद्रों में प्रवेश करता है, जिससे रस-संवेदना के ज्ञान-तन्तुओं को उत्तेजना मिलती है। जब तक पदार्थ इन छिद्रों में प्रवेश कर इन ज्ञान-तन्तुओं तक नहीं पहुँच पाते, तब

तक व्यक्ति को खाने का अनुभव भी नहीं होता। जैसे, जिह्वा को अच्छी तरह पोंछ और सुखाकर उसपर मिश्री की डली रखी जाय तो उसकी रस संवेदना तत्काल नहीं होती। मिश्री के घुलने पर ही उसकी मिठास का अनुभव आरंभ होता है।

रस-संवेदना चार प्रकार की हैं :—

(i) मीठा (ii) नमकीन (iii) खट्टा (iv) कड़ुआ

इन चारों प्राथमिक रस-संवेदना के छिद्र तथा उनमें लगी रसेन्द्रियाँ भिन्न-भिन्न रहती हैं। कुछ छिद्रों से हमें केवल एक ही रस की संवेदना होती है, और कुछ से दो या अधिक की।

विभिन्न रस संवेदना के छिद्र जिह्वा के सब भागों पर एक समान नहीं पाये जाते। जिह्वा के किसी भाग में मीठा प्रधान है, तो किसी में नमकीन। विभिन्न रस-संवेदना के छिद्र जिह्वा पर इस प्रकार व्यवस्थित हैं :—

(i) मीठा	...	जिह्वा की नोक पर।
(ii) नमकीन	...	जिह्वा की दाईं-बाईं ओर
(iii) खट्टा	...	नमकीन के छिद्रों के निकट तथा जिह्वा की नोक पर।
(iv) कड़ुआ	...	जिह्वा के पिछले भाग पर।

रस-संवेदना में घ्राण-संवेदना तथा त्वक्-संवेदना के मिश्रण से बहुत भेद आ जाते हैं। जैसे, कॉफ़ी और हल्की कुनीन का रस एक-सा होने पर भी घ्राण-संवेदना के कारण उनका अनुभव एक समान नहीं होता। आलू, सेब और प्याज़ रस में एक से रहने पर भी स्वाद में एक से नहीं होते।

इसी प्रकार रस में जो तीतेपन का अनुभव होता है वह वास्तव में त्वक्-संवेदना का परिणाम है। गर्म और ठण्डी वस्तु के रस में जो अन्तर प्रतीत होता है, वह भी त्वक्-संवेदना अर्थात् उष्ण या शीत-संवेदना के कारण ही है।

———

संवेग

संवेग के उत्तेजित होने पर व्यक्ति भावाविष्ट हो जाता है, जिससे उसकी विचार और तर्कशक्ति बहुत कुछ शिथिल हो जाती है। व्यक्ति की भावात्मक मानसिक स्थिति में इतनी उथल-पुथल मच जाती है कि उसे अपनी इच्छा का पूरा-पूरा ज्ञान नहीं रह पाता। उसकी शारीरिक अवस्था में भी इतना परिवर्तन आ जाता है कि दूसरे व्यक्ति को दूर से ही उसके संवेग का अनुमान हो जाता है। कुछ व्यक्ति के वाह्य व्यवहार से ही हम यह कह सकते हैं कि उसके क्रोध का आवेग कैसा है। इसी प्रकार भयभीत व्यक्ति के संवेग को भी जानने में कोई कठिनाई नहीं होती। प्रत्येक संवेग की शारीरिक अवस्था दूसरे संवेगों से प्रायः इतनी भिन्न रहती है कि कुछ मनोवैज्ञानिकों का तो यह मत है कि शारीरिक अवस्था द्वारा संवेग का ठीक-ठीक अध्ययन किया जा सकता है।

मैक्डूगल का विचार है कि संवेग मूलप्रवृत्ति का एक आवश्यक अंग है। इसलिए व्यक्ति में संवेग का होना उतना ही स्वाभाविक है जितना नैसर्गिक इच्छा या प्रेरणा का। जब कोई मूलप्रवृत्ति उत्तेजित होती है, तो उससे संबन्धित चेष्टा सदा ही संवेगात्मक रहती है। भिन्न-भिन्न मूलप्रवृत्तियों के संवेग भी अलग-अलग हैं। अर्थात्, व्यक्ति में जितनी मूलप्रवृत्तियाँ हैं, उतने ही मूल संवेग भी हैं। यह संवेग प्राथमिक होने के कारण मूल संवेग कहे जाते हैं। इनकी सूची इस प्रकार है :—

मूलप्रवृत्ति		मूल संवेग
भोजनान्वेषण	...	भूख
कामप्रवृत्ति	...	कामुकता अथवा प्रेम

युयुत्सा	...	क्रोध
जिज्ञासा	...	आश्चर्य
दैन्य	...	आत्महीनता
आत्मगौरव	...	आत्माभिमान
सामूहिकता	...	एकाकीपन
पैतृक	...	वात्सल्य
पलायन	...	भय
अर्जन	...	अधिकार भावना
सृजन	...	सृजन अथवा कृतिभाव
शरण	...	करुणा
निवृत्ति	...	घृणा

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अनुभवों के कारण व्यक्ति की मूलप्रवृत्तियाँ सहज उत्तेजक के अतिरिक्त उससे सम्बन्धित अन्य बहुत-सी स्थितियों से भी उत्तेजित होने लगती हैं। इसी प्रकार उनकी प्रेरणा में भी, अनुभव के आधार पर, बहुत परिवर्तन आ जाते हैं। अर्थात मूल-प्रवृत्तियों के ज्ञानात्मक तथा इच्छात्मक दोनों ही पहलू, परिवर्तनशील हैं; किन्तु संवेगात्मक पहलू ज्यों-का-त्यों ही बना रहता है। उसके संवेग में कुछ परिवर्तन नहीं आता। अर्थात्, मूलप्रवृत्ति के संवेग सदा जैसे ही बने रहते हैं। उदाहरणार्थ, साधारणतया व्यक्ति सहसा उत्पन्न ऊँची आवाज़ से भय खाता है। भयभीत होते ही वह उस स्थिति से भाग जाना चाहता है; परन्तु कुछ व्यक्तिगत अनुभव के कारण कभी-कभी व्यक्ति किसी विशेष प्रकार की शान्ति से भी भय खाने लगता है। इसी प्रकार भागने के स्थान पर, वह आवश्यकता के अनुसार कभी-कभी चुपचाप खड़ा हो जाता है। परन्तु जहाँ तक पलायन के संवेग का सम्बन्ध है, उसमें परिवर्तन नहीं आता। पलायन प्रवृत्ति के उत्तेजित होने पर व्यक्ति को सदा भय का ही अनुभव होता है।

मूल-संवेग के अतिरिक्त गौण-संवेग भी होते हैं। बहुधा दो या अधिक मूलप्रवृत्तियाँ एक ही साथ उत्तेजित हो जाती हैं। उनके संवेग में ऐसा परस्पर मेल हो जाता है कि व्यक्ति के संवेगात्मक अनुभव में उनका मिश्रित रूप ही रहता है। यही गौण-संवेग कहलाते हैं। इसमें किसी एक मूल-संवेग की विशेषता नहीं होती। आदर में केवल स्नेह ही नहीं रहता, उसके साथ-साथ आत्महीनता और भय की भावनाएँ मिली रहती हैं। इन सबके मिश्रित रूप को ही आदर कहते हैं। इसी प्रकार श्लाघा में आत्महीनता के साथ-साथ आश्चर्य का भाव भी मिला रहता है। किसी रहस्यमय, आश्चर्यजनक तथा महत्वपूर्ण स्थिति में व्यक्ति केवल विशुद्ध श्लाघा का अनुभव ही नहीं करता, उसके अनुभव में भय का मिश्रण भी रहता है।

गौण-संवेग व्यक्ति के जीवन में एक नहीं, अनेक होते हैं। उनकी विशेषताएँ उसके अपने वैयक्तिक अनुभवों पर निर्भर करती हैं। इसलिए इन्हें किसी व्यवस्थित रूप में सूचीबद्ध नहीं किया जा सकता। उनके सम्बन्ध में केवल यही कहा जा सकता है कि कुछ गौण-संवेग केवल दो ही मूल-संवेग के मिश्रण होते हैं, और कुछ बहुत से संवेगों के।

जिस प्रकार स्थायी भाव का आधार मूलप्रवृत्तियाँ है, उसी प्रकार गौण-संवेग का आधार मूल-संवेग हैं। प्रौढ़ व्यक्ति के संवेगात्मक अनुभवों का रूप बहुधा गौण होता है।

संवेग में अन्तरावयव संवेदना

संवेग में केवल भावना का आवेश ही नहीं रहता, उसमें अन्तरावयव संवेदना भी होती है। अन्तरावयव संवेदना भावावेश को पुष्ट करती है और उसे संवेग का रूप प्रदान करती है, जैसे, क्रोध। व्यक्ति जब क्रोधित होता है तो उसे भावावेश के साथ-साथ अन्तरावयव संवेदना का भी अनुभव रहता है; दिल का जोर-जोर से धड़कना, साँस का तेज़ चलना

और चेहरे का तमतमाना इत्यादि। यदि हम अपने क्रोध के अनुभव में से इन सब शारीरिक तथा अन्तरावयव संवेदनाओं को अलग कर दें, तो हम देखते हैं कि क्रोध के स्थान पर केवल क्रोध का भाव-मात्र ही शेष रह जाता है, संवेग की उत्तेजना उसमें से निकल जाती है। अर्थात् अन्तरावयव सवेदना को अलग करते ही क्रोध का संवेग भी मिट जाता है। यही दशा अन्य संवेगों की भी है।

वाटसन के मतानुसार अन्तरावयव प्रतिक्रिया ही संवेग है, अर्थात् संवेग में न भावावेश है और न संवेदना। प्राणी में शारीरिक प्रतिक्रिया का जो स्वाभाविक गुण रहता है, उसी के कारण, उसका व्यवहार स्थिति के अनुकूल हो जाता है। अर्थात्, स्थिति के अनुकूल उत्तेजित शारीरिक प्रतिक्रिया ही संवेग है।

हम अपने अनुभव के आधार पर यह कह सकते हैं कि संवेग को उत्तेजित करने में व्यक्ति की मानसिक स्थिति का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। प्रसन्न मनःस्थिति के रहने पर व्यक्ति में शोर जैसी अप्रिय स्थिति क्रोध उत्तेजित नहीं करती। उसकी ओर उसका विशेष ध्यान ही नहीं जाता। परन्तु मनःस्थिति के विपरीत रहने पर, शोर-गुल व्यक्ति में क्रोध उत्तेजित कर देते हैं। वह उन्हें दूर करने को उतावला हो उठता है। अर्थात् एक ही उत्तेजक से उसे सदा एक ही संवेग का अनुभव नहीं होता। संवेग को उत्तेजित करने में व्यक्ति की मानसिक स्थिति उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि बाह्य स्थिति। यही कारण है कि उत्तेजक के एक समान रहने पर भी अलग-अलग समय पर उनके प्रति व्यक्ति की शारीरिक प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न रहती है। संवेग में केवल शारीरिक प्रतिक्रिया ही स्थिति के अनुकूल नहीं होती, प्रत्येक संवेग में व्यक्ति विशिष्ट भावना का भी अनुभव करता है।

संवेग में भावना, संवेदना तथा मानसिक स्थिति का उल्लेख करते हुए शारीरिक अवस्था अर्थात् अन्तरावयव प्रतिक्रिया की उपेक्षा नहीं की

जा सकती। संवेग के अनुभव में भावावेश तथा शारीरिक प्रतिक्रिया की संवेदना परस्पर इस प्रकार मिली रहती हैं कि साधारणतया उन्हें अलग-अलग करना संभव नहीं रहता। जिस प्रकार अन्तरावयव संवेदना के अभाव में, संवेग केवल भावना मात्र रह जाता है, उसी प्रकार भावना के अभाव में अन्तरावयव प्रतिक्रिया केवल शारीरिक क्रिया ही रह जाती है, संवेग नहीं बन पाती।

जेम्स लांगे का संवेग-सिद्धान्त

इस सिद्धान्त को जेम्स तथा लांगे ने एक दूसरे से अलग-अलग सन् १८८४ तथा १८८५ में क्रमशः प्रकाशित किया। इस विषय पर इनके विचार एक दूसरे से इतने मिलते हैं कि वह 'जेम्स-लांगे का सिद्धांत' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

जेम्स-लांगे सिद्धांत के अनुसार, संवेग का कारण व्यक्ति की शारीरिक प्रतिक्रिया है। जब कोई व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण या स्मृति द्वारा किसी स्थिति का अनुभव करता है, तो उसमें उस स्थिति के अनुसार विभिन्न प्रकार की शारीरिक तथा अन्तरावयव प्रतिक्रिया होती है। इन प्रतिक्रियाओं और विशेषकर अन्तरावयव प्रतिक्रिया की संयुक्त संवेदना ही सवेग है।

जेम्स का कथन है कि "संवेग उस शारीरिक प्रतिक्रिया की संवेदना है, जो किसी उत्तेजनापूर्ण स्थिति के कारण सहज ही उत्तेजित हो जाती है।"

लांगे के कथनानुसार "अन्तरावयव तथा शारीरिक प्रतिक्रिया की संयुक्त संवेदना ही संवेग का सार है।"

"Emotion is nothing but the feeling of bodily activity that is reflexly aroused by certain exciting situation"—James.

"Essentials of emotion are the feelings of vaso-motor changes"—Lange.

उनके कथनानुसार यदि किसी स्थिति के प्रत्यक्षीकरण के उपरान्त व्यक्ति में शारीरिक प्रतिक्रिया नहीं होती, तो उसका उस स्थिति के प्रति अनुभव केवल ज्ञानात्मक ही रह जाता है, संवेगात्मक नहीं बन पाता।

जनसाधारण का विचार है कि संवेग के कारण व्यक्ति में शारीरिक तथा अन्तरावयव प्रतिक्रिया होती हैं; अर्थात्, पहले हमें संवेग का अनुभव होता है और तब उसके तुरन्त पश्चात् अन्तरावयव संवेदना का। जैसे, पहले हमें दुःख होता है और तब दुःख के कारण हमारे आँसू बहने लगते हैं, साँस गहरी हो जाती है और दिल की धड़कन धीमी पड़ जाती है।

परन्तु जेम्स लांगे का सिद्धांत इससे विपरीत है। उनके विचार में, स्थिति के अनुसार व्यक्ति में पहले अन्तरावयव तथा अन्य शारीरिक प्रतिक्रिया होती हैं और तब उनकी संवेदना से उसे संवेग का अनुभव होता है। यानी हम रोते पहले हैं, और दुखी बाद में होते हैं। इसी प्रकार हम भागते पहले हैं और डर का अनुभव उसके बाद होता है। अर्थात्, हम इसलिए नहीं भागते कि हमें डर लगता है, हम इसलिए नहीं रोते कि हमें दुःख हुआ है, परन्तु हम भागने के कारण डरते हैं और रोने के कारण दुखी होते हैं।

उनका कहना है कि शारीरिक प्रतिक्रिया की संवेदना के होते ही व्यक्ति को संवेग का अनुभव इतना तुरन्त हो जाता है कि साधारणतः लोग संवेग को ही शारीरिक प्रतिक्रिया का कारण समझते हैं, किन्तु उनका यह विचार भ्रान्तिपूर्ण है। यदि हम अपनी कल्पना की सहायता से किसी संवेग के अनुभव में से शारीरिक प्रतिक्रिया की संवेदना को अलग कर दें, तो हम देखेंगे कि जो शेष रह जाता है वह केवल स्थिति का ज्ञानमात्र ही होता है, संवेग नहीं। संवेगात्मक अनुभव में से शारीरिक प्रतिक्रिया की संवेदना को पृथक् करते ही संवेग का अनुभव ही मिट जाता है।

इसलिए जेम्स-लांगे-सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति की शारीरिक तथा अन्तरावयव प्रतिक्रिया की संयुक्त संवेदना ही उसका संवेग होता है।

शारीरिक प्रतिक्रिया को संवेग का कारण मानते हुए जेम्स-लांगे-सिद्धांत ने व्यक्ति के ज्ञानात्मक अनुभव की उपेक्षा नहीं की, बल्कि शारीरिक प्रतिक्रिया को उत्तेजित करने में उसे एक महत्वपूर्ण स्थान दिया है। व्यक्ति किसी स्थिति को जिस प्रकार समझता है, उसी के अनुसार उसकी शारीरिक प्रतिक्रिया भी रहती है। यदि व्यक्ति किसी स्थिति को ऐसा नहीं समझता कि उससे भागना आवश्यक है, तो उसमें भागने की शारीरिक प्रतिक्रिया भी नहीं होती, और न उससे संबंधित भय का संवेग। पिंजरे में बन्द शेर को देखने के लिये हम खड़े हो जाते हैं, और जंगल में उसे देखते ही भागने लगते हैं। पहली स्थिति में हमें आश्चर्य का अनुभव होता है और दूसरी में भय का। इसी प्रकार किसी को कलाबाज़ियाँ खाते देखकर हमें आश्चर्य और प्रसन्नता होती है, भय नहीं; परन्तु अनजान व्यक्ति को निपुण कलाबाज़ की नक़ल करने की चेष्टा करते देखकर हमें भय का अनुभव होता है। अर्थात्, किसी स्थिति के प्रत्यक्षीकरण पर, व्यक्ति में उसके अनुकूल शारीरिक तथा अन्तरवयव प्रतिक्रिया होती है। जेम्स-लांगे सिद्धांत के अनुसार प्रत्यक्षीकरण से उत्तेजित शारीरिक तथा अन्तरावयव प्रतिक्रिया की संयुक्त संवेदना ही संवेग है।

जेम्स लांगे सिद्धान्त की समालोचना

प्रत्येक संवेगात्मक अनुभव में शारीरिक प्रतिक्रिया की संवेदना अवश्य पाई जाती है। कुछ संवेग तो ऐसे होते हैं, जिनमें शारीरिक प्रतिक्रिया बहुत प्रधान रहती है, जैसे क्रोध, भय इत्यादि। किन्तु कुछ संवेगों में शारीरिक प्रतिक्रिया इतनी स्पष्ट नहीं रहती, जैसे आश्चर्य, सृजन-भावना; तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि इनमें अन्तरावयव प्रतिक्रिया की संवे-

दना का सर्वथा अभाव है। जिस अनुभव में शारीरिक तथा अन्तरावयव प्रतिक्रिया की संवेदना का अभाव रहता है, उसमें संवेग की विशेषता या उत्तेजना भी नहीं पाई जाती। वह केवल संवेग का भावमात्र ही होता है, संवेग नहीं।

यदि कोई व्यक्ति, कष्ट में भी अपने चेहरे को प्रफुल्लित रखता है, और उसमें दुःख के लक्षण नहीं आने देता, तो कुछ ही समय में वह वास्तव में प्रसन्नचित्त हो जाता है। इसी प्रकार यदि व्यक्ति अपने को ढीला-सा छोड़ देता है, और उसमें दुःख के लक्षण ले आता है, तो वह साधारण स्थिति में भी दुखी हो जाता है।

व्यक्ति के भावात्मक अनुभव में, उसके शारीरिक स्वास्थ्य, विशेषकर ग्रंथियों और अन्तरावयव की क्रिया का गहरा प्रभाव है। यदि किसी व्यक्ति की चुल्लिका ग्रंथि में शिथिलता आ जाती है, तो वह बहुत सुस्त रहने लगता है। उसमें साधारण व्यक्तियों की भाँति संवेग सहज ही उत्तेजित नहीं हो पाते। अर्थात् वह संवेग उत्तेजित करनेवाली स्थितियों के प्रति भी बहुधा उदासीन ही रह जाता है। यदि उसकी चुल्लिका ग्रंथि बहुत तेज़ काम करने लगती है, तो उसकी मानसिक अवस्था ठीक इससे विपरीत हो जाती है। उसमें संवेग बहुत शीघ्र उत्तेजित हो जाते हैं।

त्रुटियाँ

हमारी कुछ शारीरिक तथा अन्तरावयव प्रतिक्रिया ऐसी भी हैं जिनके संवेदन से हमें संवेग का अनुभव नहीं होता। पाचन-क्रिया, भूख आदि इसी प्रकार की प्रतिक्रिया के उदाहरण हैं।

शारीरिक प्रतिक्रिया के रुक जाने पर संवेग प्रायः अधिक तीव्र हो जाते हैं, जैसे क्रोध या दुःख। इनकी शारीरिक क्रिया जब सहज रहती है, तो यह कुछ ही देर में शान्त हो जाते हैं, नहीं तो इनका अनुभव बहुत

देर तक रहता है। दुःखप्रद घटनाओं में जो व्यक्ति दुःख की अभिव्यक्ति नहीं देता, उसका दुःख प्रायः बहुत तीव्र और दीर्घकालीन हो जाता है।

शारीरिक प्रतिक्रिया केवल स्थिति के ज्ञानमात्र से ही उत्तेजित नहीं हो जाती, उसके उत्तेजित करने में व्यक्ति की मानसिक अवस्था का भी बहुत प्रभाव रहता है। यदि व्यक्ति को भूख न रहे, अथवा भूख रहने पर भी उसमें खाने की इच्छा नहीं होती, तो उसके सामने से खाद्यपदार्थ सहसा हटा लेने पर भी उसमें क्रोध उत्पन्न नहीं होता।

यदि शारीरिक तथा अन्तरावयव प्रतिक्रिया ही संवेग का कारण है तो अलग-अलग सवेग की शारीरिक प्रतिक्रिया भी भिन्न-भिन्न रहनी चाहिए। परन्तु प्रायः देखने में आता है कि एक ही शारीरिक प्रतिक्रिया अनेक सवेगों में पायी जाती है, जैसे आँसू ख़ुशी में भी बहते हैं, और दुःख में भी।

इसके अतिरिक्त एक ही संवेग की शारीरिक तथा अन्तरावयव प्रतिक्रिया सदा एक समान नहीं होती। उसमें स्थिति के अनुसार बहुत अन्तर आ जाते हैं। जैसे कि, हम डर में साधारणतया तेज़ भागते हैं, परन्तु कभी-कभी आवश्यकता रहने पर, निश्चल भी बैठ जाते हैं।

शेरिंगटन तथा कैनन के प्रयोग

(जेम्स-लांगे सिद्धांत का खण्डन)

शेरिंगटन ने कुत्ते की सुषुम्ना नाड़ी को इस प्रकार काट दिया कि उसे अन्तरावयव प्रतिक्रिया की संवेदना से शून्य कर दिया। फिर भी कुत्ते के व्यवहार में, उन स्थितियों में, जिनमें वह साधारणतया क्रुद्ध हो जाता था, क्रोध के लक्षण बने ही रहे। शेरिंगटन ने इससे यह अनुमान लगाया कि संवेग में अन्तरावयव प्रतिक्रिया की संवेदना होना आवश्यक नहीं है।

परंतु केवल इसी प्रयोग के आधार पर संवेग के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। क्योंकि हम निश्चित रूप से यह नहीं कह सकते कि कुत्ते के व्यवहार में केवल क्रोध के लक्षण ही थे, या वास्तव में उसे क्रोध का अनुभव हुआ था।

कैनन के परीक्षण द्वारा यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक संवेग में अन्तरावयव प्रतिक्रिया की संवेदना रहती है। इस प्रतिक्रिया से व्यक्ति में संवेग को उत्तेजित करनेवाली स्थिति की आवश्यकता को पूरा करने की क्षमता आ जाती है। भय में अन्तरावयव प्रतिक्रिया से व्यक्ति में स्थिति से तेजी से दूर भागने की क्षमता आ जाती है। क्रोध में वह अपने में ऐसी शक्ति का अनुभव करता है, जिससे वह अवरोधक स्थिति को बदलने में बहुत कुछ समर्थ हो जाता है। जिज्ञासा के उत्तेजित होने पर उसमें अन्वेषण के लिए नई स्फूर्ति आ जाती है। यह सब अन्तरावयव प्रतिक्रिया के ही परिणाम हैं।

यद्यपि कैनन के परीक्षण से संवेग में अन्तरावयव प्रतिक्रिया की संयुक्त संवेदना का महत्व स्पष्ट हो जाता है किन्तु उनके परीक्षण से यह सिद्ध नहीं होता कि प्रत्येक संवेग की अन्तरावयव प्रतिक्रिया की संयुक्त संवेदना अन्य संवेगों से भिन्न रहती है। इसलिए अन्तरावयव प्रतिक्रिया की संवेदना को संवेग नहीं कहा जा सकता।

ऐसे कुछ व्यक्तियों की, जिन्हें संवेग का अनुभव नहीं होता था, शारीरिक परीक्षा से यह पता चला कि उनमें कुछ ग्रंथियाँ ठीक प्रकार काम नहीं करती थीं, जिनके कारण उनकी अन्तरावयव क्रिया में त्रुटि आ गई थी। परन्तु, जब इन व्यक्तियों में उन ग्रंथियों के रासायनिक तत्व सुइयों द्वारा पहुँचाये गये तो उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि उनमें संवेग उत्तेजित होनेवाले हैं। अर्थात्, उचित अन्तरावयव क्रिया के होते ही उन्हें

संवेग-संबन्धी भाव का अनुभव होने लगा। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अन्तरावयव प्रतिक्रिया की संवेदना स्वयं संवेग नहीं, पर संवेग के लिए अनिवार्य अवश्य है।

घोड़े से गिरने के कारण, एक ४० वर्षीया महिला के मेरुदंड में इतनी चोट आई कि वह अन्तरावयव क्रिया की संवेदना से शून्य हो गई। लगभग साल भर वह इसी दशा में जीवित रहीं और इस अवधि में अन्तरावयव क्रिया की संवेदना के अभाव में भी, उन्हें स्थिति के अनुकूल सब प्रकार के संवेगों का अनुभव होता रहा।

जेम्स-लांगे-सिद्धान्त का महत्व

यद्यपि हम अपने अनुभव तथा साधारण निरीक्षण के आधार पर, और परीक्षण की सहायता से इस निर्णय पर पहुँच चुके हैं कि जेम्स-लांगे सिद्धांत सही नहीं है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस सिद्धांत ने हमारा ध्यान संवेग के उस अंग की ओर विशेष रूप से आकर्षित किया है, जिसके अभाव में संवेग में वह उत्तेजना नहीं रह जाती, जो उसकी विशेषता है। यद्यपि शारीरिक तथा अन्तरावयव प्रतिक्रिया की संवेदना संवेग का कारण नहीं है, तो भी इसमें सन्देह नहीं कि वह संवेग के अनुभव का एक अनिवार्य अंश अवश्य है। अन्तरावयव प्रतिक्रिया की संवेदना के अभाव में व्यक्ति में वह क्षमता ही नहीं आती जो उसके व्यवहार को संवेग को उत्तेजित करनेवाली स्थिति के अनुकूल बनाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। जैसे, भय में यही उचित है कि व्यक्ति उस स्थिति से अलग तेज़ी से अलग हो जाय। वह भाग कर ही अपने को भय उत्तेजित करनेवाली स्थिति से दूर ले जा सकता है। अर्थात् प्रेरणा की सफलता के लिए जिस शारीरिक क्रिया की आवश्यकता है, उसकी क्षमता, अन्तरावयव प्रतिक्रिया द्वारा ही व्यक्ति में आती है।

भिन्न-भिन्न संवेगों की प्रेरणा भी अलग-अलग रहती हैं और जिस प्रेरणा को पूरा करने के लिये जैसी शारीरिक क्षमता की आवश्यकता रहती है, वैसी ही अन्तरावयव प्रतिक्रिया उस संवेग का अंग होती है। इसीलिए यह कहा गया है कि संवेग की शारीरिक प्रतिक्रिया व्यक्ति की उन शारीरिक क्रियाओं का अवशेष है, जो किसी समय में अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उसका एकमात्र साधन थीं।

मनःस्थिति

संवेग के अनुभव के उपरान्त व्यक्ति के मन पर उसका जो प्रभाव रह जाता है, उसे ही मनःस्थिति कहते हैं ! जैसे, क्रोध के दूर हो जाने पर भी व्यक्ति का मन उखड़ा-उखड़ा रहता है। उस अवस्था में वह इतना चिड़चिड़ा हो जाता है कि थोड़ी ही उत्तेजना मिलने पर वह फिर से क्रोधित हो जाता है। इसी प्रकार व्यक्ति यदि प्रसन्नता की मनःस्थिति में होता है तो वह ऐसी स्थिति की ओर ध्यान ही नहीं देता जो साधारणतः क्रोध उत्तेजित करने में समर्थ होती है। उस स्थिति की वह यों ही अवहेलना कर देता है। इस प्रकार की मनःस्थिति को संवेग का अनुवर्ती प्रभाव कहा जा सकता है।

परन्तु, कभी-कभी व्यक्ति किसी ऐसी मनःस्थिति का अनुभव भी करता है जिसके कारण से वह अनभिज्ञ होता है। मनःस्थिति के रहने के कारण व्यक्ति में उसके अनुकूल संवेग सहज ही उत्तेजित हो जाते हैं। अर्थात्, वह स्थिति जो साधारणतया संवेग उत्तेजित करने में असमर्थ रहती है, मनःस्थिति के अनुकूल रहने पर उससे संबंधित संवेग सहज ही उत्तेजित कर देती है। ऐसी मनःस्थिति शारीरिक अवस्था का परिणाम होती है। पाचनशक्ति के बिगड़े रहने पर व्यक्ति में चिड़चिड़ापन आ जाता है। वह बात-बात में क्रोधित होने लगता है। इसके विपरीत वे व्यक्ति, जिनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है, सदा प्रसन्नचित्त दिखाई पड़ते

हैं। उनमें क्रोध सहज उत्तेजित नहीं हो पाता। इसलिए मनःस्थिति को केवल संवेग का अनुवर्ती प्रभाव ही नहीं कहा जा सकता, वह कभी-कभी शारीरिक अवस्था का परिणाम होने के कारण संवेग का अग्रगमन भी करता है।

संवेग की अनुवर्ती मनःस्थिति, संवेग का प्रभावमात्र होती है। वह तीव्रता में संवेग से कम, तथा अवधि में उसकी अपेक्षा दीर्घकालीन होती है। जब तक मनःस्थिति बनी रहती है, व्यक्ति में उससे सम्बन्धित संवेग सहज ही उत्तेजित हो जाते हैं। क्रोध जैसी अप्रिय मनःस्थिति को बदलने के लिए व्यक्ति को अपने को किसी ऐसे अन्य कार्य में संलग्न करना चाहिए जिसमें उसे विशेष रुचि हो। ऐसा करने से थोड़े ही समय में मनःस्थिति बदल जाती है।

किन्तु मनःस्थिति जब शारीरिक अवस्था का परिणाम होती है, तो उसे बदलने के लिए विश्राम अथवा उचित चिकित्सा ही आवश्यक होती है। बीमारी के पश्चात् व्यक्ति की मनःस्थिति प्रायः चिड़चिड़ी होती है। इसी प्रकार वह बालक जिनमें पोषण या निद्रा का विशेष अभाव रहता है, चिड़चिड़े हो जाते हैं। उनकी मनःस्थिति शारीरिक आवश्यकताओं के पूरा होने पर स्वयं ही बदल जाती है।

भावना

जिस प्रकार ज्ञानात्मक अनुभव में संवेदना प्राथमिक है, ठीक उसी प्रकार भावात्मक अनुभव में भावना ही मूल है। भावना में जब शारीरिक तथा अन्तरावयव प्रतिक्रिया की संवेदना तथा आवेग का अनुभव भी मिल जाते हैं, तो वह संवेग का रूप धारण कर लेती है। यद्यपि संवेग के लिए शारीरिक प्रतिक्रिया की संवेदना अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु भावना के अभाव में वह केवल संवेदना ही रह जाती है, संवेगात्मक अनुभव में परिवर्तित नहीं हो पाती।

भावात्मक अनुभव में ज्ञान तथा प्रेरणा का सम्पूर्णतया अभाव नहीं होता। भावना की प्रधानता के कारण अनुभव के ज्ञानात्मक तथा इच्छात्मक अंश बहुत कुछ मन्द पड़ जाते हैं। व्यक्ति का अनुभव किसी स्थिति, घटना या वस्तु के प्रति होता है। अनुभव के दुःखात्मक होने पर उसमें स्थिति, घटना या वस्तु को बदलने की प्रेरणा होती है। सुखात्मक अनुभव में उस स्थिति को बनाये रखने की प्रेरणा उसमें अस्फुट रूप से बनी रहती है। ऐसे अनुभव में भावना ही स्फुट तथा प्रधान रहती है। व्यक्ति के लिए अपना अनुभव ही बाह्य स्थिति की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण होता है। उसका विवेक भावोद्रेक से बहुत कुछ आच्छन्न होकर मन्द पड़ जाता है। वह बाह्य स्थिति का सही-सही विवेचन नहीं कर पाता।

व्यक्ति जब किसी शारीरिक या मानसिक क्रिया में लीन हो जाता है तो उसे अपनी भावना का ज्ञान नहीं रहता। किसी स्थिति की नवीनता से जिज्ञासा के उत्तेजित हो जाने पर वह उसके अन्वेषण की क्रिया में मानसिक या शारीरिक, या दोनों ही रूप से इतना लीन हो जाता है कि उसे थकान आदि का अनुभव नहीं होता। रुचिकर कहानी को निरन्तर पढ़ते रहने पर आँखों में थकान की पीड़ा का अभ्यास व्यक्ति को कहानी के समाप्त हो जाने पर ही होता है, उससे पूर्व नहीं। अर्थात् क्रिया के समाप्त होने से पूर्व क्रिया में तल्लीन व्यक्ति को अपनी सुखात्मक या दुःखात्मक भावना का पता तबतक नहीं चलता जबतक कि वह विशेष रूप से तीव्र न हो जाय।

पौराणिक वर्गीकरण के अनुसार भावना को सुखात्मक वा दुःखात्मक दो ही वर्गों में बाँटा जा सकता है। किसी एक भावना में यह दोनों गुण एक साथ नहीं हो सकते। भावना या तो सुखात्मक होती है, या दुःखात्मक। सुखात्मक भावनाओं में जो परस्पर भेद होता है वह केवल उनकी तीव्रता का ही होता है। इसी प्रकार दुःखात्मक भावनाएँ भी तीव्रता में एक दूसरे से भिन्न रहती हैं।

वुंड्ट के कथनानुसार भावना के दो गुण और भी हैं। वुंड्ट ने भावना को उनकी विशेषताओं के अनुसार तीन श्रेणियों में रक्खा है। प्रत्येक श्रेणी में भावना के एक गुण को एक सीमा से दूसरी सीमा तक लिया है। एक श्रेणी की दोनों सीमाओं के गुण एक दूसरे से इतने भिन्न हो जाते हैं कि इनमें परस्पर मेल नहीं हो सकता, जैसे काला और उजला। इसलिए प्रत्येक श्रेणी के दोनों गुणों को रेखा के दोनों सिरों पर रक्खा जा सकता है।

वुंड्ट के अनुसार भावना का वर्गीकरण इस प्रकार है :—

सुख————————दुःख
उत्तेजना————————स्तब्धता
तनाव————————श्लथ

व्यक्ति की किसी भावना में एक समय एक श्रेणी के दोनों गुणों में से केवल एक ही गुण पाया जा सकता है, दोनों साथ-साथ नहीं। उसकी भावना में या तो सुख हो सकता है, या दुःख, किन्तु सुख और दुःख दोनों ही एक समय पर नहीं। इसी प्रकार उत्तेजना और स्तब्धता, तनाव और श्लथता एक साथ एक भावना में नहीं हो सकते। एक श्रेणी के दोनों गुण एक दूसरे से इतने विमुख हैं कि उनका परस्पर संयोग ही नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त किसी भी भावना में तीनों श्रेणियों का कोई भी एक गुण दूसरी श्रेणी के किसी दूसरे गुण से सहज ही मिल जाता है। सुखात्मक भावना में तनाव हो सकता है, या श्लथता। इसके अतिरिक्त तीसरी श्रेणी में से भी कोई एक गुण, उत्तेजना या स्तब्धता भी उसमें हो सकता है। इसी प्रकार भावनाओं की अन्य विशेषताएँ भी परस्पर मिली रहती हैं।

उदाहरणार्थ, जब किसी ऐसे मित्र से हमारी भेंट होने वाली है जिसके सम्बन्ध में हम कुछ समय से चिन्तित होते हैं, तो उस समय भावना केवल सुखात्मक ही नहीं होती, उसमें तनाव और उत्तेजना भी

मिले रहते हैं। किसी कठिन परीक्षा से उत्तीर्ण होने पर सुख में श्लथता और उत्तेजना दोनों ही रहती हैं।

स्वभाव

व्यक्ति की स्थायी मनोवृत्ति ही उसका स्वभाव है। किसी विशेष प्रकार के संवेग के प्रति व्यक्ति के सहज झुकाव को उसका स्वभाव कहते हैं। वह संवेग, जो व्यक्ति में अन्य संवेगों की अपेक्षा सहज ही उत्तेजित हो जाते हैं, उसके स्वभाव को इंगत करते हैं।

कुछ व्यक्ति स्वभाव से ही प्रसन्नचित्त होते हैं, और कुछ उदास-मनोवृत्ति के। पहली मनोवृत्ति के व्यक्ति बहुधा प्रसन्न रहते हैं। प्रसन्नता की भावना उनके व्यवहार की विशेषता रहती है। वह स्थितियाँ जो साधारणतया जनसाधारण के व्यवहार में शिथिलता उत्पन्न करती हैं, प्रसन्नचित्त स्वभाव के व्यक्ति को विशेष रूप से प्रभावित नहीं कर पातीं। इसके विपरीत उदास स्वभाव का व्यक्ति बहुधा खिन्न-मन दिखाई पड़ता है। उसमें दुःख सहज ही उत्तेजित हो जाता है और उसके व्यवहार में बहुधा शिथिलता पाई जाती है।

स्वभाव में वैयक्तिक भिन्नता केवल विशिष्ट प्रकार के संवेग के प्रति सहज झुकाव की नहीं होती, उनके संवेग की तीव्रता में भी परस्पर भेद बहुत रहते हैं। किसी क्रोधी स्वभाव के व्यक्ति में क्रोध का आवेग बहुत तीव्र किन्तु क्षणिक होता है, और किसी में उसकी अपेक्षा संवेग मन्द किन्तु दीर्घकालीन होता है। इसी प्रकार किसी में संवेग के उत्तेजित होने की गति बहुत तीव्र रहती है, और किसी में बहुत मन्द।

यद्यपि यह कहना कठिन है कि व्यक्ति में स्वभाव जन्मजात होता है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि स्वभाव की नींव बाल्यकाल में ही पड़ जाती है। बाल्यकाल में ही स्वभाव बहुत कुछ निश्चित रूप धारण कर लेता है।

प्रौढ़ अवस्था के आ जाने पर, साधारण व्यक्ति के स्वभाव में कुछ विशेष परिवर्तन नहीं आता।

स्वभाव का प्राचीन वर्गीकरण, जो अभीतक मान्य है, इस प्रकार है,

(i) पित्त-वृत्ति, अर्थात् क्रोधी

(ii) कफ-वृत्ति, अर्थात् अलस

(iii) रक्त-वृत्ति, अर्थात् प्रफुल्ल

(iv) वात-वृत्ति, अर्थात् उदास

व्यक्ति का स्वभाव बहुत कुछ उसकी शारीरिक गठन पर निर्भर करता है। निम्नलिखित अंगों की क्रिया उसके स्वभाव को विशेष रूप से प्रभावित करती है,

(i) वह ग्रंथियाँ जिनके रासायनिक पदार्थ व्यक्ति में रक्त-संचार के माध्यम से उसके शरीर की पुष्टि करते हैं। नियमित रूप से होने के कारण ग्रंथियों की क्रिया का प्रभाव व्यक्ति के स्वभाव पर प्रायः एक समान ही बना रहता है, यद्यपि किसी ग्रंथि के अस्वस्थ हो जाने पर उसकी सहज क्रिया में दोष आ जाता है। वह या तो बहुत तीव्र गति से काम करने लगती है, या उसकी गति बहुत मन्द पड़ जाती है, ऐसा होने पर व्यक्ति के सहज स्वभाव में परिवर्तन आ जाते हैं, किन्तु ग्रंथि के इस प्रकार अस्वस्थ हो जाने की संभावना बहुत कम रहती है। सामान्य रूप से उनकी क्रिया में बहुत परिवर्तन नहीं आते।

(ii) पाचन क्रिया, अर्थात् शरीर की वह क्रिया जिसके द्वारा भोजन जीवन के पोषक-तत्वों में परिवर्तित होता है।

पाचन-क्रिया ग्रंथियों की क्रिया की भाँति सदा एक समान नहीं रहती। ग्रंथियों की क्रिया की अपेक्षा, पाचन-क्रिया सहज ही बिगड़ जाती है। इसके बिगड़ जाने पर व्यक्ति प्रसन्नचित्त नहीं रह पाता। वह विषादपूर्ण अथवा चिड़चिड़ा हो जाता है। शरीर के स्वस्थ होते ही उसकी यह अवस्था अपने आप दूर हो जाती है।

इनके अतिरिक्त, कुछ बाह्य पदार्थ भी व्यक्ति के स्वभाव को थोड़े समय के लिए परिवर्तित करने की क्षमता रखते हैं। उत्तेजनावर्द्धक खाद्य-पदार्थों के प्रयोग से शारीरिक क्रिया में परिवर्तन आ जाता है, जिससे व्यक्ति का स्वभाव भी उस समय के लिए बदल जाता है; किन्तु इनका प्रभाव बहुत क्षणिक होता है। इसीलिए इन्हें व्यक्ति के स्वभाव का यथार्थ कारण नहीं माना जा सकता। इसलिए यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति का स्वभाव बहुधा उसकी सहज शारीरिक अवस्था पर ही निर्भर करता है। जिस प्रकार सब व्यक्तियों की शारीरिक गठन एक समान नहीं होती, उसी तरह उनके स्वभाव में भी बैयक्तिक भिन्नता रहती है। चूँकि व्यक्तित्व में संवेगात्मक अनुभव का बहुत गहरा प्रभाव है, इसलिए किसी के व्यक्तित्व को समझने के लिए उसके स्वभाव का अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है।

स्थायी भाव

मनुष्य का प्रत्येक अनुभव किसी वस्तु, घटना या स्थिति से संबंधित रहता है जो अपना प्रभाव स्थायी रूप से उसके मन पर अंकित कर जाता है। जब किसी व्यक्ति को एक स्थिति से संबंधित कई अनुभव हो जाते हैं तो वह एक दूसरे को प्रभावित करते हुए उसमें उस वस्तु या स्थिति के प्रति स्थायी भाव बना देते हैं।

वातावरण अनेक प्रकार की स्थितियों, घटनाओं तथा वस्तुओं से परिपूर्ण है। इनके प्रति व्यक्ति के अनुभव अनेक प्रकार के रहते हैं। कुछ अनुभव तो इतने आवेगपूर्ण होते हैं कि वह एक ही बार में व्यक्ति के मन को बहुत प्रभावित कर देते हैं, जिससे व्यक्ति में उन अनुभवों से संबंधित वस्तुओं के प्रति स्थायी-भाव बन जाते हैं। जैसे कि साधारण स्थिति में खेलता हुआ बालक किसी सहसा भयप्रद शब्द से डर जाय तो उसमें उस स्थिति के प्रति डर का स्थायी भाव बन जाता है। ऐसी दशा में बच्चा उस स्थान या खेल से ही केवल भय नहीं खाता, उसके नाममात्र से भी डरने लगता है।

स्थायीभाव, साधारणतः एक स्थिति से सम्बंधित बहुत से अनुभवों का परिणाम होता है। जैसे, बच्चे का माँ के प्रति स्थायीभाव न तो केवल प्रेम का होता है, और न केवल डर का। वह प्रेम, भय, आत्महीनता तथा कई अन्य मूलप्रवृत्तियों से उत्तेजित अनुभवों के अभाव का एक सम्मिलित रूप रहता है, जिसे प्रायः आदर कहा जाता है।

इसी प्रकार मित्रता का भाव भी व्यक्ति के अनेक अनुभवों का परिणाम होता है। मित्र के प्रति व्यक्ति को केवल स्नेह नहीं होता, स्नेह के साथ

आत्मगौरव तथा आत्महीनता का मिश्रित भाव भी रहता है। मित्र की अनुपस्थिति में व्यक्ति एकाकीपन का अनुभव करता है। अर्थात्, मित्रता के स्थायीभाव में स्नेह के अतिरिक्त सामूहिक, आत्मगौरव तथा दैन्य-मूल-प्रवृत्तियों के प्रभाव भी रहते हैं। अपने खिलौने के प्रति बच्चे का ममताभाव, उसकी सृजन तथा अर्जन प्रवृत्तियों के अनुभव का फल होता है।

कुछ वस्तुएँ या घटनाएँ ऐसी रहती हैं जो व्यक्ति के निकट-परिवेश में होने के कारण बार-बार उसके अनुभव में आती हैं। प्रत्येक अनुभव उसके मन पर अपना प्रभाव छोड़ जाता है, जो बाद में आने वाले सब अनुभवों को व्यक्त या अव्यक्त रूप से प्रभावित करता है। इस प्रकार अनुभवों से सम्बन्धित वस्तुओं, घटनाओं या स्थितियों के प्रति व्यक्ति में स्थायीभाव बन जाते हैं।

मूल प्रवृत्तियों की भाँति स्थायीभाव व्यक्ति के मन में सुषुप्त अवस्था में पड़े रहते हैं और उपयुक्त अवसर पर व्यक्त या अव्यक्त रूप से उसके व्यवहार को प्रभावित करते हैं। अपने स्वरूप में स्थायी-भाव मूलप्रवृत्तियों से मिलते-जुलते हैं, भेद केवल इतना है कि मूलप्रवृत्तियाँ व्यक्ति में सहजरूप से पाई जाती हैं। इसलिए वह व्यक्तियों में एक समान रहती हैं। किन्तु स्थायीभाव व्यक्ति के अनुभव का परिणाम है। इसलिए इनमें वैयक्तिक भिन्नता पाई जाती है।

मनुष्य जैसे-जैसे बड़ा होता है, उसका वातावरण भी विस्तृत होता जाता है; अनुभव भी बढ़ते रहते हैं, जिससे उसमें बहुत से स्थायी भाव बन जाते हैं। यद्यपि स्थायीभाव भिन्न-भिन्न स्थितियों, वस्तुओं या घटनाओं से सम्बन्धित रहते हैं, किन्तु उनसे प्रेरित सब अनुभव व्यक्ति के अपने होने के कारण उसमें आत्मभाव पैदा करते हैं। इससे उसकी विचार-धारा तथा व्यवहार में सारूप्यता आ जाती है। उसकी क्रियाओं तथा विचारों में ऐसी विभिन्नता अवश्य रहती है, जो उसके व्यवहार को स्थिति के अनुकूल बनाती है; किन्तु इस विभिन्नता के रहने पर भी उनमें पर-

रेखाओं की मोटाई स्थायीभावों में विभिन्न अनुभवों की सापेक्षित प्रधानता के अनुसार अंकित है।
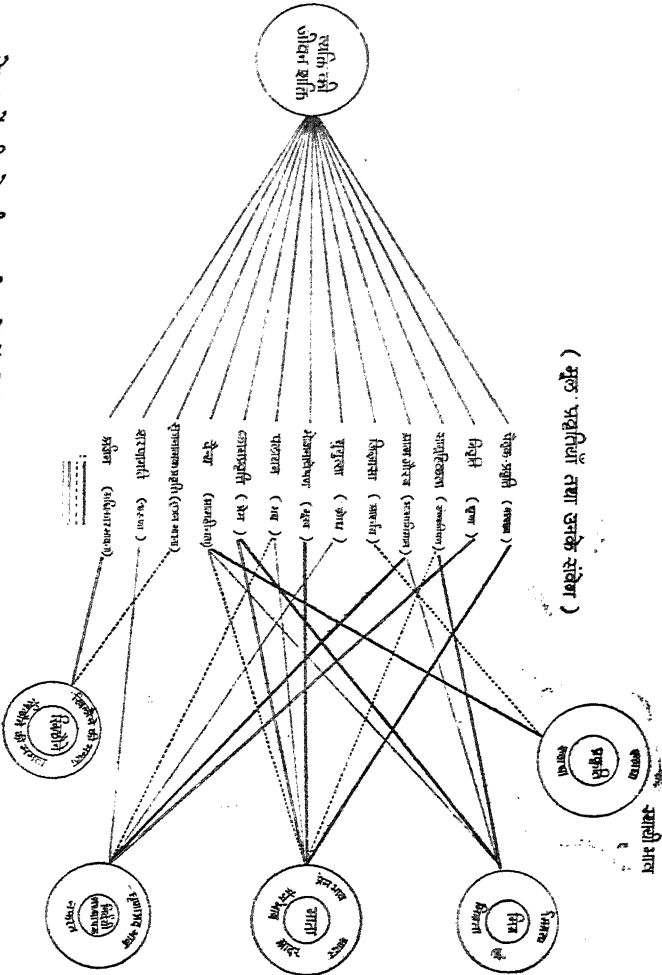
स्पर अनुकूलता पाई जाती है। इसी कारण स्थायी भावों को चरित्र की नींव कहा गया है। वह एक ओर तो व्यक्ति की मूलप्रवृत्तियों को एक लड़ी में पिरो कर उनकी उच्छृङ्खलता को बहुत कुछ मिटा देते हैं, दूसरी ओर स्वयं आत्मभाव के अधीन होकर चरित्र को दृढ़ता प्रदान करते हैं।

अन्तर्द्वन्द्व

व्यक्ति की मूलप्रवृत्तियाँ तथा स्थायीभाव केवल उसके ध्यान को ही वस्तु, स्थिति या घटना की ओर आकर्षित नहीं करते, परन्तु साथ ही उसमें उस स्थिति के प्रति संवेग तथा प्रेरणा भी उत्तेजित करते हैं। घटनाएँ या स्थितियाँ बहुधा ऐसी होती हैं जिससे व्यक्ति की दो या अधिक मनोवृत्तियाँ (मूल या स्थायीभाव) एक ही साथ उत्तेजित हो जाती हैं। यदि विभिन्न मनोवृत्तियों से उत्तेजित प्रेरणाएँ एक दूसरे से विपरीत न हों और उनका लक्ष्य भी बहुत कुछ एक-सा रहे, तो वह एक दूसरे की प्रेरणा पुष्टि करती हैं। ऐसी दशा में व्यक्ति सुगमता से इच्छापूर्ति की क्रिया में लग जाता है। यदि शिक्षा-विधि से बालक की जिज्ञासा, आत्म-सम्मान तथा खेल की प्रवृत्ति को साथ ही साथ उत्तेजना मिलती रहे, तो बालक सहज ही अध्यनन में लग जाता है। उसमें पढ़ने की इच्छा की पुष्टि होती है। ऐसे बालक विद्यालय से भय नहीं खाते। उन्हें पाठशाला से विशेष रुचि हो जाती है।

परन्तु यदि दो या अधिक मनोवृत्तियों की इच्छाएँ जब एक दूसरे से इस प्रकार विपरीत होती हैं कि उनमें परस्पर सम्बन्ध जोड़ा ही नहीं जा सकता तो व्यक्ति अन्तर्द्वन्द्व में फँस जाता है। ऐसी दशा में मनोवृत्तियों के उत्तेजित होने पर भी उनकी प्रेरणा क्रियाशील नहीं हो पाती।

अन्तर्द्वन्द्व में व्यक्ति का मन द्वन्द्व का क्षेत्र होता है। वह अपने से आप ही लड़ता है। कुछ मानसिक प्रवृत्तियाँ उसे एक

लक्ष्य की ओर आकर्षित करती हैं, और कुछ ठीक उससे विपरीत। वह कुछ भी निर्णय नहीं कर पाता। वह यदि एक ओर झुकता है तो उतनी देर में दूसरी प्रवृत्ति उसे अपनी ओर ज़ोर से आकर्षित करती है। ऐसी अवस्था में उसकी क्रिया रुक जाती है, और मानसिक शक्ति क्षीण होने लगती है।

व्यक्ति किसी भी भाँति इस स्थिति से बाहर निकलना चाहता है। अन्तर्द्वन्द्व यदि ऐसी दो प्रेरणाओं में हो, जिनका लक्ष्य एक दूसरे से बहुत पृथक् न हो तो अन्तर्द्वन्द्व को समाप्त करने के लिए व्यक्ति को उन दोनों में एक को चुन लेना चाहिये। अर्थात्, उसे चाहिये कि वह उन दोनों प्रेरणाओं में से किसी एक को स्वीकार कर अपने को उसमें लगा दे। ऐसा करने से वह एक प्रेरणा के साथ इतना हिल-मिल जाता है कि दूसरी प्रेरणा का आकर्षण अपने आप ही कम हो जाता है।

दूसरी विधि यह भी है कि ध्यान को उन दोनों ही विषयों की ओर से हटा कर किसी अन्य क्रिया में विलीन कर दिया जाय। इस बीच वह दोनों प्रेरणाएँ अपने ही आप अवचेतन मन में सुलझती रहती हैं। जब उनमें से एक मन को अपनी ओर अधिक आकर्षित कर लेती है, तो अन्तर्द्वन्द्व का स्वयं ही अन्त हो जाता है।

परन्तु जब परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ अपने लक्ष्य में भी विपरीत रहती हैं और उनका परस्पर संयोग हो ही नहीं सकता तो ऐसी स्थिति में अन्तर्द्वन्द्व गंभीर रूप धारण कर लेता है। कभी-कभी तो अन्तर्द्वन्द्व व्यक्ति के लिये इतना दुःखद हो जाता है कि वह विरोधी प्रेरणाओं को बरबस दबाने के लिये अपने को किसी अन्य कार्य में लगा देता है। यद्यपि उन्हें इस प्रकार बरबस दबाकर वह उन इच्छाओं को विस्मृत कर देता है किन्तु इच्छाएँ अचेतनमन में छिपी पड़ी रहती हैं और चेतनता में प्रगट होने के अवसर की प्रतीक्षा करती रहती हैं। जब चेतनमन के विवेक में थोड़ी-सी मन्दता आती है तो यह इच्छाएँ फिर से चेतना पर काबू पा जाती हैं,

जिससे अन्तर्द्वन्द्व पुनः आरंभ हो जाता है। इच्छा या इच्छाओं को इस प्रकार दबाकर जो मानसिक शान्ति प्राप्त की जाती है, वह शान्ति स्थायी नहीं रह पाती। अन्तर्द्वन्द्व के फिर से आरंभ हो जाने की आशंका सदा ही लगी रहती है।

प्रवृत्तियों के कुचले जाने से मानसिक शक्ति भी बहुत क्षीण हो जाती है जिसके कारण व्यक्ति को सहसा उत्पन्न नयी स्थितियों का सामना करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त उसमें कई प्रकार के विकार भी उत्पन्न हो जाते हैं। मानसिक विश्लेषण-विधि से यह पता चलता है कि अन्तर्द्वन्द्व से जो मानसिक क्षीणता आ जाती है वह मानसिक विकार का एक बहुत बड़ा कारण है।

मानसिक द्वन्द्व सफलतापूर्वक तभी समाप्त होता है जब कि विरोधी इच्छाएँ, बरबस दबाए जाने के स्थान पर इच्छापूर्ति में एक दूसरे को सहयोग दें। इसलिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपनी मनोवृत्तियों के स्वभाव, लक्ष्य, गुण और दोष से भली-भाँति परिचित रहे और अन्तर्द्वन्द्व को इस प्रकार सुलझाने का प्रयत्न करे कि प्रवृत्तियाँ एक दूसरे के विमुख होने के स्थान पर, परस्पर मेल से इच्छापूर्ति के मार्ग पर अग्रसर हो सकें।

प्रत्यक्षीकरण

चिन्तन का सबसे सरल रूप प्रत्यक्षीकरण है। प्रत्यक्षीकरण के लिए उत्तेजक का प्रत्यक्ष होना आवश्यक है। उत्तेजक के संपर्क से ज्ञानेन्द्रियों में प्रतिक्रिया होती है। इस प्रतिक्रिया की सूचना जब ज्ञान-तन्तुओं द्वारा मस्तिष्क को पहुँचती है तो व्यक्ति को संवेदना होती है। संवेदना व्यक्ति का प्राथमिक ज्ञानात्मक अनुभव है। यह निर्विकल्प है। इसमें वस्तु या घटना का बोध नहीं पाया जाता। यह केवल उत्तेजित ज्ञानेन्द्रियों की प्रतिक्रिया का अनुभव है। परन्तु, संवेदना के होते ही व्यक्ति की पूर्वानुभूति की स्मृति अव्यक्त रूप से उत्तेजित हो जाती है, जिससे संवेदना तत्काल ही प्रत्यक्षीकरण में परिणत हो जाती है। पूर्वानुभूति की स्मृति इतनी तीव्र तथा अव्यक्त रूप से उत्तेजित होती है कि व्यक्ति को उसके उत्तेजित होने का आभास भी नहीं होता। प्रत्यक्षीकरण का अनुभव ही व्यक्ति को प्राथमिक लगता है।

यथार्थ में प्रत्यक्षीकरण का अनुभव संवेदना तथा पूर्वानुभूति की स्मृति का एक समन्वय है। भिन्न-भिन्न रुचियों तथा पूर्वानुभूति के कारण, एक ही स्थिति से, व्यक्तियों को अलग-अलग बोध होता है। अर्थात्, उनके प्रत्यक्षीकरण में व्यक्तिगत भेद आ जाते हैं। एक ही उत्तेजक के होने पर भी विभिन्न व्यक्तियों की मानसिक प्रतिक्रिया एक समान नहीं होती। जो ध्वनि एक के लिए सार्थ होती हैं, वही दूसरे के लिए अर्थहीन हो सकती

है, और तीसरे के लिए शंका का कारण बन सकती है। तीतर की आवाज़ कई प्रकार से सुनी जाती है। जैसे—

(i) सुभान तेरी .कुदरत

(ii) राम लक्ष्मण दशरथ

(iii) नोन तेल अदरक

ध्वनि सबके लिए एक-सी रहती है। सुननेवाले अपनी मानसिक अवस्था के अनुसार उसको सुनते और समझते हैं। ध्वनि स्मृति की उत्तेजक हो जाती हैं और व्यक्ति के पूर्वानुभूति के संस्कारों को जाग्रत करती है, जिसके सहयोग से संवेदना तुरन्त ही वस्तु बोध, अर्थात् प्रत्यक्षीकरण में परिणत हो जाती है। प्रत्यक्षीकरण इस प्रकार संवेदना तथा पूर्वानुभूति का समन्वय है।

व्यक्ति में ज्ञानेन्द्रियाँ अनेक हैं और उनके उत्तेजक विशिष्ट हैं। बहुधा एक ही स्थिति अपने विशिष्ट गुणों के कारण व्यक्ति की दो या अधिक ज्ञानेन्द्रियों को एक साथ ही उत्तेजित कर देती है। इससे एक ही विषय के सम्बन्ध में उसे विभिन्न प्रकार की संवेदनाएँ होती हैं। उनके एक साथ होने के कारण उनमें परस्पर सम्बन्ध हो जाता है। तत्पश्चात् उनमें से एक के होने पर दूसरे की स्मृति उत्तेजित हो जाती है। जैसे, गीली ज़मीन पर चलने से उसके रंग और गीलेपन की संवेदना व्यक्ति को एक साथ ही होती है। ऐसे कुछ अनुभवों के पश्चात् पृथ्वी के रंग से ही व्यक्ति को उसके गीलेपन का आभास होने लगता है। इस प्रकार अनुभवों के आधार पर, स्थिति के संकेत से उसका बोध होने लगता है, मानो .क वह सम्पूर्णतया प्रत्यक्ष हो।

प्रत्येक स्थिति में, सामान्यतः बहुत से तत्व होते हैं, किन्तु व्यक्ति को उनसे एक विशिष्ट वस्तु, घटना या स्थिति का बोध होता है। तत्व

एक दूसरे से इस प्रकार मिल जाते हैं कि उनसे साधारणतः सम्पूर्ण स्थिति का ही अनुभव होता है, विशिष्ट तत्वों का नहीं।
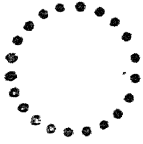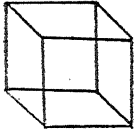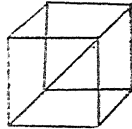
यद्यपि $क_1$ तथा $क_2$ के तत्व भिन्न हैं, किन्तु उनकी व्यवस्था समान होने के कारण, उनसे एक से नमूने का आभास होता है।

चित्र $ख_1$, $ख_2$, $ख_3$ में बिन्दुओं का आकार तथा संख्या समान हैं,

किन्तु उनकी व्याख्या भिन्न-भिन्न होने के कारण उनसे तीन अलग-अलग नमूने बने हैं।

चित्र ग$_1$ में रेखाओं की व्यवस्था इस प्रकार है कि उनसे ठोस वस्तु का आभास होता है। यदि उसी आकार के मध्य वर्ग में एक छोटी-सी रेखा खींच दी जाय (जैसा कि ग$_2$ में दिखाया गया है) तो ठोस वस्तु का आभास मिट जाता है।

सम्पूर्ण स्थिति में जो विशिष्ट गुण आ जाते है वह उसके विभिन्न तत्वों में नहीं पाये जाते। वरदेमर ने गति के प्रत्यक्षीकरण की व्याख्या द्वारा यह सिद्ध किया है कि कोई भी स्थिति अपने विभिन्न तत्वों का केवल योग ही नहीं होती, उसकी विशिष्टता उनके परस्पर सम्बन्ध पर भी बहुत कुछ निर्भर करती है। अर्थात् सम्पूर्ण स्थिति की विशेषता उसके प्रथक् तत्वों में नहीं पाई जातीं। जिस प्रकार तत्वों के एक समूह से विभिन्न स्थितियाँ तैयार की जा सकती हैं उसी प्रकार तत्वों के बदल देने पर भी स्थिति वैसी ही बनी रह सकती है।

स्थिति के विभिन्न तत्वों की व्यवस्था अथवा संगठन में जो नियम सहायक होते हैं, वह प्रत्यक्षीकरण के नियम कहलाते हैं। मुख्य नियम यह हैं :—

(i) समानता।

(ii) समीपता।

(iii) अविच्छिन्नता।
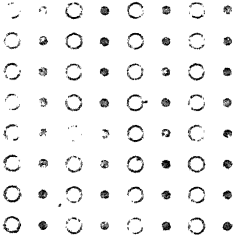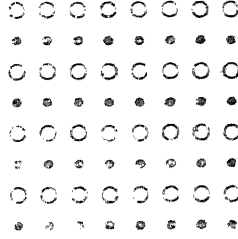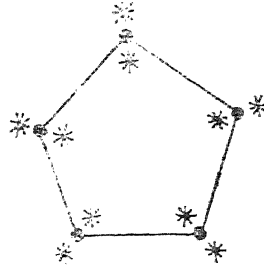
चित्र च—समीपता का नियम

चित्र छ—समानता का नियम

चित्र ज—अविच्छिन्नता का नियम

चित्र च में तीन समूह दिखाई पड़ते हैं। प्रत्येक समूह में दो बिन्दु और उनके मध्य में एक सितारा है। प्रत्येक समूह के बिन्दु अपने निकट के सितारे के साथ और अपनी तरह के, परन्तु दूर पड़े बिन्दुओं से

अलग दिखाई देते हैं। यह चित्र समीपता के नियम को प्रदर्शित करता है।

चित्र छ, में वृत्त और बिन्दु एक दूसरे से समान दूरी पर हैं, किन्तु देखने में वृत्त और बिन्दु अलग-अलग खड़ी रेखाओं में दिखाई देते हैं। इसी प्रकार चित्र $छ_२$ में वह अलग-अलग पड़ी रेखाओं में नज़र आते हैं। यह चित्र समानता के नियम को अंकित करते हैं।

चित्र ज के दोनों भागों में पाँच-पाँच समूह हैं। प्रत्येक समूह के मध्य में बिन्दु तथा उसके दोनों तरफ एक-एक सितारा है। चित्र $ज_१$ में यह पाँच समूह अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं, किन्तु उसके दूसरे भाग में एक अविच्छिन्न रेखा बिन्दुओं के बीच में से जाती है; जिससे बिन्दु एक दूसरे से मिलकर अलग नमूना बनाते हैं। उनके निकट के सितारे, उनके पास, इधर-उधर अलग नज़र आते हैं। अविच्छिन्न रेखा के कारण $ज_१$ का नमूना $ज_२$ के नमूने से बिलकुल अलग रूप ले लेता है। चित्र ज अविच्छिन्नता के नियम को स्पष्ट करता है।

प्रत्यक्षीकरण में प्रत्यक्ष वस्तु अपने में सम्पूर्ण तथा अपनी पृष्ठभूमि से प्रथक् दिखाई पड़ती है; अर्थात्, प्रत्येक प्रत्यक्षीकरण वस्तु तथा उसकी पृष्ठभूमि दोनों का ही ज्ञान रहता है। पृष्ठभूमि के विस्तृत क्षेत्र में प्रत्यक्ष वस्तु उससे प्रथक् तथा अपने में सम्पूर्ण लगती है।

अवयवीवाद सम्प्रदाय के अनुसार अनुभव अथवा व्यवहार को भी स्थिति की भाँति उसके विशिष्ट खण्डों (प्रथक् तत्वों) में विभाजित करने से उनकी विशेषता खो जाती है। चूँकि अनुभव का सार विभिन्न तत्वों के अतिरिक्त उनके परस्पर सम्बन्ध में भी रहता है, इसलिए अनुभव तथा व्यवहार का अध्ययन उनके सम्पूर्ण रूप में ही करना चाहिए, विभिन्न तत्वों द्वारा नहीं।

किसी वस्तु को बार-बार देख लेने के पश्चात् प्रत्यक्षीकरण के लिए

उसका सम्पूर्णतया प्रत्यक्ष रहना आवश्यक नहीं रहता। व्यक्ति उसके संकेतमात्र से उसका अनुभव करने लगता है। व्यक्ति में बुद्धि और स्मृति जितनी तीव्र रहती है, उतनी ही अधिक उसमें सूक्ष्म संकेत से वस्तु के प्रत्यक्षीकरण की क्षमता रहती है। वस्तु के सूक्ष्म संकेत से उसके प्रत्यक्षीकरण का अनुभव पूर्वानुवर्ती प्रत्यक्ष-ज्ञान कहलाता है। जैसे, चिर-परिचित व्यक्ति की झलक से ही हम उसे पहचान जाते हैं। दूर से गाड़ी की आवाज़ सुनते ही, गाड़ी का बोध हो जाता है। प्रौढ़ व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण बहुत कुछ इसी प्रकार के होते हैं।

विपर्यय

कभी-कभी व्यक्ति को प्रत्यक्ष वस्तु को समझने में भ्रान्ति होती है, वह उसे कुछ का कुछ समझ लेता है। जैसे, रस्सी से साँप और खूँटी पर टँगे कपड़े को चोर इत्यादि। व्यक्ति के आगे सहसा रस्सी आ जाय तो उसे जो दृष्टि-संवेदना होती है, उसके अर्थ समझने में वह भूल करता है। अर्थात् संवेदना से जो वस्तु-बोध होता है, वही भ्रमात्मक रहता है। उसकी संवेदना में कुछ दोष नहीं रहता। संवेदना तो व्यक्ति का प्राथमिक ज्ञानात्मक अनुभव है। उसमें वस्तु-बोध होता ही नहीं। वह तो केवल ऐसा अनुभव है जो व्यक्ति को ज्ञानेन्द्रियों तथा ज्ञान-तन्तुओं के उत्तेजन से मस्तिष्क तक पहुँचने से होता है। संवेदना के होते ही व्यक्ति में पूर्व अनुभव की स्मृति अव्यक्त रूप से उत्तेजित हो जाती है। इसी मानसिक क्रिया के सहयोग से संवेदना प्रत्यक्षीकरण में परिणत होती है। परन्तु किसी बाह्य या मानसिक स्थिति के कारण यदि संवेदना से ऐसी मानसिक क्रिया उत्तेजित हो जिससे प्रत्यक्ष स्थिति के बोध में भ्रान्ति उत्पन्न हो जाय तो व्यक्ति का अनुभव प्रत्यक्षीकरण के स्थान पर विपर्यय का होता है।

संक्षेप में प्रत्यक्षीकरण तथा विपर्यय में भेद केवल इतना ही है कि प्रत्यक्षीकरण में वस्तु-बोध ठीक रहता है, और विपर्यय में मानसिक स्थिति तथा परिवेश के कारण उत्तेजक को समझने में भूल होती है ।

विपर्यय के कारण

(i) उत्तेजित मानसिक स्थिति का प्रभाव :—

(क) बरसात में अँधेरे घर में घुसते हुए साँप इत्यादि की आशंका मन में रहती ही है । इसीलिए, ऐसी स्थिति में रास्ते में पड़ी हुई रस्सी या कुछ अन्य ऐसी वस्तु को व्यक्ति साँप समझने की भूल करता है ।

(ख) वस्तु के आकार से हम उसके वज़न का भी अनुमान लगा लेते हैं । बड़ी वस्तु छोटी की अपेक्षा प्रायः भारी ही रहती है । इसलिए जब एक ही वज़न की दो वस्तुओं के आकार में बहुत भेद रहता है, तो बड़े आकार की वस्तु दूसरे की अपेक्षा हल्की लगती है, जैसे एक सेर रूई एक सेर लोहे से हल्की लगती है । एक सेर रूई का फैलाव इतना हो जाता है कि अनजाने में ही व्यक्ति उसे उठाने के लिए अधिक शारीरिक शक्ति का प्रयोग करता है, जिससे वह हल्की लगती है ।

(ग) जब व्यक्ति किसी की प्रतीक्षा में रहता हैं, तो किसी के भी आने की आहट से उसे ऐसा लगता है कि प्रतीक्षित व्यक्ति ही आ गया है ।

(ii) परिवेश का प्रभाव

किसी वस्तु के बोध में उसकी सम्पूर्ण स्थिति का बहुत प्रभाव रहता है । अनेक उत्तेजक का परिवेश कभी-कभी कुछ ऐसा रहता है, कि उसे उसके परिवेश से सहज ही अलग नहीं किया जा सकता, जिसके कारण

व्यक्ति को उसे समझने में भ्रान्ति होती है। इस सम्बन्ध में मुलर लायर विपर्यय बहुत प्रसिद्ध हैं।

मुलर लायर विपर्यय
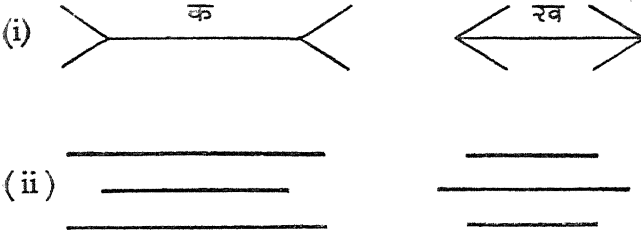
यद्यपि चित्र (i) में मध्य की दोनों रेखाएँ बराबर हैं, किन्तु किनारे के कोणों के कारण उनकी लम्बाई एक सी नहीं दिखायी पड़ती। चूँकि 'क' रेखा के कोण बाहर की ओर हैं, इसीलिये वह 'ख' रेखा से अधिक लम्बी लगती है।

(ii) इसी प्रकार चित्र (ii) में बीच की रेखाएँ समान लम्बाई की हैं, किन्तु उनके ऊपर नीचे की रेखाएँ समान लम्बाई की नहीं हैं। जिससे बीच की समान लम्बाई की रेखाएँ समान नहीं दिखाई पड़तीं।
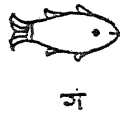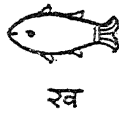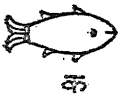
ऊपर दिए चित्र में क ख ग बिन्दु एक दूसरे से बराबर दूरी पर हैं किन्तु प्रत्येक बिन्दु पर जो मछलियाँ बनी हैं उनके आकार के कारण

'ख' 'ग' विन्दु 'क' 'ख' विन्दु की अपेक्षा एक दूसरे के अधिक निकट दिखाई पड़ते हैं।

(iii) ज्ञानेंद्रियों की अपनी विशेषता

ज्ञानेन्द्रियों की अपनी विशेषता के कारण भी कभी-कभी विपर्यय का अनुभव होता है। उदाहरण,
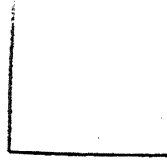
(i) एक रेखा पर उसी के बराबर लम्बाई की दूसरी रेखा समकोण पर खींची जाय तो खड़ी रेखा पड़ी रेखा से लम्बी दिखाई देती है।

(ii) दो पेंसिलों की नोक को समानान्तर रखते हुए, यदि होठों के एक किनारे से दूसरे किनारे तक ले जाया जाय, तो होठों के बीच में उन दोनों की दूरी किनारों की अपेक्षा अधिक लगती है।

(ii) यदि एक उँगली को दूसरी उँगली पर चढ़ा कर किसी पेंसिल या अन्य गोल वस्तु पर उन्हें आहिस्ता-आहिस्ता घुमाया जाय तो एक वस्तु के स्थान पर दो वस्तुओं का अनुभव होता है। यह अरिस्टॉट्ल विपर्यय कहलाता है।

भ्रम

भ्रम में व्यक्ति अपनी उत्तेजित मानसिक स्थिति के कारण वस्तु के अभाव में उसके प्रत्यक्षीकरण का अनुभव करता है। अर्थात् उसे प्रत्यक्षी-

करण का भ्रम होता है । उस अवस्था में उसे ऐसा लगता है कि वह कुछ सुन या देख रहा है, परन्तु वास्तव में उसके अनुभव से सम्बन्धित वस्तुएँ वहाँ नहीं होतीं । उदाहरण,

माँ को अपनी उत्तेजित मानसिक स्थिति के कारण, सोये हुए बच्चे के रोने की आवाज़ का भ्रम होता है ।

या, किसी सुन्दर फूल को देखते ही व्यक्ति को उसकी सुगन्धि का आभास होता है, परन्तु वास्तव में फूल सुगंधि-रहित काग़ज़ का होता है ।

इसी प्रकार अपने किसी अपराधपूर्ण कार्य के कारण जब व्यक्ति को आत्मग्लानि होती है तो उसे अपने परिवेश से तरह-तरह की आकृति और दृश्यों का भ्रम होता है । इस सम्बन्ध में शेक्सपीयर के मैकबेथ का उदाहरण विश्वविश्रुत है ।

चिन्तन और तर्क

चिन्तन

पूर्व अनुभव के आधार पर किसी समस्या को मन-ही-मन सुलझाने के प्रयास, तथा विभिन्न अनुभवों में पारस्परिक सम्बन्ध के ज्ञान को चिन्तन कहते हैं। इसमें व्यक्ति अपने विभिन्न अनुभवों के परस्पर सम्बन्ध को सोचता और समझता है। चिन्तन के लिए प्रत्येक अन्य मानसिक क्रिया की भाँति उत्तेजक का होना आवश्यक है। किसी समस्या का अनुभव ही बहुधा चिन्तन की उत्तेजक स्थिति होती है। समस्या के उपस्थित होते ही व्यक्ति स्थिति को समझने तथा समस्या को हल करने का चिन्तन करता है। वह अपने पूर्वानुभवों को पुनः स्मरण कर उनके विवेचन द्वारा उपस्थित स्थित या समस्या को समझने की चेष्टा करता है। जैसे, किसी वस्तु के खो जाने पर प्रायः व्यक्ति के लिए उसे खोजने की समस्या पैदा हो जाती है। वह यह जानना चाहता है कि उसने वह वस्तु कहाँ और कब रखी है और उसके फिर से मिल जाने की कितनी सम्भावना हो सकती है—इत्यादि। ऐसी स्थित में वह उस वस्तु से सम्बन्धित उन पूर्व अनुभवों को पुनः स्मरण करता है, जिनसे उसे उस वस्तु को खोजने में सहायता मिल सके। पुनः स्मरण किये हुए विचारों की विवेचना से वह उस समस्या को सुलझाने की चेष्टा करता है। इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि चिन्तन सरल मानसिक क्रिया नहीं

है। अर्थात् वह निम्नलिखित मानसिक क्रियाओं का सम्बन्ध है :—

(i) समस्या का अनुभव

(ii) समस्या से सम्बन्धित पूर्वानुभावों का पुनः स्मरण

(iii) उनकी विवेचना, तथा

(iv) समस्या का हल

बालक के चिन्तन में शारीरिक क्रिया प्रधान रहती है। वह विचारों की विवेचना के स्थान पर प्रत्यक्ष स्थिति की विवेचना करता है। इधर-उधर भाग दौड़कर उन सब स्थानों पर उस वस्तु को देखता और खोजता है, जहाँ वह प्रायः रखी जाती थीं। वह भाग-दौड़ कर यह निर्णय कर लेता है कि कहाँ-कहाँ वह वस्तु नहीं है, और इस प्रकार अन्त में वह वस्तु के स्थान पर पहुँच जाता है।

किन्तु प्रौढ़ व्यक्ति इधर-उधर भागने के स्थान पर विचारों के आधार पर इसी प्रकार के निर्णय पर पहुँचने की चेष्टा करते हैं। तीव्र-बुद्धि तथा पूर्व अनुभवों की अपेक्षाकृत अधिकता के कारण वह स्थितियों के प्रत्यक्ष अनुभव के स्थान पर उनके संकेत या विचारमात्र से ही उनकी विवेचना कर लेते हैं।

प्रत्यक्षीकरण, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है, चिन्तन का सबसे सरल रूप है। प्रत्यक्षीकरण में स्थिति प्रत्यक्ष रहती है। उसके संवेदन से पूर्वानुभूति के संस्कार अपने ही आप उत्तेजित हो जाते हैं, और व्यक्ति को वस्तुबोध होता है।

निम्न-कोटि के जीवों का चिन्तन प्रत्यक्षात्मक ही रहता है। छोटे बालकों का चिन्तन भी बहुधा इसी प्रकार का होता है, किन्तु मनुष्य में मानसिक तीव्रता के कारण वस्तु के संकेतमात्र से ही उनके चिन्तन की क्षमता है। मनुष्य का चिन्तन बहुधा प्रतीकात्मक होता है। भाषा का विकास इसी प्रकार के चिन्तन का परिणाम है।

भाषा का विकास और प्रत्यय

वस्तु के संकेतमात्र से व्यक्ति में जो उसके अर्थ, अर्थात् वस्तु के तथ्य को समझने की क्षमता है, उसी के आधार पर भाषा का विकास हुआ है। स्वयं शब्द में वस्तु या क्रिया के गुण नहीं पाये जाते, उनका संकेत ही रहता है। जब किसी वस्तु या क्रिया के साथ कुछ उच्चारण भी किया जाता है, तो कुछ अनुभव के पश्चात् उस उच्चारण को सुनते ही व्यक्ति को उस वस्तु या क्रिया का बोध हो जाता है।

बालकों के अनुभव उन वस्तु या क्रिया के रहते हैं, जो साधारणतया उनके वातावरण में पाई जाती हैं, या जिनके द्वारा बालकों की आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। ऐसी वस्तुओं या क्रियाओं के सम्बन्ध में जिन शब्दों का उच्चारण होता है, वही उनके संकेत बन जाते हैं। इसीलिए भिन्न-भिन्न जाति के बच्चों की भाषा स्वाभाविक रूप से अलग-अलग रहती है। आरंभ में बालकों की भाषा में केवल संज्ञा और क्रिया ही रहती है, पूरे वाक्य का गठन नहीं होता।

जब बालक के अनुभव का क्षेत्र बढ़ जाता है तो वह एक ही शब्द से सम्बोधित कई वस्तुएँ देखता है, जो एक दूसरे से आकार-प्रकार में बहुत भिन्न रहते हुए भी किसी गुण-विशेष में समानता रखती हैं। शब्द इन विभिन्न वस्तुओं के परस्पर सम्बन्ध का संकेत हो जाता है। अर्थात्, वह किसी वस्तुविशेष का संकेत न रहकर उस जाति की सब वस्तुओं का संकेत बन जाता है। इस प्रकार भाषा की सहायता से वस्तुओं का वर्गीकरण सुगम हो जाता है।

चूँकि भाषा अभिव्यक्ति का वृत्यात्मक रूप है, इसलिए व्यक्ति उसके प्रयोग से घटना या अनुभव के गुण को उससे अलग चिन्तन करने में समर्थ हो जाता है। अर्थात् शब्दों के आधार से व्यक्ति उन गुणों का भी

चिन्तन करने लगता है, जिन्हें वह वस्तुओं से पृथक् नहीं देख सकता—जैसे सुन्दरता, ईमानदारी, लालिमा आदि।

अमूर्त प्रत्यय भाषा के आधार के बिना असंभव है। जो बालक जन्म से ही बहरे रहते हैं, वे वस्तु से अलग किसी गुण का चिन्तन नहीं कर सकते। उनकी भाषा इंगितमात्र रहती है, अर्थात् उनकी भाषा में घटना, वस्तु या स्थिति का संकेत चित्र ही पाया जाता है। उस वस्तु का उनके चिन्तन में कुछ अस्तित्व नहीं होता, जिसे वह इन्द्रियों द्वारा अनुभव नहीं कर सकते। वे सुन्दर वस्तु का अनुभव करते हैं, इंगित द्वारा उसका वर्णन भी करते हैं, और उससे जो सुख होता है, उसे मुद्राओं द्वारा प्रगट भी करते हैं। परन्तु वृत्यात्मक भाषा के अभाव में सुन्दरता या अन्य किसी भी अमूर्त प्रत्यय का चिन्तन करना उनकी सामर्थ्य के बाहर है।

भाषा और चिन्तन

चिन्तन प्रायः भाषा के माध्यम से किया जाता है। चिन्तन में भाषा का प्रयोग बहुतायत से होता है। चिन्तन में लीन अकेले व्यक्ति के होठ हिलते तथा चेहरे की मुद्रा को बदलते बहुत लोगों ने देखा होगा। अतः निरीक्षण से यही पाया जाता है कि चिन्तन में प्रायः शब्दों का प्रयोग होता है। बालक तथा मन्द बुद्धि के व्यक्ति कुछ सोचते हुए शब्दों का उच्चारण भी करते जाते हैं। इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति चिन्तन में बहुत लीन हो जाता है और उसे आस-पास की सुध नहीं रहती, तो वह भी बालकों की भाँति विचारों का उच्चारण करता जाता है। परन्तु, साधारणतया, व्यक्ति चिन्तन में भाषा का प्रयोग मन ही मन करता है; और वह भी इतनी तीव्र गति से कि शब्द बहुत अधूरे और अस्पष्ट रहते हैं।

कुछ मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तन को मौनवाणी कहा है। व्यवहारवाद का मत है कि चिन्तन का वाणी के अतिरिक्त अपना कुछ अस्तित्व ही नहीं

है। उनका कहना है कि वाचिक अंगों की क्रिया को जान लेने से व्यक्ति की विचारधारा का सही-सही अनुमान लगाया जा सकता है, परन्तु यह अनुमान अभी तक लगाया नहीं जा सका है। इस समय तो केवल इतना ही कहा सकता है कि व्यक्ति के चिन्तन करते समय, उसके वाचिक अवयव में कुछ क्रिया अवश्य होती है। परन्तु केवल इसके आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि वाणी और चिन्तन एक है। बहुधा व्यक्ति कहता कुछ है, जब कि वह सोचता कुछ और ही है; इसी प्रकार वह पढ़ता कुछ जाता है पर उसके विचार कहीं और भटकते रहते हैं। प्रायः यह भी होता है कि विचारों की अभिव्यक्ति के लिये उपयुक्त शब्दों की खोज करनी पड़ती है।

इसमें सन्देह नहीं कि भाषा और चिन्तन में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। कुछ पढ़ते समय जब व्यक्ति को पढ़ने वाले विषय का अर्थ स्पष्ट नहीं होता तो वह विषय को वाचिक रूप दे देता है; अर्थात् वह शब्दों का उच्चारण करने लगता है, जिससे उसे विषय का अर्थ स्पष्ट होने लगता है। इसी प्रकार किसी समस्या में उलझ जाने पर विचारों को सुलझाने के लिये शब्दों का वाचक रूप से प्रयोग किया जाता है।

इससे यह स्पष्ट है कि भाषा चिन्तन की अभिव्यक्त का माध्यम ही नहीं है, वह चिन्तन में सहायक भी रहती है।

यद्यपि निम्नकोटि का चिन्तन भाषा के बिना सम्भव है, किन्तु उच्च चिन्तन के लिए भाषा का माध्यम अनिवार्य है।

तर्क

तर्क, वह चिन्तन है, जिसकी सहायता से व्यक्ति विभिन्न अनुभवों के पारस्परिक सम्बन्ध का विवेचन करता है।

उदाहरणार्थ, जब दो व्यक्ति किसी तीसरे व्यक्ति से एक ही गुण में

मिलते हैं, तो तर्क द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है, कि उन दोनों में भी उस गुण की समानता पाई जाती है।

उदाहरण,

क की नाक ख से मिलती है, और
ख की नाक ग से मिलती है
इसलिए क की नाक ग से मिलती है।

परन्तु, यदि वह दोनों, तीसरे व्यक्ति से केवल अलग-अलग गुण में ही मिलते है, तो विवेचना द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि वह आपस में एक दूसरे से नहीं मिलते।

क की केवल नाक ख से मिलती है।
ग की केवल आँखें ख से मिलती हैं।
इसलिए क और ग आपस में नहीं मिलते।

तर्क दो प्रकार के होते हैं :—

(क) अभ्युपगम
(ख) अनुगम

अभ्युपगम में व्यापक से व्याप्य के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जाता है।

अनुगम में अनेक उदाहरणों के आधार पर सामान्य नियम का अनुमान लगाया जाता है।

अभ्युपगम तर्क

जो विशेषता किसी वर्ग में पाई जाती है, उसका अनुमान उस वर्ग के किसी भी प्राणी या पदार्थ के सम्बन्ध में लगाया जाता है। अर्थात्, जब हमें किसी वर्ग के सामान्य नियम का ज्ञान रहता है और साथ ही यह भी बोध रहता है, कि अमुक प्राणी या पदार्थ उसी वर्ग का एक अंग है, तो हम उस सामान्य नियम को उस वस्तु के सम्बन्ध में भी सत्य मान लेते हैं।

उदाहरण :—

सब वस्तुएँ नाशवान् हैं।

वृक्ष वस्तु हैं।

इसलिए, वृक्ष नाशवान् हैं।

संक्षेप में, किसी अपरिचित वस्तु के वर्गीकरण के ज्ञान से, हम तर्क द्वारा उस वस्तु के स्वाभाविक गुण का अनुमान सहज ही लगा सकते हैं।

अनुगम तर्क

अनुगम तर्क में अनेक उदाहरणों के आधार पर सामान्य नियम का अनुमान लगाया जाता है। जब किसी वर्ग के बहुत से अंगों का अनुभव एक सा ही रहता है, और उस विषय के सम्बन्ध में उससे विरोधी अनुभव एक भी नहीं होता, तो हम अपने अनुभव को उस विषय का सामान्य नियम मान लेते हैं।

उदाहरण :—

शरीर का कोई भाग जब आग के स्पर्श में आता है तो जलने की पीड़ा होती है।

इस अनुभव के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि जलने से पीड़ा होती है। इस सामान्य नियम का आधार व्यक्ति का अविरोधात्मक अनुभव ही है।

किसी सामान्य नियम के बना लेने पर, उससे विपरीत यदि एक भी अनुभव होता है तो सामान्य नियम का खण्डन हो जाता है। सामान्य नियम की स्थापना में जितने अधिक विरोधात्मक उदाहरण रहते हैं, उतना ही उसके सत्य होने की सम्भावना होती है।

इस प्रकार के तर्क द्वारा हमारे विभिन्न अनुभवों में पारस्परिक संबंध स्थापित हो जाता है, जिसे हम सामान्य नियम के रूप में प्रयोग करते हैं। फलस्वरूप उस विषय पर चिन्तन करते समय हमें अलग-अलग अनुभवों को स्मरण नहीं करना पड़ता। इससे हमें चिन्तन में बहुत सुविधा मिलती है।

कल्पना

पूर्व अनुभवों की स्मृति को नये ढंग से रचने को कल्पना कहते हैं। कल्पना की प्रेरणा बहुधा व्यक्ति की अतृप्त इच्छाएँ ही होती हैं, जो ज्ञात या अज्ञात रूप से उसके पूर्व अनुभवों की स्मृति को उत्तेजित करती रहती हैं। व्यक्ति इन्हें नये-नये ढंग से रचता है और इस रचनात्मक क्रिया के द्वारा अपनी इच्छाओं की पूर्ति करता है।

रचनात्मक क्रिया ही कल्पना की विशेषता है। जो व्यक्ति अपने पूर्व अनुभवों को केवल ज्यों-का-त्यों पुनः स्मरण करने की क्षमता रखता है, उसमें स्मृति तो निःसन्देह है, परन्तु कल्पना नहीं। और, जो पुनः स्मरण को केवल वर्तमान समस्या के हल करने में ही प्रयोग करता है, वह विचारशील तो अवश्य है, परन्तु कल्पनाशील नहीं। कल्पना के लिए पूर्व-अनुभव की स्मृति ही केवल पर्याप्त नहीं होती, उसे फिर से नये रूप में रचना आवश्यक है।

इसमें सन्देह नहीं कि रचनात्मक क्रिया ही कल्पना की विशेषता है, परन्तु इसका आधार व्यक्ति के पूर्व अनुभव ही हैं, जिन्हें वह नये रूप में अभिव्यक्ति देता है। वह ऐसी किसी भी वस्तु की कल्पना नहीं कर सकता, जिसके सब अङ्ग बिलकुल ही नये हों, अर्थात् जिनके सम्बन्ध में उसे कुछ भी पूर्व अनुभव न हो। ईश्वर की कल्पना में हम ईश्वर को केवल उन्हीं गुणों का संयोजन मानते हैं जो हमें मनुष्य-जाति या प्रकृति में अत्यन्त प्रिय और सुन्दर लगते हैं। इसी प्रकार किसी नये रंग की कल्पना में केवल नया मिश्रण ही प्रत्यक्ष होता है, मिश्रण के मूल रंग

नये नहीं होते। अर्थात् व्यक्ति के लिए यह सर्वथा असंभव है कि वह किसी ऐसी वस्तु की कल्पना कर सके जिसके संयोजक तत्वों के विषय में वह बिलकुल अनभिज्ञ हो। यही कारण है कि व्यक्ति के अनुभव जितने सीमित रहते हैं, उतनी ही उसकी कल्पना भी सीमित रहती है।

रुचियों में व्यक्तिगत भेद होने के कारण, एक ही वातावरण में रहते हुए व्यक्तियों के ध्यान भिन्न-भिन्न प्रकार की घटनाओं या स्थितियों की ओर आकर्षित होते हैं, जिसके कारण उनके अनुभवों में बहुत व्यक्तिगत भेद आ जाते हैं। इसलिए व्यक्तित्व के अनुमान लगाने के लिये कल्पना की परीक्षा एक उत्तम साधन है। व्यक्ति जिस परिवेश में पलता और बढ़ता है, उसका प्रभाव उसकी कल्पना पर गहरा रहता है। इसी कारण एक ही युग की रचनाओं में व्यक्तिगत भेद रहते हुए भी, उनमें बहुत समानता पाई जाती है। इसी आधार पर रचनाओं की परीक्षा द्वारा या साहित्य के अध्ययन से, हम केवल रचनाकार की रुचियों का ही अनुमान नहीं लगा सकते, उसके साथ-ही-साथ उसके युग का भी अनुमान लगाया जा सकता है।

यद्यपि व्यक्ति के अनुभव ही उसकी कल्पना के आधार हैं, परन्तु उन्हें पुनः स्मरण करने के लिए, तथा फिर से नये रूप में रचने के लिए, प्रेरणा का होना आवश्यक है। फ्रॉयड का मत है कि व्यक्ति की अतृप्त कामप्रवृत्ति ही उसकी कल्पना की प्रेरणा है। कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों ने कामप्रवृत्ति के अतिरिक्त अन्य प्रकार की अतृप्त इच्छाओं को भी कल्पना की प्रेरणा माना है। इसमें सन्देह नहीं कि बहुधा अतृप्त इच्छाएँ ही कल्पना की प्रेरणा रहती हैं, परन्तु सृजनात्मक मूलप्रवृत्ति भी कल्पना को उत्तेजित करती है। काल्पनिक खेलों में बच्चों की अतृप्त इच्छाओं की प्रेरणा के अतिरिक्त, सृजनात्मक मूलप्रवृत्तियों का भी बाहुल्य रहता है। आविष्कार जैसी सृजनात्मक कल्पना को अतृप्त इच्छाओं की तृप्ति का साधन नहीं कहा जा सकता।

कल्पना तीन प्रकार की होती हैं

१. मनोरञ्जनात्मक

२. सृजनात्मक

४. ग्रहणात्मक

मनोरञ्जनात्मक कल्पना

मनोरञ्जनात्मक कल्पना से बहुधा व्यक्ति उन इच्छाओं की पूर्ति करता है, जिन्हें वह सामाजिक नियमों या परिस्थिति के कारण साधारण-तया तृप्त नहीं कर सकता। अतृप्त इच्छाएँ विभिन्न प्रकार की रहती हैं। इसीलिए मनोरञ्जनात्मक कल्पना का क्षेत्र भी बहुत व्यापक है। इसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के किस्से, कहानियाँ, दिवास्वप्न तथा अन्य स्वप्न—सब ही सम्मिलित रहते हैं।

मनोरञ्जनात्मक कल्पना के माध्यम से व्यक्ति को सुख और संतोष होता है। दिवास्वप्न में तो व्यक्ति स्वयं ही अपनी कल्पित रचना का नायक रहता है। यह नायक या तो सुखी और सम्पन्न होता है, अथवा अत्यन्त दुखी और विपन्न। पहली दशा में तो मनोरञ्जनात्मक कल्पना की प्रेरणा बहुत स्पष्ट रहती है। शेख़चिल्ली के क़िस्से कहानियों में अतृप्त इच्छाओं की ही अभिव्यक्ति होती है। निर्धन शेख़चिल्ली की कल्पना में धन और मान का बाहुल्य पाया जाता है और अविवाहित युवक की कल्पना में परियाँ नाचा करती हैं।

दूसरे प्रकार के दिवास्वप्न या कल्पना में कल्पक अपने को इतने दुःख और विपन्नता में घेर लेता है, कि उसकी कल्पना को इच्छापूर्ति का साधन मानना कठिन हो जाता है। वास्तव में, इस दुःख और विपन्नता के पीछे उसकी महानता की कल्पना छिपी रहती है। दूसरों की सहानु भूति की कल्पना मात्र से उसे सुख और संतोष होता है। सत्य-हरिश्चन्द्र कहानी पढ़कर कौन नहीं रोता। फिर भी इसे बार-बार पढ़ा जाता है।

कारण स्पष्ट है। सत्य-हरिश्चन्द्र के दुःख-दर्द से उनकी महानता का अनुमान लगता है। उनके दुःख और दरिद्रता का कारण प्रकृति का अन्यायपूर्ण कोप था। इसी प्रकार समाज के नियमों तथा परिस्थिति से पीड़ित हरिश्चन्द्र की कथा के पाठक सत्यहरिश्चन्द्र के किस्से में अपने को नायक के रूप में स्थापित कर अपनी महानता का अनुभव करते हैं, और सुखी और सन्तुष्ट होते हैं।

यदि किसी किस्से या कहानी के पात्र, समाज के सहज जीवन का प्रतिनिधित्व नहीं करते, तो वह कहानी भी नीरस हो जाती है और बहुधा पढ़ी नहीं जाती। कहानी के बहुत से पात्रों में व्यक्ति अपनी-अपनी परिस्थिति के अनुसार अपने को भिन्न-भिन्न पात्रों में स्थापित कर लेते हैं। किसी प्रेम की कहानी में, युवक तो अपने को विरही पात्र के रूप में स्थापित कर विरह के आँसू बहाता है, पर पिता उस कहानी को पढ़ते हुए संरक्षक के रूप में युवक की नादानी पर रोष प्रगट करता है।

सपनों में अचेतनमन की क्रिया के कारण इच्छा इतनी स्पष्ट नहीं रहती, परन्तु विश्लेषण द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि सपनों में बहुधा अतृप्त इच्छाओं की अभिव्यक्ति होती है।

ग्रहणात्मक कल्पना

ग्रहणात्मक कल्पना में वह स्वच्छंदता नहीं रहती जो मनोरञ्जनात्मक कल्पना में मिलती है। मनोरञ्जनात्मक कल्पना में रचना कल्पक की अपनी रहती है, परन्तु ग्रहणात्मक कल्पना में व्यक्ति दूसरे के विचारों को ग्रहण करता है। दूसरे के विचारों को ग्रहण करने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति उन विचारों के संयोजक-अंग से परिचित हो। इसीलिए बच्चों के समक्ष कोई विषय स्पष्ट करने में विचार को इस प्रकार रखना चाहिये कि वह उनके साधारण पूर्व-अनुभव का केवल नया संयोजन ही हो। बच्चे रेत में अक्सर घर बनाते रहते हैं और रूई की मुलायमियत तथा बर्फ की

ठण्ढक से भी परिचित रहते हैं। इन तीनों के संयोजन से एस्किमो के घर की कल्पना बड़ी सुगम हो जाती है। परन्तु यदि इस विचार को इस ढंग से रखा जाय कि उसके संयोजक अंग बालक के अनुभव से बाहर के रहें तो वह उसकी कल्पना नहीं कर सकता। अर्थात् उस विचार को ग्रहण नहीं कर सकता।

सृजनात्मक कल्पना

सृजनात्मक कल्पना में केवल अतृप्त इच्छाओं की अभिव्यक्ति ही नहीं होती, उसमें सृजनात्मक मूलप्रवृत्ति का भी प्रभाव रहता है। ऐसी कल्पना सर्वदा उद्देश्यमूलक होती है। व्यक्ति जब कुछ लिखना चाहता है तो वह उस विषय के सम्बन्ध में एक संक्षिप्त रूपरेखा अपने मन में बना लेता है। तब वह अपने विभिन्न अनुभव में से उन घटनाओं और स्थितियों को स्मरण करता है, जो उस विषय से सम्बन्ध रखती हैं और कथानक के अनुसार रचना में उनका समावेश व्यक्ति की सृजनात्मक कल्पना में भी नवीनता केवल संयोजन की होती है, संयोजक अंशों की नहीं।

सृजनात्मक कल्पना में रचना कल्पक की अपनी रहती है, वह अपने अनुभव तथा कल्पना की क्षमता के अनुसार कहानी, कला या आविष्कार की इच्छानुसार रचना करता है। किसी रचना से हमें रचनाकार के अनुभवों का ही परिचय नहीं मिलता, उनके साथ ही रचनाकार के मन पर उनका प्रभाव भी स्पष्ट हो जाता है। संक्षेप में सृजनात्मक कल्पना की परीक्षा से हमें कल्पक के व्यक्तित्व का अनुमान लग जाता है।

मनोविज्ञान में परिगणन का प्रयोग

वैज्ञानिक अध्ययन में प्रत्येक मत और सिद्धांत के सत्य की परख करना आवश्यक होता है। उनकी सत्यता को जाँचने में, तथा उनके महत्व को अनुमापित रूप देने में परिगणन विधियों का प्रयोग किया जाता है। इसलिये मनोविज्ञान में परिगणन का प्रयोग प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

समान घटनाओं का निरीक्षण बहुधा सामान्य नियम का निर्देश करता है, किन्तु किसी सामान्य नियम को स्थिर करने के पूर्व उससे संबंधित विभिन्न घटनाओं को एकत्रित करना, तथा उनके परस्पर सम्बन्ध की सही-सही जाँच करना आवश्यक होता है। इन उदाहरणों को एकत्रित करने, तथा उनके महत्व की ठीक-ठीक जाँच करने में परिगणन विधियों का प्रयोग किया जाता है। परिगणन विधियों के प्रयोग से हम अपने कथन को अनु-मापित रूप दे देते हैं, जिससे उनका महत्व नाप तौल के रूप में स्पष्ट हो जाता है।

मनोवैज्ञानिक अध्ययन में व्यवहार के सामान्य नियमों के साथ वैय-क्तिक भिन्नता का भी महत्वपूर्ण स्थान है। हम केवल यह ही नहीं जानना चाहते कि व्यक्ति की सहज रुचियाँ कौन-कौन सी हैं, किन्तु साथ ही यह भी जानना चाहते हैं कि साधारणतः वह कितनी तीव्रता में पाई जाती हैं, अथवा अमुक व्यक्ति में उनकी तुलनात्मक तीव्रता कैसी है। तुलनात्मक अध्ययन से ही वैयक्तिक भिन्नता का अनुमान लगाया जाता है। उन्हें अनुमापित रूप से जाँचने के लिये, परिगणन विधियों का प्रयोग आवश्यक होता है। अर्थात्, परिगणन विधियों के प्रयोग से ही वैयक्तिक भिन्नता को नापा तोला जा सकता है।

तुलनात्मक अध्ययन के लिये मानदण्ड का स्थिर करना अनिवार्य है। साधारण परीक्षा में भी, बालकों को सफल या असफल ठहराने के लिये मानदण्ड नियुक्त किये जाते हैं। वैज्ञानिक अध्ययन में मानदण्ड

मनमाने ढंग से या केवल साधारण निरीक्षण के आधार पर स्थिर नहीं किये जा सकते। उनमें त्रुटि की बहुत संभावना रहती है। यथासंभव सही मानदण्ड स्थिर करने के लिये निम्नलिखित परिगणन विधियों का प्रयोग किया जाता है :—

(i) औसत (i) माध्यिक (iii) रीति

औसत

किसी परीक्षा में प्राप्त वैयक्तिक अंकों के जोड़ को परीक्षित व्यक्तियों की संख्या से भाग देने पर जो फल निकलता है वह औसत कहलाता है।

परीक्षित व्यक्ति	प्राप्त अंक
क	१७
ख	९
ग	२३
घ	११
च	१५
छ	२७
ज	१३
झ	१५
ट	३०
ठ	१५
ड	१२
ढ	१६
त	२९
थ	१८
द	२०
जोड़ = १५	२७०
औसत = २७० ÷ १५	= १८

औसत = १८

औसत सामान्य नियम अथवा साधारण योग्यता को इंगित करती है। परीक्षा में जिन व्यक्तियों के प्राप्त अंक औसत के निकट पाये जाते हैं वह उस विषय में साधारण होते हैं। व्यक्ति का स्थान औसत से जितना अधिक ऊपर या नीचे पाया जाता है, उतना ही वह तीव्र या मन्द होता है। अर्थात्, औसत से कम अंक मन्दता को, तथा अधिक अंक तीव्रता को इंगित करते हैं।

क्रिया कुशलता अथवा मानसिक तीव्रता की अनुमापित जाँच समय या त्रुटियों के आधार पर भी की जाती है। किसी क्रियाविशेष में व्यक्ति औरों की अपेक्षा कितना समय लेता है, या कितनी त्रुटियाँ करता है, औसत से उनकी तुलना करने करने पर उसकी योग्ता की अनुमापित रूप से जाँच हो जाती है। इस पुस्तक में दिये 'दर्पण के प्रयोग' की सीखने की सामूहिक वक्र रेखाएँ समय तथा त्रुटियों के औसतफल के आधार पर अंकित हैं। इनसे उस समूह के सीखने का साधारण गति का ज्ञान होता है। उसी चित्ररेखा में अंकित वैयक्तिक वक्र रेखा से विशिष्ट व्यक्ति के सीखने की गति तथा उस समूह से उसकी वैयक्तिक भिन्नता का अनुमान होता है। तारवर्की के छात्र की सीखने की वक्र रेखाएँ प्राप्त-अंकों के आधार पर अंकित हैं।

औसत निकालने में निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिये :—

(i) परीक्षित व्यक्तियों की संख्या बहुत कम न हो। संख्या कम रहने पर थोड़े से व्यक्तियों की विशेष भिन्नता से औसत में महत्वपूर्ण परिवर्तन आता है, जिससे सही मानदण्ड स्थिर नहीं हो पाता।

(ii) जिस समूह के लिये मानदण्ड स्थिर किया जाता है परीक्षित व्यक्ति उस समूह के सही प्रतिरूप होने चाहिये। परीक्षा के लिये उस समूह से विशिष्ट योग्यता या गुण के व्यक्तियों के चुने जाने से उनकी औसत उस समूह की साधारण योग्यता को प्रदर्शित नहीं करती। औसत

जैसे मानदण्ड को स्थिर करने के लिये परीक्षित व्यक्तियों का चुनाव बिना किसी भेद-भाव के होना चाहिये।

माध्यिक

कम संख्या के परीक्षित व्यक्तियों में विशेष असाधारण योग्यता या गुण के व्यक्तियों के आ जाने के कारण, औसत उनका सही मानदण्ड नहीं बन पाता। ऐसी स्थिति में माध्यिक को मानदण्ड ठहराना उपयोगी सिद्ध होता है।

इसके अतिरिक्त, परीक्षा का समय नियुक्त रहने के कारण, कभी-कभी कुछ व्यक्तियों को अपनी क्रिया को सम्पूर्ण करने का अवकाश नहीं मिलता, जिससे उनके प्राप्त-अंक उनकी योग्यता को पूर्ण रूप से अंकित नहीं कर पाते, परन्तु प्राप्त अंकों से समूह में उनका स्थान निर्देश हो जाता है। ऐसी स्थिति में भी माध्यिक जैसा मानदण्ड स्थिर करना सुलभ और उपयोगी सिद्ध होता है।

परीक्षित व्यक्तियों के परीक्षा फल को क्रमानुसार रखने पर जो अंक मध्य स्थान में पड़ता है, वह माध्यिक कहलाता है।

पहले दिये पंद्रह व्यक्तियों के प्राप्त अङ्कों के आधार पर :—

अंक-क्रमानुसार

९	१८
११	२०
१२	२३
१३	२७
१५	२९
१५	३०
१५	
१६ माध्यिक	
१७	

माध्यिक = १६
औसत = १८

जब परीक्षित व्यक्तियों की संख्या दो से पूरी-पूरी विभाजित हो जाती है, तो माध्यिक को मध्य में स्थित दो अङ्कों की औसत अङ्कित करता है। जैसे :—

परीक्षित व्यक्ति	प्राप्त अङ्क
क	९
ख	११
ग	१३
	———— माध्यिक
घ	१५
च	२१
छ	२२

माध्यिक = (१३ + १५) ÷ २ = १४

माध्यिक = १४

रीति

किसी विषय विशेष की परीक्षा में जो अंक सबसे अधिक बार प्रदर्शित होता है, उसे रीति कहते हैं। रीति उस समूह के प्रतिरूप को इंगित करती है।

१५ व्यक्तियों के प्राप्त-अंक

१७	२७	१२
९	१३	१६
२३	१५	२९
११	३०	१८
१५	१५	२०

इन अंकों में १५ सबसे अधिक वार प्रदर्शित होता है तथा १५ रीति है।

पिछले पृष्ठ में दी हुई तालिका के अनुसार—

(i) रीति = १५
(ii) माध्यिक = १६
(iii) औसत = १८

सामाजिक मनोविज्ञान में रीति का प्रयोग बाहुल्यता से किया जाता है। समाज की किसी विषय-विशेष के प्रति प्रतिक्रिया, उनके विचार, व्यवहार, रहन सहन, फैशन इत्यादि के अध्ययन के लिये बहुधा रीति मानदण्ड ठहरायी जाती है। राजनीतिक तथा सामाजिक चुनाव में रीति का प्रयोग प्रधान है। रीति जैसे मानदण्ड को स्थिर करने के लिये परीक्षित व्यक्तियों की संख्या बहुत कम नहीं होनी चाहिये। परीक्षित व्यक्तियों की संख्या कम रहने पर रीति का अनुमान बहुधा भ्रमात्मक रहता है।

कभी-कभी किसी एक परीक्षा में दो रीतियाँ दिखाई पड़ती हैं; अर्थात् दो विभिन्न अंकों के प्रदर्शन की संख्या सबसे अधिक तथा समान होती है। ऐसी स्थिति में, यदि वह अंक एक दूसरे से बहुत निकट नहीं होते, तो यह अनुमान होता है कि परीक्षित व्यक्तियों का वह समूह यथार्थ में ऐसे दो विभिन्न समूहों का समुदाय है, जिन्हें परीक्षा के लिये अलग-अलग रखना ही उचित था।

उदाहरणार्थ :—बालकों के किसी समूह की क्रिया-कुशलता के परीक्षाफल को क्रमानुसार रखने पर यदि प्राप्त-अंकों का विस्तार केवल ६ से २० तक हो, और दो रीति-अंक अर्थात् ९ और १५ समान बार प्रदर्शित हों; तो यह स्पष्ट हो जाता है, कि वह वास्तव में ऐसे दो समूहों के बालकों का समुदाय है, जिन्हें परीक्षा के लिये अलग-अलग समूह में रखना ही उचित था।

औसत, माध्यिक तथा रीति

यद्यपि मनोविज्ञान में, औसत के अतिरिक्त माध्यिक तथा रीति का भी प्रयोग किया जाता है, किन्तु प्रामाणिकता में वह औसत की तुलना नहीं कर पाते।

इसके अतिरिक्त, वैयक्तिक भिन्नता के यथार्थ महत्व को मापने के लिये जिन परिगणन विधियों का प्रयोग किया जाता है, उनका आधार औसत ही होता है। इसलिये वैयक्तिक भिन्नता के सही अनुमाप के लिये औसत का ज्ञान उचित ही नहीं, आवश्यक भी है।

वैयक्तिक भिन्नता का अनुमाप तथा उसके महत्व की जाँच

ऊपर लिखी विधियों के अनुसार मानदण्ड स्थिर करने पर सामान्य नियम का निर्माण तो अवश्य होता है, परन्तु उनसे प्रत्येक परीक्षित व्यक्ति के विशिष्ट स्थान तथा उसके स्थान के सही महत्व का ज्ञान नहीं होता। इसमें सन्देह नहीं कि व्यक्ति के प्राप्त-अंक औसत से जितनी अधिक दूरी पर रहते हैं, उतना ही उसकी योग्यता या गुण असाधारण होता है।

दो परीक्षाओं के फल का विस्तार यदि ५० तथा २५ है, तो औसत से ५ की दूरी का महत्व दोनों के लिये निःसन्देह अलग-अलग है। इसलिये, जिस प्रकार सामान्य नियम को स्थिर करने के लिये परीक्षित व्यक्तियों के प्राप्त-अंकों से औसत निकालना आवश्यक होता है, उसी प्रकार औसत से वैयक्तिक भिन्नता के महत्व को समझने के लिये प्रमाण-विचलन को स्थिर करना आवश्यक हो जाता है।

प्रमाण विचलन

औसत से वैयक्तिक विचलन के वर्ग की औसत का वर्गमूल प्रमाण-विचलन होता है। औसत से वैयक्तिक विचलन का जोड़ सदा शून्य होता

हैं, किन्तु वैयक्तिक विचलन का वर्ग-विचलन करते समय उनके जोड़ और घटाने के चिह्न की ओर ध्यान नहीं दिया जाता।

प्रमाण विचलन निकालने की विधि :-

परीक्षित व्यक्ति	प्राप्त अंक	वैयक्तिक विचलन	वर्ग-विचलन
क	१७	−१	१
ख	९	−९	८१
ग	२३	+५	२५
घ	११	−७	४९
च	१५	−३	९
छ	२७	+९	८१
ज	१३	−५	२५
झ	१५	−३	९
ट	३०	+१२	१४४
ठ	१५	−३	९
ड	१२	−६	३६
ढ	१६	−२	४
त	२१	+११	१२१
थ	१८	०	०
द	२०	+२	४
जोड़ १५	२७०	०	५९८
औसत ...	१८	०	३९.९
प्रमाण विचलन...	...	...	... $\sqrt{३९.९}$=६.३

प्रमाण विचलन = ६.३

प्रमाण विचलन σ चिह्न से अंकित किया जाता है। औसत से ऊपर की ओर के प्रमाण विचलन के साथ जोड़ का चिह्न, तथा नीचे की ओर के प्रमाण विचलन के साथ घटाने का चिह्न दिया जाता है।

औसत से एक प्रमाण विचलन नीचे की ओर तथा एक प्रमाण विचलन ऊपर की ओर (-1σ से $+1\sigma$) के अन्तर्गत लगभग दो तिहाई व्यक्ति होते हैं। बाकी एक तिहाई व्यक्ति बराबर-बराबर दोनों ओर बँट जाते हैं। अर्थात् कुल व्यक्तियों में से केवल छठा भाग ही एक प्रमाण विचलन से नीचे की ओर होता है, और उतना ही एक प्रमाण विचलन से ऊपर की ओर। योग्यता में व्यक्ति अधिकतर औसत के निकट पाये जाते हैं। ज्यों-ज्यों हम औसत से दूरी की ओर जाते हैं, व्यक्तियों की संख्या कम होती जाती है। लगभग ९५ % व्यक्ति दो प्रमाण विचलन नीचे की ओर से दो प्रमाण विचलन ऊपर की ओर (-2σ से $+2\sigma$) के अन्तर्गत होते हैं। केवल पाँच प्रतिशत व्यक्ति इस घेरे से बाहर पाये जाते हैं। यह पाँच व्यक्ति भी दोनों ओर बराबर-बराबर बँटे रहते हैं।

व्यक्ति के प्राप्त-अंकों को प्रमाण विचलन में परिणत करने से उसकी योग्यता की जाँच सुलभ तथा यथार्थ हो जाती है। प्रमाण विचलन के जानने पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि परीक्षित व्यक्ति औसत से कितनी दूरी पर है तथा उस समूह में किसी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा वह कितना तीव्र या मन्द है।

$+1\sigma$ से $+2\sigma$ के अन्तर्गत १५-१६ प्रतिशत व्यक्ति होते हैं। अर्थात्, उन जैसी तीव्रता के उस समूह में केवल १५-१६ प्रतिशत व्यक्ति ही पाये जाते हैं। जो व्यक्ति $+2\sigma$ से बाहर होते हैं, तीव्रता में उनकी तुलना केवल १०० में एक दो॰ यक्ति ही करते हैं। $+3\sigma$ से बाहर के व्यक्ति अपूर्व योग्यता के होते हैं। ऐसी योग्यता का हज़ार में लगभग एक व्यक्ति होत। है।

यही बात मन्द व्यक्तियों के सम्बन्ध में भी सत्य है।

अनुबन्ध-गुणक

दो योग्यताओं या घटनाओं के परस्पर सम्बन्ध को अनुबन्ध कहते हैं। इस परस्पर सम्बन्ध का अनुमापित रूप अनुबन्ध-गुणक कहलाता है। अनुबन्ध-गुणक के ज्ञानमात्र से यह पता चल जाता है कि उन दोनों योग्यताओं या घटनाओं में परस्पर सम्बन्ध कैसा और कितना है; अर्थात् उनमें से एक घटना के होने पर दूसरी घटना के होने या न होने की संभावना को अनुबन्ध-गुणक से मापा जा सकता है।

अनुबन्ध-गुणक अनुकूल तथा प्रतिकूल दोनों प्रकार का होता है। अनुकूल अनुबन्ध-गुणक जोड़ (+) के चिह्न से और प्रतिकूल अनुबन्ध-गुणक घटाने (–) के चिह्न से अंकित किये जाते हैं। जब दो घटनाएँ एक दूसरे से बिलकुल अलग-अलग होती हैं, उनमें किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं पाया जाता तो उनका अनुबन्ध-गुणक शून्य होता है।

दो योग्यताओं में यदि परस्पर सम्बन्ध ऐसा होता है, जिससे एक के होने से दूसरे के होने की संभावना रहती है, जैसे मानसिक तीव्रता तथा विद्याध्ययन की क्षमता, तो उनका अनुबन्ध-गुणक अनुकूल होता है, और वह उस संभावना को अनुमापित रूप से अंकित करना है। सम्पूर्ण अनुकूलता का अनुबन्ध-गुणक + है। अनुबन्ध-गुणक के + रहने पर उनमें से एक के होने पर दूसरे का होना अनिवार्य है। ऐसी अनुकूलता बहुत कम पाई जाती है। बहुधा अनुबन्ध-गुणक आंशिक ही होता है। वह + १ से एक का कोई भी भागांश हो सकता है।

किन्तु कुछ योग्यताओं में ऐसा अनुबन्ध भी रहता है कि उनमें से एक के रहने पर दूसरे का होना यदि सर्वथा असंभव नहीं तो कठिन अवश्य होता है, जैसे थकान तथा अमूर्त चिन्तन का परस्पर सम्बन्ध। थकान से

व्यक्ति के चिन्तन की क्षमता बहुत कुछ क्षीण पड़ जाती है। उसे जितनी अधिक थकान रहती है, उतनी ही उसकी चिन्तन शक्ति कम हो जाती अर्थात् इन दोनों में से एक की उपस्थिति में दूसरे की अनुपस्थिति की संभावना होती है। ऐसा अनुबन्ध प्रतिकूल कहलाता है। संपूर्ण प्रतिकूलता का अनुबन्ध गुणक –१ है, परन्तु ऐसा प्रतिकूल अनुबन्ध बहुत ही कम पाया जाता है। योग्यताओं का अनुबन्ध-गुणक अनुकूल रहता है, और यह अनुकूलता अधिकतर आंशिक होती है।

अनुबन्ध–गुणक का नियम तथा उसे निकालने की विधि :—

परीक्षित व्यक्ति	योग्यता (१) प्राप्त-अङ्क	योग्यता (२) प्राप्त-अङ्क	परीक्षित व्यक्तियों का योग्यता (१) में स्थान	परीक्षित व्यक्तियों का योग्यता (२) में स्थान	स्थान भेद	स्थान भेद का वर्ग
क	२४	१५	१	७	६	३६
ख	२०	१९	३	३	०	—
ग	१७	१७	५	५	०	—
घ	९	१६	९	६	३	९
च	१५	११	६	९	३	९
च	११	२५	७	२	५	२५
छ	१०	१८	८	४	४	१६
ज	७	८	१०	१०	०	०
झ	२१	२७	२	१	१	१
ट	१९	१३	४	८	४	१६
जोड़ १०	—	—	—	—	—	११२

$$\text{अनुबन्ध-गुणक } (\gamma) = १ - \frac{६ \times (\text{स्थान भेद के वर्ग का जोड़})}{\text{परीक्षित व्यक्तियों की संख्या (व्यक्तियों की संख्या का वर्ग}-१)}$$

$$\gamma = १ - \frac{६ \times ११२}{१०(१००-१)}$$

$$= १ - \frac{६७२}{१० \times ९९}$$

$$= १ - \cdot६७$$

$$= + \cdot३३$$

जब किसी परीक्षाफल में दो या अधिक व्यक्तियों के एक योग्यता में प्राप्त-अंक समान होते हैं, तो अनुबन्ध-गुणक के निकालने के लिये, उनके स्थानों को उन स्थान अंकों के औसत से अंकित किया जाता है, जहाँ वह एक दूसरे के तुरत आगे पीछे रहने पर होते।

उदाहरणार्थ :—

परीक्षित व्यक्ति	योग्यता (१) प्राप्त अंक	योग्यता (२) प्राप्त अंक	परीक्षित व्यक्तियों का योग्यता (१) में स्थान	परीक्षित व्यक्तियों का योग्यता (२) में स्थान	स्थान भेद	स्थान भेद का वर्ग
क	१५	१८	१·५	१	·५	·२५
ख	१५	१५	१·५	३	१·५	२·२५
ग	१३	११	३	५	२	४
घ	११	१५	४	३	१	१
च	९	१५	५	३	२	४
छ	७	९	६	६	०	०
जोड़=६	-	-	-	-	-	११·५

$$\gamma = १ - \frac{६ \times ११\cdot५}{६(६^२-१)}$$

$$= १ - \frac{६९}{२१०}$$

$$= + \cdot६७$$

∴ अनुबन्ध गुणक = + ·६७

ऊपर की तालिका में, योग्यता (१) में, क और ख के प्राप्त-अंक एक से हैं, जिसके कारण वह दोनों पहले और दूसरे स्थान के समान अधिकारी हैं। इसलिये क और ख का स्थान एक और दो के बीच, अर्थात् १·५ है। उनके तुरन्त पश्चात् आनेवाले व्यक्ति का स्थान क्रमानुसार तीसरा है।

इसी प्रकार योग्यता (२) में, ख, व, च के प्राप्त-अंक समान हैं और वह दूसरे, तीसरे तथा चौथे स्थान के समान अधिकारी हैं। अतः उनके स्थानों को इन तीन स्थान-अंकों की औसत से निर्धारित किया गया है। इनके पश्चात् आनेवाले व्यक्ति का स्थान पाँचवा है।

टेड्राड ईक्वेशन

स्पीयरमैन गणित विद्या में बहुत निपुण थे। विभिन्न योग्यताओं के अनुबन्ध को अनुमापित रूप से जाँचने में उन्हें विशेष रुचि थी। उनके परस्पर सम्बन्ध को अध्ययन करते हुए, उन्होंने उनमें जो महत्वपूर्ण संबंध पाया, उसे टेड्राड ईक्वेशन के नाम से व्यक्त किया। टेड्राड ईक्वेशन चार विभिन्न योग्यताओं के अनुबन्ध-गुणक के परस्पर सम्बन्ध को व्यक्त करता है। चूँकि अंग्रेज़ी में चार के समुदाय को टेड्राड कहते हैं, इसलिये इसे टेड्राड ईक्वेशन कहा गया है।

टेड्राड ईक्वेशन के आधार पर स्पीयरमैन ने प्रत्येक योग्यता को दो खण्डों अर्थात् (१) सामान्य खण्ड, और (२) विशिष्ट खण्ड, में विभाजित किया है। सामान्य खण्ड "जी" (G) के नाम से, और विशिष्ट खण्ड "एस" (S) के नाम से प्रसिद्ध हैं। सामान्य खण्ड को स्पीयरमैन ने बुद्धि माना है। एक व्यक्ति की विभिन्न योग्यताओं में सामान्य खण्ड

समान रूप से पाया जाता है, जब कि प्रत्येक योग्यता का विशिष्ट खण्ड अलग-अलग रहता है। कुछ योग्यताओं में विशिष्ट खण्ड प्रधान होता है, और कुछ में सामान्य खण्ड। जिन योग्यताओं में सामान्य खण्ड अधिक रहता है, उनमें परस्पर सम्बन्ध भी घनिष्ठ होता है। अर्थात् उतना ही उनका अनुबन्धन-गुणक + १ के लगभग रहता है। जिन योग्यताओं में विशिष्ट खण्ड की प्रधानता रहती है, उनका अनुबन्ध-गुणक उतना ही कम रहता है।

टेट्राड ईक्वेशन का नियम इस प्रकार है :—

γ क ग × γ ख घ − γ क ख × γ ग घ = ०

γ = अनुबन्ध-गुणक

क ख ग घ = चार योग्यताएँ

उदाहरणार्थ

क = वाचिक योग्यता।

ख = गणित योग्यता।

ग = हस्तकला कुशलता।

घ = यान्त्रिक योग्यता।

		क	ख	ग	घ
		वाचिक योग्यता	गणितयोग्यता	हस्तकला	यान्त्रिक योग्यता
क	वाचिक योग्या	—	·४०	·२०	·३०
ख	गणित योग्यता	·४०	—	·२४	·३६
ग	हस्तकला	·२०	·२४	—	·१८
घ	यान्त्रिक योग्यता	·३०	·३६	·१८	—

(इस तालिका में दिये अनुबन्ध-गुणक यथार्थ नहीं है। केवल उदाहरणार्थ दिये गये हैं।)

'२० × '३६ – '४० × '१८ = ०

ऊपर दिये टेड्राड ईक्वेशन का फल शून्य है। इन योग्यताओं के चिह्नों को परस्पर इच्छानुसार बदल देने पर, टेड्राड ईक्वेशन के फल में कुछ अन्तर नहीं आता।

उदाहरणार्थ :—

		ख	घ	क	ग
		वाचिक योग्यता	गणित योग्यता	हस्तकला	यान्त्रिक योग्यता
ख	वाचिक योग्ता	—	'४०	'२०	.३०
घ	गणित योजना	'४०	—	'२४	'३६
क	हस्तकला	'२०	'२४	—	'१८
ग	यान्त्रिक योग्यता	'३०	'३६	'१८	—

γ क ग × γ ख घ – γ क ख × γ ग घ = ०

'१८ × '४० – २० × ३६ = ०.

टेट्राड ईक्वेशन का फल शून्य रहने पर उससे सम्बन्धित विभिन्न योग्यताओं को सामान्य तथा विशिष्ट खण्ड में विभाजित किया जा सकता है।

साधारणतया, परीक्षित व्यक्तियों के चुनाव इत्यादि में कुछ त्रुटि रह रह जाने के कारण टेट्राड ईक्वेशन का फल सर्वथा शून्य नहीं रहता। वह शून्य के लगभग होता है। कभी-कभी टेट्राड ईक्वेशन का फल महत्वपूर्ण भी रहता है, जिसे परिगणन की सहज त्रुटियों का परिणाम नहीं माना जा सकता। वह यथार्थ में उस विशिष्ट खण्ड का प्रभाव होता है, जो विशिष्ट होते हुए भी टेट्राड ईक्वेशन सम्बन्धित दो या तीन योग्य-

ताओं में विद्यमान रहता है। ऐसी स्थिति में टेट्राड ईक्वेशन के आधार पर, योग्यताओं को सामान्य तथा विशिष्ट खण्ड में विभाजित करना कठिन हो जाता है। योग्यताओं को सामान्य तथा विशिष्ट खण्ड में तभी विभाजित किया जा सकता है, जब उनके टेट्राड ईक्वेशन का फल शून्य अथवा शून्य के लगभग रहता है।

शब्द-कोष

Ability–योग्यता

व्यक्ति की क्रियाकुशलता तथा किसी विषय की विशेष जानकारी को योग्यता कहते हैं।

Abstract concept–अमूर्त प्रत्यय

किसी पदार्थ या स्थिति का गुण प्रत्यय होता है। इसे इन्द्रियों द्वारा नहीं जाना जा सकता। भाषा ही उस गुण को संज्ञा रूप प्रदान करता है, सचाई, सुन्दरता इत्यादि।

Acquired Interests–अर्जित रुचियाँ

वह रुचियाँ जो व्यक्ति में उसके परिवेश की शिक्षा दीक्षा के कारण बन जाती हैं।

Acquisition, instinct of–अर्जन प्रवृत्ति

वस्तुओं को प्राप्त करना तथा उन्हें अधिकार में सुरक्षित रखना इस मूलप्रवृत्ति की प्रेरणा है। इसका मूल संवेग अधिकार-भावना है।

Activity–क्रिया

क्रिया दो प्रकार की होती है :—

(i) Mental–मानसिक क्रिया

(ii) Bodily activity–शारीरिक क्रिया

Acuity–ज्ञानेन्द्रियों की तीव्रता

ज्ञानेन्द्रिय जितना अधिक सूक्ष्म ज्ञान ग्रहण कर सकती है, उतनी ही वह तीव्र कहलाती है, गाल्टन का विचार था कि

ज्ञानेन्द्रियों की तीव्रता की परीक्षा से बुद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है।

✓Adler, Alfred 1870-1937–**एडलर**

एडलर आरंभ में फ्रायड (Freud) के साथ थे, किन्तु उनके विचारों का पूर्णरूप से समर्थन न कर सकने के कारण वह उनसे अलग हो गये, और १९१२ में अपने विचारों को विशिष्ट रूप प्रदान किया जो वैयक्तिक मनोविज्ञान (Individual Psychology) के नाम से प्रसिद्ध है।

इनके मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय में आत्म गौरव मूलप्रवृत्ति का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इनका कहना है कि प्रेम के साथ-साथ व्यक्ति आदर और मान भी चाहता है, जिन्हें पाने के लिए वह व्यक्त तथा अव्यक्त रूप से तरह-तरह की चेष्टाएँ किया करता है। उसके व्यवहार से हमें उसके जीवन के उद्देश्य तथा कार्यक्रम का पता लगता है। आत्महीनता का भाव ही बहुधा मानसिक विकार का कारण होता है।

Adolescence–**किशोरावस्था**

बाल्यकाल तथा प्रौढ़ावस्था के बीच की अवधि को किशोरावस्था कहा जाता है। इस अवस्था में भाव तथा विचारों में बहुत अस्थिरता पाई जाती है।

A dult–**प्रौढ़ व्यक्ति**

साधारणतया बीस इक्कीस वर्ष के व्यक्ति को प्रौढ़ माना जाता है, किन्तु मनोविज्ञान की दृष्टि से प्रौढ़ व्यक्ति वह है जिसका शारीरिक तथा मानसिक विकास पूर्ण रूप से हो चुका है।

Affective Experience–**भावात्मक अनुभव**

भावात्मक अनुभव में संवेग, भाव या उमंग की प्रधानता होती है।

After-sensations–अनुसंवेदना

अनुसंवेदना वह संवेदना है जो उत्तेजक के हट जाने पर भी कुछ क्षण के लिए बनी रहती है।

दृष्टि-अनुसंवेदना दो प्रकार की होती है :—

(i) निषेधात्मक अनुसंवेदना–Negative After-image. इसमें अनुसंवेदना का रंग संवेदना का पूरक होता है, जैसे, लाल के बाद हरा, और पीले के बाद नीला।

(ii) विध्यात्मक अनुसंवेदना–Positive After-image. इसमें अनुसंवेदना का रंग संवेदना से मिलता है। ऐसा लगता है कि संवेदना ही धीमी पड़ती हुई मिल रही है।

Age, chronological–वास्तविक आयु

वास्तविक आयु का हिसाब जन्म के समय से लगाया जाता है।

Age, mental–मानसिक आयु

मानसिक आयु की विचारधारा बीने (Binet) ने प्रचलित की। मानसिक आयु का अनुमान व्यक्ति की स्वाभाविक क्रिया-कुशलता तथा योग्यता से लगाया जाता है। जिस आयु के बालकों के समान उसकी समझ बूझ रहती है, उसी मानसिक आयु का वह माना जाता है।

Ambivert–मध्यमुखी

जो व्यक्ति साधारणतया अपने में तथा अपने पास अन्य लोगों और वातावरण में स्वाभाविक रुचि रखता है, वह मध्यमुखी कहलाता है। वह न केवल बहिर्मुखी होता है, और न अन्तर्मुखी ही। उसमें इन दोनों के गुण बहुत कुछ समान रूप से पाये जाते हैं।

Anger–क्रोध

युयुत्सा मूलप्रवृत्ति का संवेग।

Antagonistic colour–पूरक रंग

वह रंग जिनके परस्पर मिश्रण से भूरे की संवेदना होती है।

Appeal, instinct of–शरणागति प्रवृत्ति

असह्य स्थिति या संकट से शरणागति की प्रवृत्ति को उत्तेजना मिलती है और व्यक्ति सहायता पाने का प्रार्थी होता है। करुणा मूलप्रवृत्ति का संवेग है।

Apperception–पूर्वानुवर्ती प्रत्यक्ष ज्ञान

यह उस पूर्व अनुभव का योग है जिनके आधार पर संवेदना प्रत्यक्षीकरण में परिणत होती है।

Aristotle's Illusion–अर्स्टिाटल-विपर्यय

यदि हाथ के अँगूठे के पास की दो उँगलियों को ऊपर नीचे चढ़ाकर आहिस्ता से किसी गोल वस्तु पर घुमाया जाय तो व्यक्ति को एक वस्तु के स्थान पर दो वस्तुओं का अनुभव होता है। इस विपर्यय का वर्णन सर्वप्रथम अरिस्टॉट्ल ने किया।

Army Alfa and Army Beta Tests–आर्मी-अल्फा तथा आर्मी-बीटा बुद्धि-परीक्षाएँ

प्रथम महायुद्ध में भर्ती के समय सैनिकों की बुद्धि परीक्षाएँ बनायी गयीं।

आर्मी अल्फ़ा-बुद्धि परीक्षा में भाषा का प्रयोग प्रधान है, और आर्मी-बीटा-बुद्धि परीक्षा क्रियात्मक है।

Assertiveness, feeling of–आत्माभिमान-भावना

आत्म गौरव (Self-Assertion) की प्रवृत्ति का मूल संवेग।

Attention–ध्यान

ध्यान के किसी ओर आकर्षित होते ही व्यक्ति उस विषय के

प्रति सचेत तथा अन्य विषयों के प्रति विस्मृत-सा हो जाता है। चित्त की इस एकाग्रता को ही ध्यान कहते हैं।

Attention, characteristics–**ध्यान के गुण**

(i) Fluctuation–**ध्यान की अस्थिरता**

किसी वस्तु या विषय पर लगे ध्यान का बार-बार उस पर से हटकर तुरन्त ही उसी पर लौट आना। ध्यान की यह अस्थिरता स्वाभाविक है।

(ii) Selectivity–**ध्यान की चयनात्मकता**

परिवेश की विभिन्न स्थितियों में से ध्यान केवल उन्हीं पर आकृष्ट होता है जो व्यक्ति की सहज या अर्जित रुचियों से सम्बन्धित रहती है।

(iii) Shifting–**ध्यान का स्थानान्तरण**

ध्यान का स्वतः वस्तु या स्थिति के भिन्न-भिन्न भागों की ओर आकर्षित होते रहना।

Factors that Attract Attention–**ध्यान के प्रेरक**

(i) Objective :—**ध्यान के बाह्य प्रेरक**

वह स्थितियाँ जो व्यक्ति की नैसर्गिक रुचियों से सम्बन्धित होने के कारण, उसके ध्यान को सहज ही अपनी ओर आकर्षित करती हैं। उत्तेजक की नवीनता, गतिशीलता, तीव्रता तथा आयतन ध्यान के सहज प्रेरक हैं।

(ii) Subjective–**ध्यान के अंतरंग प्रेरक**

वह स्थितियाँ जो अर्जित रुचियों से सम्बन्धित होने के कारण ध्यान को आकर्षित करती हैं।

Types of Attention–**ध्यान के प्रकार**

(i) Non-voluntary–**अनैच्छिक ध्यान**

जब कोई स्थिति व्यक्ति की सहज प्रवृत्ति से सम्बन्धित होने के

कारण उसके ध्यान को बरबस अपनी ओर खींच लेती है, तो उस ध्यान को अनैच्छिक कहते हैं।

(ii) Voluntary Attention–ऐच्छिक ध्यान

जब व्यक्ति अपनी किसी विशेष इच्छा के कारण अपने ध्यान को किसी ऐसे विषय पर लगाता है, जो स्वतः ही उसे अपनी ओर आकर्षित नहीं करता, तो उस ध्यान को ऐच्छिक कहते हैं।

(iii)Involuntary Attention:–ऐच्छिक-अनैच्छिक ध्यान

पूर्व अनुभव के आधार पर, जब कोई स्थिति व्यक्ति के ध्यान को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित करने लगती है, तो उस ध्यान को ऐच्छिक अनैच्छिक कहते है।

Auditory Sensation–श्रोतृ संवेदना

Auditory Sense Organ–श्रोतृ-संवेदना का अंग

Average Child–साधारण बच्चा

जिस बच्चे की मानसिक तीव्रता अपने सम-वयस्क बच्चों के समान रहती है उसे साधारण माना जाता है।

परिगणन विद्या के अनुसार केवल ठीक औसत बच्चा ही साधारण नहीं होता। वह सब बालक साधारण माने जाते हैं जो औसत से एक प्रमाण-विचलन ऊपर की ओर तथा एक प्रमाण विचलन नीचे की ओर रहते हैं।

Backward Child–पिछड़ा हुआ बालक

जिस बालक की बुद्धि अपने समवयस्क बालकों से कम रहती है, वह पिछड़ा हुआ बालक कहलाता है। अर्थात् पिछड़ा हुआ बालक वह होता है, जो औसत बुद्धि लब्धि बच्चे से एक प्रमाण विचलन से अधिक नीचे की ओर होती है।

Behaviour–व्यवहार

व्यक्ति की मानसिक तथा शारीरिक क्रिया व्यवहार कहलाती हैं।

Behaviourism–व्यवहारवाद

मनोविज्ञान का वह सम्प्रदाय जो चेतना के अस्तित्व को न मानता हुआ व्यक्ति के व्यवहार को यन्त्रवत् मानता है। इन्होंने वातावरण के संपर्क से नाड़ी मण्डल के उत्तेजित हो जाने पर व्यक्ति के विभिन्न अंगों में जो क्रियाशीलता पैदा होती है, उसी को मनोविज्ञान का क्षेत्र माना है। व्यवहारवाद की नींव श्री वाट्सन ने डाली।

Binaural Hearing–द्विकर्ण-संवेदना

कानों के दाईं और बाईं ओर स्थित होने के कारण, व्यक्ति केवल श्रोतृ-संवेदना के आधार पर यह अनुमान लगा सकता है कि आवाज दाईं ओर से आ रही है या बाईं।

Binet, Alfred–बीने (1856-1911)

प्रचलित बुद्धि-परीक्षा की नींव बीने ने डाली। मानसिक आयु के महत्वपूर्ण विचार को भी सबसे प्रथम बीने ने ही हमारे सामने रखा।

यह बुद्धि-परीक्षा तीन वर्ष से चौदह वर्ष के बालकों के लिए ही बना पाये थे जबकि १६११ में इनका देहान्त हो गया।

Binocular Vision–द्विनेत्र-दृष्टि

दो आँखों से मनुष्य की दृष्टि का क्षेत्र ही विस्तृत नहीं हो जाता, वह वस्तु की गहराई का भी अनुभव करता है। एक आँख से वस्तु की लम्बाई और चौड़ाई दृष्टिगत होती है, गहराई उतनी स्पष्ट नहीं।

Binoculor Rivalry–दोनों आँखों की प्रतिद्वंद्विता

जब दोनों आँखों के सामने एक साथ ऐसे अलग-अलग दृश्य रखे जाते हैं, जो परस्पर मेल नहीं खाते, तो व्यक्ति को उनमें

से पहले एक दिखाई पड़ता है और उसके तुरन्त पश्चात् दूसरा।

Blend–मिश्रण

दो या अधिक संवेदना का ऐसा पारस्परिक मेल जिनके मिश्रण से केवल एक विशिष्ट गुण का ही अनुभव हो, जैसे नारंजी रंग में लाल और पीला मिला रहता है।

Blind Spot–रिक्त बिन्दु

अक्षिपटल का वह भाग जिसमें दृश्येन्द्रियाँ नहीं पाई जातीं। इस भाग से व्यक्ति को कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता।

Blue–नीला

सबसे छोटी लम्बाई की प्रकाश-तरंग से उत्तेजित प्राथमिक दृष्टि संवेदना।

Bitter–कड़ुआ

प्राथमिक रस संवेदना। इसकी ज्ञानेन्द्रियाँ जिह्वा के पिछले भाग पर पाई जाती हैं।

Bodily Reactions–शारीरिक प्रतिक्रिया

Bright Child–तीव्र-बुद्धि बालक

साधारण बुद्धि से अधिक बुद्धि के बालक। इनका वर्गीकरण इस प्रकार है:—(i) तीव्र-बुद्धि, (ii) प्रखर-बुद्धि, (iii) अत्यन्त प्रखर बुद्धि।

Cannon, Walter Bradford–कैनन (1871-1945)

श्री कैनन ने प्रयोग से जेम्स लांगे सिद्धांत का खंडन किया। चूँकि विभिन्न संवेग की अन्तरावयव संवेदना विशिष्ट प्रकार की नहीं होती, इसलिए अन्तरावयव संवेदना को संवेग नहीं माना जा सकता। इन्होंने यह भी सिद्ध किया कि बहुत-सी

अन्तरावयव संवेदना का संवेग से कुछ विशेष सम्बन्ध नहीं होता।

Capacity—क्षमता

क्षमता व्यक्ति का वह स्वाभाविक गुण है जिसे वह अपनी इच्छानुसार चेष्टा द्वारा योग्यता में परिवर्तित कर सकता है। जैसे किसी भाषा-विशेष को सीखने की क्षमता प्रायः सब में रहती है, परन्तु योग्यता किसी-किसी में। क्षमता का क्षेत्र योग्यता की अपेक्षा बहुत विस्तृत रहता है।

Case History Method—जीवनवृत्त-विधि

मनोविज्ञान की वह विधि जिससे व्यक्ति की भूतपूर्व घटनाओं के विवेचन द्वारा उसकी तात्कालिक मानसिक अवस्था को समझने का प्रयास किया जाता है।

Chain Reflex—सहज-क्रिया की शृंखला

सहज क्रिया की वह लड़ी जो एक के पश्चात् दूसरी स्वतः उत्तेजित हो जाती है। वाट्सन का कहना है कि सहज क्रिया की ऐसी शृङ्खला को ही बहुत से मनोवैज्ञानिक मूलप्रवृत्तियाँ समझने की भूल करते हैं।

Character—चरित्र

आत्म-भाव के कारण व्यक्ति की विभिन्न प्रवृत्तियों में जो परस्पर सम्बन्ध हो जाता है, उससे उसकी विचारधारा तथा व्यवहार में सारूप्यता आ जाती है। इसे चरित्र कहा जाता है।

Childhood—बाल्यकाल

शैशव तथा किशोरावस्था के बीच की अवधि।

Choleric Temperament—पित्तवृत्ति

पित्तवृत्ति-व्यक्ति में क्रोध आदि भावना सहज ही उत्तेजित हो जाती हैं।

Chronological Age–**वास्तविक आयु**

"Age" में देखिये

Cochlea–**आंतरिक कान में घोंघे के आकार का चक्राकार कोष्ठ**

कान के इस भाग में श्रवणेन्द्रियाँ पाई जाती हैं।

Co-efficient of correlation–**अनुबन्ध गुणक**

दो विभिन्न विषयों के पारस्परिक सम्बन्ध को जाँचने की परिगणन विधि।

Cognitive Experience–**ज्ञानात्मक अनुभव**

वह अनुभव जिनमें प्रेरणा या भावना की अपेक्षा ज्ञान की प्रधानता हो।

Cold Sensation–**शीत-संवेदना**

प्राथमिक त्वक् संवेदना।

Cold Spots–**शीत-बिन्दु**

त्वचा पर के वह बिन्दु जिनके उत्तेजित होने से शीत संवेदना का अनुभव होता है।

Colour-Blindness–**रंग-अन्धापन**

रंग-अन्धापन में व्यक्ति को प्रकाश की संवेदना अवश्य रहती है, किन्तु रंग की नहीं। रंग अन्धापन दो प्रकार का होता है:—

Total Colour-blindness–**रंग का सम्पूर्ण अन्धापन**

सम्पूर्ण रंग अन्धे व्यक्ति को केवल काले भूरे और उजले का ही अनुभव होता है, रंग का नहीं। रंग-तरंगें उसे भूरे के रूप में दिखाई पड़ती हैं। ऐसे व्यक्ति बहुत कम होते हैं। रंग अन्धापन अधिकतर आंशिक होता है।

Partial-Colour-blindness–**रंग का आंशिक-अन्धापन**

इसमें प्रकाश संवेदना के अतिरिक्त व्यक्ति को पीले और नीले का भी अनुभव होता है। लाल और हरा उसे पीले

और नीले की भाँति दिखाई पड़ते हैं। रंग का आंशिक-अन्धापन पुरुषों में लगभग ४% और स्त्रियों में लगभग ·१% पाया जाता हैं। पूर्व की अपेक्षा पश्चिमी देशों में रंग अन्धे अधिक होते हैं।

Combat, instinct of–युयुत्सा प्रवृत्ति

इच्छा में बाधा डालनेवाली स्थिति से व्यक्ति की युयुत्सा की प्रवृत्ति को उत्तेजना मिलती है, जिससे उसमें अवरोधक स्थिति बदल देने की प्रेरणा होती है। इस मूलप्रवृत्ति का संवेग क्रोध है।

Complementary Colour–पूरक रंग

(i) लाल और हरा

(ii) पीला और नीला

अर्थात् वह रंग जिनके परस्पर मिश्रण से भूरे की संवेदना होती है।

Complex–भावना ग्रन्थि

दुःखप्रद तथा असामाजिक अनुभव, जिन्हें व्यक्ति बरबस चेतना से बाहर निकाल देना चाहता है। वह भावनाग्रंथि के रूप में उसके अचेतनमन में पड़े, उसके व्यवहार को अज्ञात रूप से प्रभावित करते रहते हैं।

Conation–प्रेरणा

Conative Experience–इच्छात्मक अनुभव

वह अनुभव जिसमें ज्ञान या भावना की अपेक्षा प्रेरणा प्रधान रहती है।

Concept–प्रत्यय

किसी स्थिति की अनुभूति के पश्चात्, उसका विचार बना

रहता है, वही उस स्थिति का प्रत्यय कहलाता है। प्रत्यय तीन प्रकार के होते हैं।

(i) Concept of a particular object–**विशिष्ट पदार्थ का प्रत्यय**

(ii) Concrete or Class concept–**मूर्त प्रत्यय**

मूर्त प्रत्यय किसी वस्तुविशेष के लक्षणों को इंगित न करता हुआ उसकी जाति के लक्षणों का संकेत मात्र होता है, किताब, गाय इत्यादि।

(iii) Abstract concept–**अमूर्त प्रत्यय**

"Abstract Concept" में देखिये।

Conditioned Response–**सम्बद्ध प्रतिक्रिया**

वह प्रतिक्रिया, जो पूर्व अनुभव के आधार पर उस उत्तेजना से उत्तेजित होने लगती है, जो साधारणतया उसे उत्तेजित करने में सर्वथा असमर्थ थी। खाने की घण्टी को सुनते ही मुँह में पानी आ जाना। सीखने की इस विधि को खोज निकालने का श्रेय श्री पावलोव को है।

Cones–**सूचियाँ**

वह दृष्येन्द्रियाँ जो तेज़ प्रकाश से उत्तेजना पाती हैं। छाभा या धीमे प्रकाश में इनसे दिखाई नहीं पड़ता। रंग-संवेदना सूचियों की होती हैं।

Conflict, mental–**मानसिक द्वन्द्व**

जब दो या अधिक उत्तेजित मनोवृत्तियों की इच्छाएँ एक दूसरे से इस प्रकार विपरीत होती है कि उनमें परस्पर संबंध जोड़ा ही नहीं जा सकता, तो व्यक्ति मानसिक द्वन्द्व अनुभव करता है। वह अपने से स्वयं ही लड़ता है, जिसके कारण उसे निर्णय करने में कठिनाई होती है।

Conscious Mind–चेतन मन

Consciousness–चेतनता

Construction, instinct of–सृजन प्रवृत्ति

व्यक्ति अन्वेषण के साथ रचनात्मक क्रियाओं में भी सहज रुचि रखता है। इस मूलप्रवृत्ति का संवेग सृजन-भावना या कृति भाव है।

Creativeness, feeling of–सृजन-भावना

सृजन प्रवृत्ति का मूल संवेग।

Creative imagination–सृजनात्मक कल्पना

यह सदा उद्देश्यपूर्ण होती है। इसमें व्यक्ति की रचनात्मक प्रवृत्ति को अभिव्यक्ति मिलती है। कहानी, कला, आविष्कार इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

Cue–संकेत

Cutaneous Sensations–त्वक्-संवेदना

त्वक् संवेदना चार प्रकार की हैं, स्पर्श, शीत, ऊष्ण तथा पीड़ा। त्वक् संवेदना का अंग त्वचा है।

Curiosity, instinct of–जिज्ञासा-प्रवृत्ति

स्थिति की नवीनता जिज्ञासा की उत्तेजक, तथा अन्वेषण की इच्छा इसकी प्रेरणा है। जिज्ञासा प्रवृत्ति का संवेग आश्चर्य है।

Development of Language–भाषा का विकास

Dim light–धुँधला प्रकाश

Disgust–घृणा

निवृत्ति की प्रवृत्ति का मूल संवेग।

Distraction–ध्यान का उच्चाटन

ध्यान का इच्छित विषय से हट कर किसी अन्य विषय या स्थिति की ओर आकृष्ट हो जाना।

Distress–करुणा

शरणागति मूलप्रवृत्ति का संवेग।

Distribution of Intelligence–बुद्धि का वितरण

जनसाधारण में दो तिहाई व्यक्ति साधारण बुद्धि के होते हैं। शेष तीव्र तथा मन्द-बुद्धि में बराबर-बराबर बँटे रहते हैं।

Dull–स्थूल बुद्धि

साधारण बुद्धि से कुछ कम बुद्धि के व्यक्ति। पुनः संशोधित-बीने-स्टैनफर्ड बुद्धि परीक्षा के अनुसार इनकी बुद्धि-लब्धि ६८–८४ के बीच की रहती है। जनसाधारण में ऐसे व्यक्ति लगभग १४ प्रतिशत पाये जाते हैं।

Day-dreams–दिवास्वप्न

वह कल्पना जिसके माध्यम से व्यक्ति अपनी अतृप्त इच्छाओं की पूर्ति करता है।

Deafness–बहरापन

ध्वनि संवेदना का अभाव। बहरापन दो प्रकार का होता है:—

Partial Deafness–आंशिक बहरापन

व्यक्ति को कुछ ध्वनि-तरंगों की संवेदना नहीं होती। शेष ध्वनि-तरंगे सुनाई पड़ती हैं।

Total Deafness–सम्पूर्ण बहरापन

वह व्यक्ति जो कुछ भी नहीं सुन सकता, अर्थात् उसमें इस संवेदना का संपूर्ण अभाव रहता है।

Deductive Reasoning–अभ्युपगम तर्क

इसमें व्यापक से व्याप्य के सम्बन्ध में अनुमान लगाया जाता है।

Deficiency, mental–बुद्धि की मन्दता

बुद्धि की मन्दता में व्यक्तिगत भेद बहुत रहता है। परिमाण

विद्या के आधार पर मन्द-बुद्धि व्यक्तियों को चार श्रेणियों में बाँटा जा सकता है, अर्थात्, (i) स्थूल-बुद्धि (Dull) (ii) मूढ़ (Morons , (iii) मूर्ख (Imbecile) (iv) जड़ (Idiot)

Depth Psychology–**अन्तश्चेतना मनोविज्ञान**

मनोविज्ञान का वह विभाग जो व्यक्ति के अचेतन मन की घटना या प्रक्रिया में विशेष रुचि रखता है।

Derived Primary Attention–**ऐच्छिक-अनैच्छिक ध्यान**

अभ्यास के कारण जब व्यक्ति का किसी विषय के प्रति प्रयत्नात्मक ध्यान इतना अनायास हो जाता है कि वह विषय सहज ही उसके ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करने लगता है तो उस ध्यान को ऐच्छिक-अनैच्छिक कहते हैं।

Desire–**इच्छा**

इसमें व्यक्ति को अपनी प्रेरणा के ध्येय का ज्ञान रहता है।

Desires, unlearned–**नैसर्गिक इच्छाएँ, अर्थात् मूलप्रवृत्तियों की प्रेरणा**

Development of intelligence–**बुद्धि का विकास।**

बुद्धि के विकास की गति शैशव में बहुत तीव्र और फिर क्रमशः धीमी पड़ती जाती है। १५-१८ वर्ष की आयु में बुद्धि पूर्ण रूप से विकसित हो जाती है।

Ear–**कान**

श्रोतृ संवेदना की इन्द्रिय। कान के आन्तरिक भाग को तीन भागों में बाँटा जा सकता है :—

(i) Cochlea–**घोंघे के समान आकार का चक्राकार कोष्ट**

(ii) Three Semi circular canals–**तीन अर्धवृत्ताकार नालियाँ**

(iii) Vestibule–कर्णकुटी

(i) चक्राकार कोष्ठ में श्रवणेन्द्रियाँ पाई जाती हैं, जिन्हें ध्वनि तरंगों से उत्तेजना मिलती है, और व्यक्ति को श्रोतृ-संवेदना होती है।

(ii)&(iii) अर्थ वृत्ताकार नालियों तथा कर्णकुटी में लगी ज्ञानेन्द्रियाँ शरीर और विशेषकर सिर के हिलने से उत्तेजित होकर व्यक्ति को सिर तथा शरीर की स्थिति का अनुभव कराती हैं।

Educational Psychology–शिक्षा-मनोविज्ञान

शिक्षा के सम्बन्ध में मनोविज्ञान के नियमों का प्रयोग। शिक्षा-मनोविज्ञान में बालकों के व्यक्तिगत भेद, उनकी भिन्न-भिन्न रुचियाँ, सीखने तथा सिखलाने की विधियाँ, ध्यान एकाग्र रखने की समस्या, स्मृति इत्यादि पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

Elation, feeling of– आत्माभिमान की भावना

Emotion–संवेग

संवेगात्मक अनुभव में केवल भावना में ही उद्वेग नहीं आ जाता, अन्तरावयव संवेदना भी बहुत उद्दीप्त हो जाती है, और व्यक्ति की शारीरिक प्रतिक्रिया में बहुत परिवर्तन आ जाता है। मैक्डूगल के कथनानुसार प्रत्येक मूलप्रवृत्ति का संवेग विशिष्ट है, जिसे मूल-संवेग कहा गया है।

Engrams–संस्कार

Environments–परिवेश

Error–त्रुटि

Escape, Instinct of–पलायन प्रवृत्ति

हानि की आशंका से, सुरक्षा में जाने की प्रवृत्ति। भय इसका मूल-संवेग है।

Excitement–उत्तेजना

Exercise, Law of–आवृत्ति का नियम

सीखने का नियम। थॉर्नडाइक के कथनानुसार किसी क्रिया को जितनी अधिक बार दोहराया जाता है, उतनी ही वह उस व्यक्ति के लिए सहज और सरल हो जाती है।

Experiment–परीक्षण

उस घटना का निरीक्षण जिसे प्रेक्षक ने अध्ययन के हेतु अपनी इच्छानुसार इस प्रकार बनाया हो कि उसकी प्रत्येक स्थिति तथा गुण का उसे पूरा-पूरा ज्ञान रहे। उस घटना की विशिष्ट स्थितियों को एक एक कर बदलने पर वह उनके प्रभाव की सही जाँच कर सकता है।

Experience–अनुभव या अनुभूति

Exploration–अन्वेषण

Extroceptors–बाह्योत्तेजित संवेदना की ज्ञानेन्द्रियाँ

आँख, कान इत्यादि।

Extrovert–बहिर्मुखी

जिन व्यक्तियों की स्वाभाविक रुचि सामाजिक मेल जोल तथा बाह्य संसार से सम्बन्ध बनाये रखने में रहती है, उन्हें युंग के शब्दों में बहिर्मुखी कहा जाता है।

Eye–आँख

दृष्टि की इन्द्रिय। आँख के अक्षि-पटल पर दृश्येन्द्रियाँ दण्ड तथा सूची के रूप में लगी रहती हैं, जिन्हें प्रकाश तरंगों से उत्तेजना मिलती है। दण्ड रूपी दृश्येन्द्रियों से काले भूरे तथा उजले की संवेदना होती है। रंग सवेदना केवल सूचियों की होती है, जो गोधूलि या धीमे प्रकाश में उत्तेजित नहीं होती।

Fatigue–थकान

किसी काम को लगातार करने से व्यक्ति थक जाता है, जिससे काम कम होने लगता है, और गलतियाँ बढ़ जाती हैं।

थकान दो प्रकार की होती हैं:—

(i) शारीरिक,

(ii) मानसिक

Fear–भय

पलायन-प्रवृत्ति का मूल संवेग।

Fechner, Gustav Theodor–फेक्नर

इन्हें मानसिक और भौतिक संसार के परस्पर सम्बन्ध के अध्ययन में विशेष रुचि थी। उत्तेजन तथा संवेदना की तीव्रता के परस्पर सम्बन्ध को जाँचने का जो कार्य वेबर ने आरम्भ किया था, इन्होंने बहुत प्रयोग के बाद उसे नियम का रूप प्रदान किया, जो वेबर-फेक्नर-नियम के नाम से प्रसिद्ध है।

Feeble-minded–मन्द-बुद्धि

देखिए—Deficiency

Feeling–भावना

Fluctuation of Attention–ध्यान की अस्थिरता

Food Seeking, Instinct of–भोजनान्वेषण प्रवृत्ति

शारीरिक अवस्था से इसे उत्तेजना मिलती है। भूख इसका संवेग है।

Forgetting–विस्मृति

किसी स्मरण किए हुए विषय या सीखी हुई कला का भूल जाना। सीखने के तुरन्त पश्चात् भूलने की गति बहुत तीव्र होती है, किन्तु समय के साथ-साथ वह क्रमशः धीमी पड़ती है। इस सम्बन्ध में एबिंगहॉज़ के प्रयोग बहुत प्रसिद्ध हैं।

Fovea–पीत-बिन्दु

अक्षिपटल का वह भाग, जिसमें केवल सूचियाँ ही पाई जाती हैं। अक्षिपटल के इस भाग से दृश्य बहुत स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। चूँकि सूचियों को केवल तेज प्रकाश से ही उत्तेजना मिलती है इसलिए द्वाभा या धीमे प्रकाश में पीतबिन्दु से कुछ दिखाई नहीं पड़ता।

Frequency, Law of–आवृत्ति का नियम

देखिये Exercise

Freud, Sigmund–फ्रायड (1856-1939)

मनोविश्लेषणवाद के प्रवर्तक। इनका कथन है कि व्यक्ति का व्यवहार तथा उसकी विचारधारा बहुत कुछ अचेतनमन की गति से प्रभावित होती है। अस्वीकृत तथा अतृप्त इच्छाएँ अचेतनमन में भावना ग्रन्थियों के रूप में पड़ी, ज्ञात या अज्ञात रूप से अपने को तृप्त करने की चेष्टा किया करती हैं। काम-वृत्ति की अतृप्त इच्छाएँ ही मानसिक विकार का कारण होती हैं। इनका स्वप्न-विश्लेषण का सिद्धान्त बहुत प्रसिद्ध है।

"G" General Factor–"जी" अर्थात् सामान्य खण्ड

स्पीयरमैन (Spearman) के कथनानुसार व्यक्ति की बुद्धि उसकी विभिन्न योग्यताओं का सामान्य खण्ड ही है। (Spearman भी देखिए)

Gall, Franz Josef–गाल

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में गाल का कहना था : चूँकि मस्तिष्क में प्रत्येक क्षमता का स्थान अलग-अलग है, इसलिए मस्तिष्क के माप तथा बनावट से व्यक्ति की बुद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है।

Galton, Francis–गाल्टन

उन्नीसवीं सदी के मध्य में गाल्टन का कहना था कि ज्ञानेंद्रियों की तीव्रता की जाँच से व्यक्ति की बुद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है। इसलिए व्यक्ति की ज्ञानेंद्रियों के सूक्ष्म ज्ञान ग्रहण करने की योग्यता को जाँचने के लिए तरह तरह के यंत्र तथा विधियाँ बन ई गईं।

General Concept–मूर्त प्रत्यय

देखिये "Class Concept"

Genetic Method–मूलविकास विधि

मनोविज्ञान की वह विधि जिस के प्रयोग से बढ़ते हुए बालक की मानसिक वृत्ति तथा विकास का निरीक्षण किया जाता है।

Giddiness, Sensation of–चक्कर आने की संवेदना

Glands–ग्रंथियाँ

Green–हरा

Gregariousness–सामूहिक प्रवृत्ति

व्यक्ति शैशव से ही दूसरों का संसर्ग चाहता है। एकाकीपन इस मूल-प्रवृत्ति का मूल-संवेग है। और आपसी मेल-जोल का जीवन इस मूल-प्रवृत्ति का ध्येय है।

Grey–भूरा

काले और उजले के बीच की प्रकाश-संवेदना भूरा कहलाती है। मनुष्य भूरे के उतार चढ़ाव में लगभग ७०० भेद कर सकता है।

पूरक रंगों के परस्पर मिश्रण से भी भूरे की संवेदना होती है।

Group Intelligence Tests–सामूहिक बुद्धि-परीक्षण

Growth of Intelligence–बुद्धि का विकास

देखिए Development of Intelligence.

Group life—सामूहिक जीवन

Habit—आदत

किसी क्रिया के बार-बार करने से उसका इतना सुगम तथा सरल हो जाना कि व्यक्ति के लिए वह सहज और स्वाभाविक हो जाय।

जेम्स के 'आदत बनाने के नियम' बहुत उपयोगी और प्रसिद्ध हैं।

Hallucination—भ्रम

उत्तेजित मानसिक अवस्था के कारण उपस्थित स्थिति के अभाव में उसके प्रत्यक्षीकरण का अनुभव करना।

Heat Spots—उष्ण बिन्दु

त्वचा पर के वह बिन्दु जिनकी उत्तेजना से उष्ण-संवेदना का अनुभव होता।

Henning, Hans K. F.—हेनिंग

हेनिंग के घ्राण तथा रस संवेदना के वर्गीकरण बहुत प्रसिद्ध हैं। घ्राण संवेदना को इन्होंने ६ श्रेणियों में बाँटा है :—
(i) सुगन्ध, (ii) धीमी या मन्द सुगन्ध, (iii) मसालों की गन्ध, (iv) सड़े हुए पदार्थों की गन्ध, (vi) जले हुए पदार्थों की गन्ध, तथा (vi) बिरोज़े जैसी तेज़ गन्ध।
रस संवेदना को चार भागों में बाँटा है :—(i) मीठा, (ii) कड़वा, (iii) नमकीन तथा (iv) खट्टा।

Herd Instinct—सामूहिक जीवन की प्रवृत्ति

Gregariousness देखिए।

Hereditary—वंशगत

Hormones—ग्रंथियों के रासायनिक तत्व

Hunger–भूख

भोजनान्वेषण-प्रवृत्ति का संवेग ।

Idiot–जड़

वह व्यक्ति जिनकी बुद्धि-लब्धि ३६ से कम होती है । यह अपने शरीर की देख भाल भी स्वयं नहीं कर सकते । ऐसे व्यक्तियों की संख्या दस हज़ार में एक से भी कम रहती है ।

Illusions–विपर्यय

भ्रमात्मक प्रत्यक्षीकरण । जब अपनी मानसिक अवस्था या उत्तेजक के परिवेश के कारण, व्यक्ति को प्रत्यक्षीकरण में भ्रान्ति होती है, तो उसका अनुभव विपयर्य का होता है ।

Imagination–कल्पना

मानसिक रचनात्मक क्रिया । पूर्वानुभूति के नये योग से व्यक्ति भाँति-भाँति की रचनाएँ करता है, जिनसे उसकी केवल अतृप्त इच्छाओं की ही पूर्ति नहीं होती, बड़े-बड़े अन्वेषण तथा कला की भी रचना होती है ।

Imagination, Types of–कल्पना के प्रकार

(i) Creative Imagination–सृजनात्मक कल्पना

यह उद्देश्य मूलक होती है । इससे व्यक्ति की रचनात्मक प्रवृत्ति को अभिव्यक्ति मिलती है, जैसे कहानी कला आदि ।

(ii) Receptive Imagination–ग्रहणात्मक कल्पना

इससे व्यक्ति दूसरों के विचारों को ग्रहण करता है ।

(iii) Recreative Imagination–मनोरंजनात्मक कल्पना

इसमें व्यक्ति अपनी अतृप्त इच्छाओं को अज्ञात रूप से तृप्त करता है, दिवास्वप्न, मनोराज्य काल्पनिक खेल········ ।

Imbecile–मूर्ख

३६ से ५२ बुद्धि लब्धि के व्यक्ति । बुद्धि के पूर्ण विकास पर

मूर्ख की मानसिक आयु ५-६ वर्ष की होती है। वे अपने शरीर की देखभाल तो स्वयं कर लेते है, किन्तु जीविका के लिए किसी धन्धे को करने में असमर्थ होते हैं।

Imitation–अनुकरण

सीखने की विधि। व्यक्ति जाने में या अनजाने में दूसरे के व्यवहार या क्रियाविधि को अपनाता है।

Implicit Behaviour–अव्यक्त व्यवहार

स्नायु, पेशियां तथा अंगों की वह क्रिया जो बाह्य रूप से दिखाई नहीं पड़ती।

Improvement of Memory–स्मृति में उन्नति

Impulse–प्रेरणा

Incentive–प्रोत्साहन

Individual Differences–वैयक्तिक भिन्नता या व्यक्तिगत भेद

वैयक्तिक भिन्नता का अनुमान व्यक्ति की उन योग्यताओं, रुचियां तथा मनोवृत्तियों के द्वारा लगाया जाता है जो जन-साधारण में होते हुए भी उनमें भिन्न-भिन्न मात्रा में पाई जाती हैं।

Individual Psychology–वैयक्तिक मनोविज्ञान

इस सम्प्रदाय के निर्माता एडलर (Adler) हैं।
Adler देखिए।

Inductive Reasoning–अनुगम तर्क

इसमें अनेक उदाहरणों के आधार पर सामान्य नियम का अनुमान लगाया जाता है।

Infancy–शैशव

जन्म से बाल्यकाल तक की अवस्था।

Inferiority, feeling of—**आत्महीनता की भावना**

दैन्य प्रवृत्ति का मूल संवेग। इसे Negative Self-feeling भी कहते हैं।

Inner Ear—**आंतरिक कान**

देखिए Ear

Innate—**जन्मजात**

Inner Speech—**अव्यक्त वाणी**

वाक् इन्द्रियों की अव्यक्त क्रियाएँ। व्यवहारवाद के अनुसार चिन्तन व्यक्ति की अव्यक्त वाणी ही है।

Insight—**सूझ**

परिस्थिति को व्यावहारिक रूप से समझना। कोहलर ने सीखने में सूझ को बहुत महत्वपूर्ण स्थान दिया है। सूझ के आते ही व्यक्ति का व्यवहार स्थिति के अनुकूल हो जाता है।

Instincts—**मूल प्रवृत्तियाँ**

यह जनसाधारण में स्वभावतः पाई जाती हैं। व्यक्तिगत भेद केवल उनकी तीव्रता में होता है।

प्रत्येक मूलप्रवृत्ति की स्वाभाविक उत्तेजना विशिष्ट होती है। मूलप्रवृत्ति के उत्तेजित होते ही, उस परिस्थति के प्रति व्यक्ति आवेग का अनुभव करता है। मैक्डूगल का मत है कि प्रत्येक मूलप्रवृत्ति का संवेग प्राथमिक तथा विशिष्ट है।

Intelligence-**बुद्धि**

व्यक्ति की वह मानसिक क्षमता जिससे वह अपने वातावरण को समझता, बूझता तथा अपने व्यवहार को उसके अनुकूल बनाता है।

बुद्धि के विषय मेंथॉर्नडाइक, स्पीयरमैन तथा थर्स्टन के विचार देखिए।

Intelligence Quotient–बुद्धि-लब्धि

व्यक्ति की वास्तविक आयु को मानसिक आयु से भाग देने पर प्राप्त भजनफल को बुद्धि-लब्धि कहते हैं। यह लब्धि व्यक्ति की मानसिक तीव्रता की द्योतक है।

Intelligence Tests–बुद्धि-परीक्षा

बुद्धि-परीक्षा का उद्देश्य व्यक्ति की मानसिक-तीव्रता को प्रमाणित रूप से मापना है,। बुद्धि-परीक्षा में केवल ऐसे विषय ही रहने चाहिए जिन्हें व्यक्ति अपने वातावरण से साधारणतः समझता और सीखता है।

Intelligence Testing, a short history of–बुद्धि-परीक्षण का संक्षिप्त इतिहास

Intelligence, usefulness of–बुद्धि की उपयोगिता

Intensity–तीव्रता

बुद्धि-परीक्षण में भाषा तथा क्रिया दोनों ही का प्रयोग होता है।

Intensity of Sensation–संवेदना की तीव्रता

Intensity of Stimulus–उत्तेजक की तीव्रता

संवेदना की तीव्रता उत्तेजक की तीव्रता पर निर्भर करती है, किन्तु इनका परस्पर सम्बन्ध आनुपातिक है। संवेदना की तीव्रता में समान वृद्धि या कमी करने के लिए उत्तेजक को क्रमशः गुणा या भाग करना होता है।

Interest–रुचि

Internal organs–अन्तरावयव

Introceptors–अवयव की ज्ञानेन्द्रियाँ

Introspection–अन्तःप्रेक्षण

मनोविज्ञान की वह विधि जिसमें व्यक्ति अपने मन के भाव तथा घटना का स्वयं अध्ययन करता है। चूँकि, इस विधि

में निरीक्षक के अपने ध्यान को बाह्य घटनाओं से खींचकर मन की गति को जानने में लगता है, इसलिए इसे अन्तः प्रेक्षण कहते हैं।

व्यवहारवादियों ने इस विधि को सर्वथा निर्मूल मान कर इसका घोर विरोध किया है।

Introvert–अन्तःमुखी

अन्तर्मुखी को सामाजिक मेल-जोल में रुचि नहीं होती। उसका ध्यान बाह्य संसार की अपेक्षा अधिकतर अपने में ही सीमित रहता है, जैसे दार्शनिक।

Invention–आविष्कार

Involuntary Attention–ऐच्छिक-अनैच्छिक ध्यान

पूर्व अनुभव के आधार पर, जब कोई स्थिति व्यक्ति के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करने लगती है तो उस ध्यान को ऐच्छिक-अनैच्छिक कहते हैं।

James-Lange-Theory of Emotions–जेम्स-लांगे का संवेग-सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण से व्यक्ति में जो शारीरिक तथा अन्तरावयव प्रतिक्रिया होती है, उसी की संवेदना के समूहीकरण को संवेग कहते हैं।

इस विचार को जेम्स ने १८८४, और लांगे ने १८८५ में प्रकाशित किया। यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि अन्तरावयव संवेदना का संवेग में महत्वपूर्ण स्थान है, किन्तु प्रयोग से यह सिद्ध हो चुका है कि दोनों एक नहीं हैं।

James, William (1842-1910)–जेम्स

संवेग, चेतना तथा आदत के सम्बन्ध में इनके विचार विशेष

उल्लेखनीय हैं। प्रथम मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला के निर्माण-कर्त्ता भी आप हैं। यह केवल मनोवैज्ञानिक ही नहीं, विख्यात दार्शनिक भी थे।

Juvenile Delinquent–अपराधी बालक

वह बालक जो अपने मानसिक विकारों के कारण समाज की दृष्टि में दोषी या अपराधी माना गया हो।

Keller, Hellen–हेलन केलर

गूंगी-बहरी-अन्धी अमरीकन महिला। वाक्-इन्द्रियों की त्वक् संवेदना से यह बोलने वाले व्यक्ति के भाव समझ लेती हैं, तथा विभिन्न व्यक्तियों की आवाज़ की भिन्नता को पहचान लेती हैं। इनके उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि बुद्धि की जाँच विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों की तीव्रता के आधार पर नहीं की जा सकती।

Kinesthetic Sensation–गति-संवेदना

स्नायु, पेशियों तथा जोड़ों में लगी ज्ञानेन्द्रियों की उत्तेजना से गति संवेदना होती है।

Koffka, Kurt–कॉफ्का (1882-1941)

अवयवीवाद सम्प्रदाय के एक संस्थापक। आप वरदेमर तथा कोह्लर (Wertheimer and Kohler) के सहयोगी हैं। इनकी "मानसिक वृद्धि" (Growth of Mind) नामक पुस्तक बहुत प्रसिद्ध है।

Kohler, Wolfgang–कोहलर

कॉफ्का के साथी तथा अवयवीवाद के एक संस्थापक। इनकी वनमानुस की मानसिक अवस्था (Mentality of Apes) तथा "अवयवीवाद मनोविज्ञान" (Gestalt Psychology)

नामक पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध हैं। प्रत्यक्षीकरण तथा सीखने के सम्बन्ध में इनके विचार रोचक तथा विशेष महत्वपूर्ण हैं।

Ladd Franklin, Christine–लैड फ्रैंकलिक

रंग संवेदना के सम्बन्ध में इनका सिद्धान्त (१८६२) क्रमिक विकास का है। इनका कहना है कि :—

(i) प्राथमिक दृष्टि संवेदना केवल काले, उजले तथा भूरे की ही थी।

(ii) फिर कुछ विकास के साथ काले-उजले के अतिरिक्त व्यक्ति को पीले-नीले का भी अनुभव होने लगा।

(iii) अब, दृष्टि संवेदना में लाल और हरा भी सम्मिलित है।

Lange, Carl (1834-1900)–लांगे

इनके कथनानुसार संवेग उस अन्तरावयव तथा शारीरिक प्रतिक्रिया की संवेदना को कहते हैं, जो किसी परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण से उत्तेजित होती हैं।

Language–भाषा

Language of Conventional signs. वृत्यात्मक भाषा

Learning–सीखना

अनुभव के आधार पर व्यक्ति के सहज व्यवहार में आये परिवर्तन को ही सीखना कहते हैं। हम व्यक्त तथा अव्यक्त, दोनों ही रूप से, सदा सीखते रहते हैं।

Curwe–सीखने की वक्ररेखा

Method–सीखने की विधियाँ

1. Conditioned response–सम्बन्ध-सहज-क्रिया
2. Imitation–अनुकरण
3. Insight–सूझविधि

4. Negative adaptation–निषेधात्मक-विधि

5.Trial and error–प्रयत्न तथा त्रुटि अथवा क्रियात्मक-विधि

Life-style–जीवन शैली

व्यक्ति की जीवन-शैली उन साधन तथा योजनाओं का सारांश है, जिनके द्वारा वह अपने जीवन की प्रेम तथा आत्म सम्मान की इच्छाओं को तृप्त करना चाहता है। एडलर ने अपने 'वैयक्तिक मनोविज्ञान' में जीवन-शैली के विचार को महत्व दिया है।

Light, Sensations of–प्रकाश-संवेदना—काला, उजला तथा भूरा

Light-waves–प्रकाश-तरंगें

दृष्टि संवेदना को प्रकाश-तरंगों से उत्तेजना मिलती है। प्रकाश तरंगों की लम्बाई की भिन्नता के कारण ही हमें भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रकाश तथा रंगों की संवेदना होती हैं।

Loneliness–एकाकीपन

सामूहिक जीवन की मूलप्रवृत्ति का प्रथमिक संवेग।

Lust–काम-वासना

कामवृत्ति का मूल संवेग।

Make-believe–काल्पनिक खेल

खेल में काल्पनिक घटनाओं को वास्तविकता का रूप प्रदान करना। जैसे, बच्चों का कचहरी, दुकान इत्यादि के खेल।

Mating, Instinct of–कामवृत्ति

काम प्रवृत्ति एक बहुत प्रबल मूलप्रवृत्ति है। जाति-रक्षा इस प्रवृत्ति का ध्येय तथा काम-वासना इसका संवेग है।

Maturity–प्रौढ़ अवस्था

Maze–भूल-भुलैयाँ

McDougall, William–(1871-1938)मैक्डूगल

इनके विचारानुसार मूलप्रवृत्तियाँ केवल जन्मजात ही नहीं

होतीं, वह व्यक्ति के व्यवहार की प्राथमिक प्रेरणा भी होती हैं। प्रत्येक मूलप्रवृत्ति का उद्देश्य तथा संवेग विशिष्ट रहता है। मूलप्रवृत्तियों से प्रेरित अनुभव के आधार पर ही व्यक्ति में स्थायी भाव तथा चरित्र का निर्माण होता है।

Mechanical Aptitude—यान्त्रिक प्रवणता

Melancholic Temperament—उदास स्वभाव

Memory—स्मृति

उपस्थित स्थिति के प्रत्यक्षीकरण से पूर्व अनुभव के संस्कारों का फिर से जाग्रत हो जाना।

स्मृति को चार भागों में बाँटा जा सकता है :—

(i) स्मरण या कण्ठ करना।

(ii) धारणा

(iii) पहचान

(iv) पुनः स्मरण

Economical Methods of Memorising—स्मरण करने की सुगम विधियाँ

(i) Part versus Whole—सम्पूर्ण अथवा आंशिक-विधि

(ii) Spaced versus Unspaced—व्यवहित अथवा अव्यवहित विधि या समय-विभाग अथवा निरन्तर स्मरण-विधि।

(iii) Recitation—पठन-विधि

Mental Age—मानसिक आयु

Age देखिये

Mental Conditions—मानसिक स्थिति या अवस्था

Mental Conflict—मानसिक द्वन्द्व

Conflict देखिये।

Mental Deficiency–बुद्धि की मन्दता
देखिये Deficiency

Metabolism–पाचन-क्रिया

Methods of Psychology–मनोविज्ञान की विधियाँ
(i) Observation–निरीक्षण
(ii) Experiment–परीक्षण
(iii) Introspection–अन्तःप्रेक्षण
(iv) Case History Method–जीवनवृत्त
(v Genetic Method–मूलविकास

Middle Ear–मध्य कान

Mood–मनःस्थिति
व्यक्ति का वह भावात्मक अनुभव जो संवेग के तुरन्त पश्चात् कुछ समय के लिए उसमें बना रहता है और उस संवेग को फिर से उत्तेजित करने में सहायक होता है, किन्तु कभी-कभी मनःस्थिति का कारण व्यक्ति की शारीरिक अवस्था भी होती है।

Morons–मूढ़
बुद्धि लब्धि के व्यक्ति। इनकी मानसिक-तीव्रता स्थूल बुद्धि व्यक्तियों से कुछ कम और मूर्ख से कुछ अधिक होती है। उचित शिक्षा-दीक्षा के मिलने पर वह हस्तकला द्वारा अपनी जीविका कमाने योग्य हो जाते हैं, किन्तु वह उन कामों के योग्य नहीं होते जिनमें व्यक्ति को अपनी सूझ से नई परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। जनसाधारण में इनकी गणना लगभग दो प्रतिशत होती है।

Movement–गति

Moving Stimulus–गतिशील उत्तेजक
गतिशीलता के कारण व्यक्ति का ध्यान सहज ही उसकी ओर आकर्षित हो जाता है।

Muller-Lyer-Illusion–मुलर-लायर-विपर्यय

दृष्टि के वह विपर्यय, जिनमें एक जैसी दो रेखायें, अन्य रेखाओं के जुड़े रहने के कारण एक-सी नहीं जान पड़तीं।

Muscular Sensations– पुट्ठों की संवेदना

Musical Ability -संगीत-योग्यता

Negative Adaptation–सीखने की निषेधात्मक विधि

जब किसी उत्तेजक की सहज प्रतिक्रिया बार-बार निरर्थक सिद्ध होती है, तब उत्तेजक उस प्रतिक्रिया को उत्तेजित करने में असमर्थ हो जाता है।

Negative After-image–निषेधात्मक-अनुबिम्ब या अनुसंवेदना

देखिये After-sensations.

Negative Self-feeling- आत्महीनता की भावना

दैन्य प्रवृत्ति का मूल संवेग। इसे feeling of subjection भी कहते हैं।

Noise–शोर

अव्यवस्थित तथा अप्रिय ध्वनि तरंगों से उत्तेजित श्रोतृ संवेदना।

Non-voluntary Attention–अनैच्छिक ध्यान

जब कोई स्थिति व्यक्ति की सहज प्रवृत्ति से सम्बन्धित होने के कारण उसके ध्यान को बरबस अपनी ओर खींच लेती है, तो उस ध्यान को अनैच्छिक कहते हैं।

देखिये Attention.

Normal Individual–साधारण व्यक्ति

वह सब व्यक्ति जो ठीक औसत से एक प्रमाण विचलन नीचे की ओर के घेर में पाये जाते हैं। ऐसे व्यक्ति जनसाधारण में लगभग दो तिहाई होते हैं।

Nose–नाक

घ्राण संवेदना का अंग।

Novelty–नवीनता

नवीन स्थिति व्यक्ति की जिज्ञासा को उत्तेजित कर उसके ध्यान को सहज आकर्षित कर लेती है।

Numbness, Feeling of–स्तब्ध भावना

Numerical Ability–सांख्यिक योग्यता

Objective Factors of Attention–ध्यान के बाह्य प्रेरक

देखिये Attention.

Observation–निरीक्षण

मनोविज्ञान की वह विधि जिसमें प्रेक्षक घटना का अध्ययन उसकी स्वाभाविक अवस्था में करता है।

Observer–निरीक्षक

Olfactory Sensations or Smell Sensations–घ्राण संवेदना

जब रासायनिक पदार्थ वायु के साथ नाक में प्रवेश कर घ्राणेन्द्रियों को उत्तेजित करते हैं तो व्यक्ति को घ्राण संवेदना होती है। घ्राण संवेदना का वर्गीकरण "Henning" में देखिये।

Optical Illusions–दृष्टि-सम्बन्धी विपर्यय

दृष्टि सम्बन्धी विपर्यय में व्यक्ति को अपनी मानसिक स्थिति, परिस्थिति तथा इन्द्रिय की स्वाभाविक विशेषता के कारण प्रत्यक्ष स्थिति के बोध में भ्रान्ति होती है।

Orange Colour–नारंजी रंग

लाल और पीले के मिश्रण से इसकी संवेदना होती है।

Organic Sensations–अवयव-संवेदना

Otoliths–कर्णकुटी में पड़े छोटे-छोटे पत्थर के कण

सिर के झुकने से, वह स्वयं झुक कर कर्णकुटी में लगे आभ्यंतरिक बालों को भी झुका देते हैं; इससे ज्ञान तन्तुओं को उत्तेजना मिलती है, तथा व्यक्ति को सिर की स्थिति का बोध होता है।

Outer Ear–बाह्य कान

OwnersShip, feeling of–अधिकार-भावना

अर्जन प्रवृति का मूल संवेग।

Pain, Sensation of–पीड़ा-संवेदना

प्राथमिक त्वक् संवेदना।

Pain-spots–पीड़ा-बिन्दु

त्वचा पर के वह बिन्दु जिनकी उत्तेजना से पीड़ा की संवेदना होती है। त्वचा के कुछ भागों में, जैसे आँख के निकट या घुटने के ऊपर ऐसे बिन्दु बाहुल्यता से पाये जाते हैं।

Parental Instinct–पैतृक प्रवृत्ति

इस प्रवृत्ति के उत्तेजन से व्यक्ति में सन्तान के प्रति वात्सल्य की सहज भावना होती है।

Partial Colour-blindness–रंग का आंशिक अन्धापन

Partial Deafness-आंशिक बहिरापन

जब कुछ विशिष्ट ध्वनि-तरंगों की ज्ञानेन्द्रियाँ किसी कारण-वश निष्क्रिय हो जाती हैं तो व्यक्ति उन तरंगों की ध्वनि सुनने में असमर्थ हो जाता है। अन्य ध्वनि-तरंगों की संवेदना बनी रहती है।

Particles–कण

Past Experiences–पूर्व-अनुभव या पूर्वानुभूति

Pavlov, Ivan Petrovitch–पावलॉव

सम्बद्ध-प्रतिक्रिया के विचार के संस्थापक। इस सम्बन्ध में इनके प्रयोग केवल मनोरंजक ही नहीं हैं, उनसे हमें सीखने की इस विधि के नियमों का विस्तारपूर्वक वर्णन भी मिलता है। "Conditioned-Response" देखिये।

Perception–प्रत्यक्षीकरण

संवेदना से प्रत्यक्ष स्थिति का बोध। संवेदना से पूर्व-अनुभव के संस्कार इतनी तेज़ी तथा अव्यक्त रूप से उत्तेजित होते हैं कि व्यक्ति को प्रत्यक्षीकरण का अनुभव, अर्थात् प्रत्यक्ष स्थिति का बोध, ही प्राथमिक लगता है।

Performance Tests–क्रियात्मक परीक्षाएँ

वह परीक्षाएँ जिनसे विशेष क्रियाओं द्वारा व्यक्ति की बुद्धि तथा योग्यता का अनुमान लगाया जाता है।

Personality–व्यक्तित्व

व्यक्ति-विशेष की मानसिक तथा शारीरिक विलक्षणताओं के सामूहिक योग से उसके व्यवहार में जो "विशिष्ट एकत्व" आ जाता है, उसे व्यक्तित्व कहते हैं।

Phlegmatic Temperament–आलस्य-स्वभाव

Physiological-Limit–सीखने में शारीरिक क्षमता की सीमा

किसी क्रिया में इस अवस्था पर पहुँचने के उपरान्त व्यक्ति उसमें और उन्नति नहीं कर सकता।

Pitch–ध्वनि का उतार-चढ़ाव

Plateau–सीखने का पठार

व्यक्ति कुछ सीखने के पश्चात् थोड़े समय के लिए उसमें कोई भी उन्नति नहीं करता। वक्ररेखा पर इस अवस्था के चित्रण को सीखने का पठार कहते हैं।

Pleasant Feeling–सुखद भावना

Positive after image–विध्यात्मक अनुबिम्ब या अनुसंवेदना

देखिये after-sensation.

Positive Self Feeling–आत्म-अभिमान-भावना

Possessiveness, Feeling of–अधिकार-भावना

अर्जन प्रवृत्ति का मूल-संवेग।

Practical Test–क्रियात्मक परीक्षण

देखिये Performance Test.

Primary attention–अनैच्छिक ध्यान

देखिये attention.

Primary Emotions–मूल-संवेग

मैक्डूगल के विचारानुसार प्रत्येक मूलप्रवृत्ति का संवेग विशिष्ट होता है, जो मूलसंवेग कहलाते हैं।

Primary Secondary attention–ऐच्छिक-अनैच्छिक ध्यान

देखिये attention.

Problem–समस्या

Proprioceptors–स्नायविक-संवेदना की ज्ञानेन्द्रियाँ

Psycho analysis–मनोविश्लेषणवाद

मनोविश्लेषणवाद का मत है कि व्यक्ति की भावना-ग्रन्थियाँ अज्ञात रूप से उसके व्यवहार को प्रभावित करती रहती हैं, जिनका सही ज्ञान व्यक्ति के स्वप्न तथा अन्य स्वतः व्यवहार के विश्लेषण अथवा अध्ययन द्वारा हो सकता है।

Psycho-analytic Method–मनोविश्लेषणात्मक-विधि

वह विधि जिसके प्रयोग से अचेतनमन तथा भावना ग्रंथियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। स्वप्न तथा स्वतः व्यवहार का विश्लेषण इस विधि के मुख्य साधन हैं।

Reaction–प्रतिक्रिया

Reasoning–तर्क

वह चिन्तन जिस में व्यक्ति विभिन्न विचारों के पारस्परिक अव्यक्त सम्बन्ध को स्पष्ट करता है। तर्क से हम केवल विशिष्ट उदाहरणों से सामान्य नियम पर नहीं पहुँचते, किन्तु सामान्य नियम का विशिष्ट उदाहरणों पर क्या प्रभाव है, इस का भी अनुमान लगाते हैं।

Recall–पुनःस्मरण

प्रत्यक्ष स्थिति के संकेत भाव से ही उसके प्रसंग, घटनाओं या विषय का याद आ जाना।

Correct–यथातथ्य पुनःस्मरण

Partial–आंशिक पुनःस्मरण

Recency, Law of–सद्यस्कता का नियम

थॉर्नडाइक का मत, प्रत्येक प्रयत्न में सफल क्रिया अन्तिम रहती है, इसलिए उसका प्रभाव उसके तुरन्त पश्चात् के प्रयत्न पर गहरा रहता है।

Receptive imagination–ग्रहणात्मक कल्पना

देखिये imagination.

Recitation–पठन-विधि

किसी विषय को स्मरण करते हुए बीच बीच में उसका पाठ करने से विषय सुगमता से याद हो जाता है।

Recognition–पहचान

पूर्वानुभूति के कारण प्रत्यक्ष स्थिति का परिचित लगना।

Recreative imagination–मनोरञ्जनात्मक कल्पना

देखिये imagination.

Red–लाल

प्राथमिक रंग-संवेदना।

Reflex–सहज क्रिया

Reinforcement–पुष्टि

Relaxation–श्लथ भावना

Repetition–आवृत्ति

Repulsion–निवृत्ति-प्रवृत्ति

इस प्रवृत्ति को हानिकर पदार्थों की उपस्थिति से उत्तेजना मिलती है, और व्यक्ति में घृणाप्रद पदार्थों को अपने से अलग या दूर करने की प्रेरणा होती है।

Retention–धारणा

मस्तिष्क की वह स्थिति जिस में पूर्व अनुभव के संस्कार पड़े रहते हैं।

Retina–अक्षिपटल

आँख का वह भाग जिसमें दण्ड और सूचियाँ पाई जाती हैं।

Retrospection–पश्चाद्दर्शी अन्तःप्रेक्षण

किसी मानसिक प्रक्रिया के उपरान्त स्मृति की सहायता से उसका अन्तःप्रेक्षण।

Rods–दण्ड

देखिये Eye.

"S" Factor–योग्यता का विशिष्ट खण्ड

देखिये "Spearman".

Salty-Sensation–नमकीन रस-संवेदना

नमकीन की रसेन्द्रियाँ बहुधा जिह्वा के अग्र-भाग तथा उसके दाएँ बाएँ किनारों के निकट के भाग पर पाई जाती हैं, और उनके उत्तेजित होने से नमकीन की रस-संवेदना होती है।

Sanguine, temperament–प्रफुल्ल स्वभाव

Satisfaction–सन्तोष

Secondary Attention–ऐच्छिक ध्यान

देखिये Attention.

Secondary Emotions–गौण-संवेग

यह दो या अधिक मूलप्रवृत्तियों के संवेगों का परस्पर मिश्रण होता है। स्थायी भावों के संवेग प्रायः गौण होते हैं।

Selectivity of Attention–ध्यान की चयनात्मकता

देखिये Attention.

Self-assertion, instinct of–आत्मगौरव की मूल प्रवृत्ति

आत्मगौरव मूलप्रवृत्ति की उत्तेजना वह सामाजिक स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपने को किसी दूसरे से अधिक महत्वपूर्ण मानता है। आत्माभिमान इस प्रवृत्ति का मूल संवेग है। एडलर ने आत्म गौरव मूलप्रवृत्ति को अपने वैयक्तिक मनोविज्ञान सम्प्रदाय में बहुत श्रेष्ठ स्थान दिया है।

Self-Preservation–आत्मरक्षा

फ्रायड के मतानुसार दो मूलप्रवृत्तियाँ, (i) कामवृत्ति, (ii) आत्म रक्षा ही व्यक्ति के व्यवहार की मूल प्रेरक हैं।

Self-Regard, Sentiment of–आत्म-भाव

व्यक्ति का अपने प्रति स्थायी भाव। व्यक्ति के विभिन्न अनुभव निजी होने के कारण उसमें अपनेपन या ममत्व का भाव पैदा करते हैं। आत्मभावना का विषय व्यक्ति का 'ममत्व' ही रहता है।

Semicircular Canals–अर्धवृत्ताकार नालियाँ

देखिये Ear.

Sensation–**संवेदना**

ज्ञानेन्द्रियों की उत्तेजना से उद्दीप्त प्राथमिक ज्ञानात्मक अनुभव। पूर्वानुभूति के कारण संवेदना तुरन्त प्रत्यक्षीकरण में परिणत हो जाती है। शुद्ध संवेदना का अनुभव केवल कुछ दिन के बालक को ही होता है।

Sense Organs–**ज्ञानेन्द्रियाँ**

कान नाक आँख इत्यादि। प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय की उत्तेजना तथा संवेदना विशिष्ट प्रकार की रहती है।

Sensory nerves–**ज्ञान-तन्तु**

Sentiment–**स्थायीभाव**

व्यक्ति की वह मनोवृत्तियाँ जो अनुभव के कारण उसमें किसी वस्तु विशेष या घटना के प्रति बन जाती है। मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति के स्थायीभावों के संगठन को चरित्र माना है।

Sex, instinct of–**काम-प्रवृत्ति**

देखिये Mating.

Sex desires–**काम-वासना**

Sherrington, Charles S.–**शेरिंगटन**

शेरिंगटन ने प्रयोग से जेम्स-लांगे-संवेग-सिद्धान्त की जाँच की और सिद्ध किया कि अन्तरावयव संवेदना के अभाव में भी प्राणी के व्यवहार से उनके संवेगात्मक अनुभवों का परिचय मिलता है।

Shifting of Attention–**ध्यान का स्थानान्तरण**

ध्यान का स्वतः (स्वयं) वस्तु या स्थिति के भिन्न भिन्न भागों की ओर आकर्षित होते रहना।

Silent Speech–**मौन वाणी**

व्यवहारवाद के अनुसार व्यक्ति का चिन्तन वास्तव में उसकी मौन वाणी है।

Situation–स्थिति

कई एक उत्तेजनाओं वह समूहीकरण जो व्यक्ति की प्रतिक्रिया का कारण हो।

Size of the Stimulus–उत्तेजक का आयतन

Skin Sensations–त्वक्-संवेदना

देखिये Cutaneous Sensations.

Smell Sensations–घ्राण-संवेदना

देखिये Olfactory Sensations.

Sound–ध्वनि

ध्वनि-संवेदना की ज्ञानेन्द्रियाँ आंतरिक कान के चक्राकार कोष्ठ में पाई जाती है, जिन्हें ध्वनि तरंगों से उत्तेजना मिलती है।

Classification of–ध्वनि का वर्गीकरण

(i) Noise–शोर

(ii) Tone–स्वर

Characteristics of–ध्वनि की विशेषताएँ

Loudness–ऊँचा-धीमापन

(ii) Pitch–चढ़ाव-उतार

(iii) Timbre–उसकी अपनी विशिष्ट विशेषता

Sour Sensations–खट्टे की संवेदना

खट्टे की रसेन्द्रियाँ बहुधा जिह्वा के दाएँ बाएँ किनारों पर पाई जाती हैं, और उनके उत्तेजित होने पर खटास का अनुभव होता है।

Spaced versus Unspaced Method of Memorising–

स्मरण करने की व्यवहित तथा अव्यवहित (निरन्तर) विधि

प्रयोग से यह सिद्ध हो चुका है कि साधारणतः किसी पाठ को

निरन्तर स्मरण करने से समय तथा परिश्रम दोनों ही अधिक लगते हैं, और इस प्रकार कण्ठ किये पाठ की स्मृति भी समय-विभाग अथवा व्यवहित विधि की अपेक्षा कमज़ोर रहती है।

किन्तु यदि (i) पाठ छोटा हो, या

(ii) समय का अभाव हो, या

(iii) पाठक स्वभाव से ही अधीर हो, तो निरन्तर-स्मरण विधि का प्रयोग किया जा सकता है।

Spatial Thinking–दैशिक चिन्तन

Spearman–स्पीयरमैन

स्पीयरमैन के सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक योग्यता को दो खण्डों में विभाजित किया जा सकता है।

(क) Special Ability–अर्थात् विशिष्ट खण्ड "S"

किसी कला या विषय का विशिष्ट खण्ड उसकी अपनी विशेषता है। एक व्यक्ति में बहुत से विशिष्ट गुण भिन्न भिन्न मात्रा में पाये जाते हैं;

(ख) "General Ability"–अर्थात् "सामान्य खण्ड" (G)

सामान्य खण्ड को बुद्धि भी कहते हैं। सामान्य खण्ड में व्यक्तिगत भेद अवश्य है, किन्तु एक व्यक्ति की विभिन्न योग्यताओं में इस की मात्रा एक समान है।

कुछ कला या योग्यताओं में विशिष्ट खण्ड प्रधान होता है, और कुछ योग्यताएँ अधिकतर सामान्य खण्ड पर निर्भर करती हैं।

Spinal Cord–सुषुम्ना

Standard Deviation–प्रमाण-विचलन

औसत से व्यक्तिगत विचलन के वर्ग के जोड़ की औसत का वर्गमूल।

Stanford Revision Binet-Simon Test—स्टैनफर्ड संशोधित बीने-साइमन बुद्धि-परीक्षा

बीने के देहान्त के पश्चात् बीने साइमन की वैयक्तिक बुद्धि परीक्षा का संशोधन टरमन और उसके साथियों ने किया और वह स्टैनफर्ड-संशोधित-बीने-साइमन बुद्धि परीक्षा के नाम से १६१६ में प्रकाशित हुआ। इससे मानसिक आयु तथा बुद्धि-लब्धि दोनों ही का अनुमान लगाया जा सकता है।

Statistics—परिगणन विद्या

Stern, Ludwig, Wilhelm—स्टर्न

बुद्धि-लब्धि के महत्वपूर्ण विचार के संस्थापक। बुद्धि लब्धि के सम्बन्ध में "Intelligence Quotient" देखिये।

Stimulate—उत्तेजित करना

Stimulus—उत्तेजक

वह शक्ति जिसके सम्पर्क या प्रभाव से ज्ञानेन्द्रियों में उत्तेजना होती है। प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय का उत्तेजक विशिष्ट होता है।

Subconscious mind—अवचेतन मन

Subconsciousness—अवचेतना

Subjection, Feeling of—आत्महीनता की भावना

दैन्य प्रवृत्ति का मूल संवेग।

Subjective Factors of Attention—ध्यान के अंतरंग प्रेरक

देखिए Attention.

Submission, instinct of—दैन्य प्रवृत्ति

इस मूलप्रवृत्ति की उत्तेजना वह सामाजिक स्थिति है, जिसमें व्यक्ति अपनी अपेक्षा किसी दूसरे को अधिक महत्व पूर्ण मानता है।

न्यूनता (अथवा आत्महीनता) इस प्रवृत्ति का मूल संवेग है।

Sweet Sensations–मीठे की संवेदना

मीठे की रसेन्द्रियाँ बहुधा जिह्वा के अग्रभाग पर पाई जाती हैं, जिनके उत्तेजित होने से मिठास का अनुभव होता है।

Sympathy–सहानुभूति

Taste Sensations–रस संवेदना

जिह्वापर पर लगी रसेन्द्रियों की उत्तेजना से हमें चार प्रकार की प्राथमिक रस संवेदना होती है, अर्थात् मीठा, खट्टा, कड़वा और नमकीन।

Temperament–स्वभाव

विशिष्ट प्रकार के संवेग के प्रति व्यक्ति का सहज झुकाव। स्वभाव का वर्गीकरण इस प्रकार है :—
प्रफुल्ल, पित्त अथवा क्रोधी उदास, अलस।

Temperature–तापमान

Tenderness–वात्सल्य

पैतृक-मूल प्रवृत्ति का मूल संवेग।

Tension–तनाव

Terman, Lewis Madison–टरमन

इन्होंने बीने-साइमन बुद्धि-परीक्षा में संशोधन कर उसे स्टैनफर्ड बीने-साइमन-बुद्धि-परीक्षा के नाम से १६१६ में प्रकाशित किया। इस संशोधित बुद्धि परीक्षा से मानसिक आयु के अतिरिक्त व्यक्ति की बुद्धि-लब्धि का भी पता लगता है। बुद्धि-लब्धि के लिए "Intelligence-Quotient" देखिए।

Tetrad Equation–टेट्राड ईक्वेशन

स्पीयरमैन की वह परिगणन विधि जिसके आधार पर उन्होंने

प्रत्येक योग्यता को दो खण्डों में विभाजित किया है, अर्थात् (i) सामान्य खण्ड या "G" और (ii) विशिष्ट खण्ड या "S"। इनके लिए Spearman भी देखिए।

Thinking–चिन्तन

पूर्व अनुभव के आधार पर किसी समस्या को मन ही मन हल करने का प्रयास, तथा विभिन्न अनुभवों में पारस्परिक संबंध की खोज। किन्तु व्यवहार वाद के अनुसार व्यक्ति की अव्यक्त वाणी ही उसका चिन्तन है।

Third dimension–गहराई

Thorndike, Edward Lee–थॉर्नडाइक

सीखने की साधारण रीति पर प्रकाश डालने के लिए थॉर्नडाइक ने पशुवर्ग पर बहुत से प्रयोग किये और उनके आधार पर सीखने के तीन मुख्य नियम बनाये :—

(i) आवृत्ति का नियम।

(ii) सद्यस्कता का नियम।

(iii) प्रभाव का नियम।

बुद्धि के विषय में इनका विचार है कि वह व्यक्ति की विभिन्न योग्यताओं का समूहीकरण है।

Thurstone–थर्स्टन

थर्स्टन के विचारानुसार प्राथमिक योग्यताएँ दस प्रकार की हैं, अर्थात् :—(१) वाचिक योग्यता, (२) वाचिक तथा प्रतीकात्मक कल्पना शक्ति, (३) सांख्यिक योग्यता, (४) विचार शक्ति, (५) स्मृति, (६) दैशिक चिन्तत, (७) क्रियात्मक योग्यता, (८) यान्त्रिक प्रवणता, (९) हस्त कौशल, (१०) संगीत योग्यता।

इन योग्यताओं में जो सामान्य खण्ड है, वही व्यक्ति की बुद्धि

है। इसलिए किसी क्रिया विशेष में सफलता "सामान्य खण्ड" के अतिरिक्त "प्राथमिक योग्यता" पर भी बहुत हद तक निर्भर है।

Thyroid Gland–चुल्लिका ग्रन्थि

Timbre–ध्वनि की अपनी विशेषता

Tone–स्वर

Tongue–जिह्वा

रस संवेदना का अंग।

Touch, sensation–स्पर्श संवेदना

Touch spots–स्पर्श-बिन्दु

त्वचा पर के वे बिन्दु जिनके छूने से स्पर्श-संवेदना होती है।

Trials–प्रयत्न

Trial & Error method–प्रयत्न तथा त्रुटि, या सीखने की क्रियात्मक विधि

जब समस्या व्यक्ति की बुद्धि की अपेक्षा अधिक जटिल रहती है तो वह उसे बार-बार के प्रयत्नों से सीखता है। प्रयत्नों में त्रुटियाँ स्वतः कम होती जाती हैं।

Twilight–छाया

Uncouscious Mind–अचेतन मन

यद्यपि व्यवहारवाद के अतिरिक्त सब मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय अचेतनमन के अस्तित्व को मानते हैं, परन्तु उनके विषयों में परस्पर भेद बहुत पाया जाता है। फ्रायड के कथनानुसार व्यक्ति की अतृप्त तथा अस्वीकृत इच्छाएँ ही अचेतनमन की धारणा है, किन्तु अन्य मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि वह मनोवृत्तियाँ तथा संस्कार जो अज्ञात रूप से व्यक्ति के व्यव-

हार को प्रभावित करते हैं, उसके अचेतनमन के आवश्यक अंग हैं।

Ungratified desires–अतृप्त इच्छाएँ

Verbal ability–वाचिक योग्यता

Vestibule–कर्ण कुटी

इसमें लगी ज्ञानेंद्रियों को शरीर तथा विशेषकर सिर के हिलने से उत्तेजना मिलती है, जिससे व्यक्ति को अपनी शारीरिक स्थिति का ज्ञान होता है।

Violet-बैंजनी

Visceral sensations–दृष्टि-संवेदना

देखिये eye.

Vocal Organ–वाचिक अवयव

Voluntary Attention–ऐच्छिक ध्यान

जब व्यक्ति अपनी किसी विशेष इच्छा के कारण, अपने ध्यान को किसी ऐसे विषय पर लगाता है, जो स्वतः ही उसे अपनी ओर आकर्षित नहीं करता, तो उस ध्यान को ऐच्छिक कहते हैं।

Warmth, Sensation of–उष्ण-संवेदना

Warmth Spots–उष्ण-बिन्दु

त्वचा पर के वह बिन्दु जिनकी उत्तेजना से उष्ण संवेदना होती है।

Watson, John Broaddus–वाटसन

व्यवहारवाद के संस्थापक—देखिये "Behaviourism"

Waves, Light–प्रकाश तरंगें

Waves, Sound–ध्वनि-तरंगें

Weber, Ernst Heinrich–वेबर

वेबर ने उत्तेजक तथा संवेदना की तीव्रता के परस्पर सम्बन्ध

को जाँचने के लिये बहुत प्रयोग किये और इस परिणाम पर पहुँचे कि इसका परस्पर सम्बन्ध आनुपातिक है। इस काम को फेक्नर ने पूरा किया।

Weber-Fechner, Law–**वेबर-फेक्नर का नियम**

इस नियम के अनुसार संवेदना की तीव्रता में समान वृद्धि या कमी करने के लिये उत्तेजक को क्रमशः गुणा या भाग करना होता है।

Wertheimer, Max–**वरदेमर**

अवयवीवाद के एक प्रवर्तक तथा कॉफका (Koffka) और कोहलर (Kohler) के साथी। इन्होंने 'गति के प्रत्यक्षीकरण' की व्याख्या द्वारा यह सिद्ध किया कि सम्पूर्ण स्थिति अपने विभिन्न अंगों का केवल जोड़ ही नहीं होती, बल्कि उनके परस्पर सम्बन्ध से उसमें विशिष्ट गुण पैदा हो जाते हैं।

Whole versus Part Method of Memorising–**स्मरण करने की सम्पूर्ण या विभाग-विधि**

प्रयोग द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि किसी पाठ को कण्ठ करने के लिए साधारणतया सम्पूर्ण विधि के प्रयोग से समय तथा परिश्रम दोनों ही कम लगते हैं और इस विधि के प्रयोग से आंशिक-स्मरण-विधि की अपेक्षा स्मृति भी अधिक दृढ़ रहती है। किन्तु, यदि :—

(i) पाठ बहुत लम्बा हो, या
(ii) उसके कुछ भाग अधिक कठिन हों, या
(iii) पाठक स्वभाव से अधीर हो, तो उस विषय को एक बार सम्पूण रूप से पढ़ने के पश्चात् विभाग विधि का प्रयोग किया जा सकता है।

Wonder–**आश्चर्य**

जिज्ञासा मूलप्रवृत्ति का संवेग ।

Yellow–**पीला**

प्राथमिक रंग संवेदना ।

Yellow spot–**पीत-बिन्दु**

देखिये Fovea.

पारिभाषिक शब्द-सूची

अंतःप्रेरणा—Introspection.
अंतरंग प्रेरक (ध्यान के)—Subjective factors of attention.
अंतरावयव—Internal organs.
अंतरावयव-संवेदना—Visceral sensations.
अंतर्मुखी—Introvert.
अंतश्चेतना मनोविज्ञान—Depth Psychology.
अक्षिपटल—Retina.
अचेतन मन—Unconscious mind.
अतृप्त इच्छाएँ—Ungratified desires.
अधिकार भावना—Feeling of Possessiveness or ownership.
अनुकरण—Imitation.
अनुगम तर्क—Inductive Reasoning.
अनुबन्ध गुणक—Coefficient of correlation.
अनुभव या अनुभूति—Experience.
अनुसंवेदना—After sensation.
अनैच्छिक ध्यान—Primary or non voluntary attention.
अन्वेषण—Exploration.
अपराधी बालक—Juvenile delinquent.
अभ्युपगम तर्क—Deductive reasoning.
अमूर्त प्रत्यय—Concept abstract.
अरिस्टाटल विपर्यय—Aristotle's Illusion.
अर्जन प्रवृत्ति—Instinct of acquisition.

अर्जित रुचियाँ—Acquired Interests.
अर्ध वृत्ताकार नालियाँ—Semi circular canals.
अलस स्वभाव—Phlegmatic temperament.
अवयव की ज्ञानेन्द्रियाँ—Introceptors.
अवयव-संवेदना—Organic sensations.
अव्यक्त वाणी—Inner speech.
अव्यक्त व्यवहार—Implicit behaviour.
अस्थिरता (ध्यान)—Fluctuation.
आँख—Eye.
आंतरिक कान—Inner ear.
आंशिक बहरापन—Partial deafness.
आंशिक रंग अन्धापन—Partial colour-blindness.
आत्म अभिमान भावना—Feeling of Elation or Positive Self feeling of self assertiveness.
आत्मगौरव प्रवृत्ति—Instinct of self assertion.
आत्मभाव—Sentiment of self regard.
आत्मरक्षा की प्रवृत्ति—Instinct of self preservation.
आत्महीनता की भावना—Feeling of Inferiority or Negative self feeling.
आदत—Habit.
आर्मी अल्फ़ा तथा आर्मी बीटा बुद्धि-परीक्षाएँ—Army Alpha and Army Beta Intelligence Tests.
आयतन—Size.
आविष्कार—Invention.
आवृत्ति—Repetition.
आवृत्ति का नियम—Law of Exercise.

इच्छा—Desire.
इच्छात्मक अनुभव—Conative experience.
उत्तेजक—Stimulus.
उत्तेजक का आयतन—Size of the stimulus.
उत्तेजक की तीव्रता—Intensity of the stimulus.
उत्तेजना—Excitement.
उत्तेजित करना—Stimulate.
उदास स्वभाव—Melancholic temperament.
उष्ण-बिन्दु—Heat spots.
उष्ण संवेदना—Warm sensations.
एकाकीपन—Lonelines.
एडलर—Adler, Alfred.
ऐच्छिक-अनैच्छिक ध्यान—Derived Primary attention or Primary secondary attention or Involuntary attention.
ऐच्छिक ध्यान—Voluntary attention.
कडुआ—Bitter.
कण—Particles.
करुणा—Distress.
कर्णकुटी—Vestibule.
कर्णकुटी में पड़े कण—Otoliths.
कल्पना—Imagination.
कल्पना के प्रकार—Kinds of Imagination.
क्षमता—Capacity.
कान—Ear.
कॉफ़्का—Koffka, Kurt

काम-प्रवृत्ति—Sex Instinct.
काल्पनिक खेल—Make-believe.
किशोरावस्था—Adolescence.
क्रिया—Activity
क्रियात्मक परीक्षाएँ—Performance test or Practical Test.
कैनन—Cannon Walter Bradford.
कोहलर—Kohler Wolfgang.
क्रोध—Anger.
खट्टे की संवेदना—Sour-sensation.
गति—Movement.
गतिशील उत्तेजक—Moving stimulus,
गति-संवेदना—Kinesthetic sensations.
गहराई—Third Dimension.
गाल—Gall, Franz Josef.
गाल्टन—Galton, Francis.
गौण-संवेग—Secondary emotions.
ग्रन्थियाँ—Glands.
घृणा—Disgust.
घ्राण-संवेदना—Olfactory or smell sensations.
चक्कर आने की संवेदना—Sensation of giddiness.
चक्राकार कोष्ठ—Cochlea.
चयनात्मकता—Selectivity.
चरित्र—Character.
चिन्तन—Thinking.
चुल्लिका ग्रन्थि—Thyroid gland.
चेतनता—Consciousness.

चेतन मन—Consious mind.
जड़—Idiot.
जन्मजात—Innate.
जिज्ञासा-प्रवृत्ति—Instinct of curiosity.
जिह्वा—Tongue.
जीवनवृत्त-विधि—Case history method.
जीवनशैली—Life style.
जेम्स—James, William.
जेम्स लांगे—James-Lange, Theory of Emotions.
ज्ञान-तन्तु—Sensory Nerves.
ज्ञानात्मक अनुभव—Cognitive experience.
ज्ञानेन्द्रियाँ—Sense organs.
ज्ञानेन्द्रियों की तीव्रता—Acuity.
टर्मन—Terman Lewis, Madison.
टेट्राड ईक्वेशन—Tetrad Equation.
तनाव—Tension.
तर्क—Reasoning.
तापमान—Temperature.
तीव्रता—Intensity.
तीव्र-बुद्धि बालक—Bright Child.
त्रुटि—Error.
त्वक्-संवेदना—Cutaneous or skin sensation.
त्वचा—Skin.
थकान—Fatigue.
थर्स्टन—Thurstone.
थॉर्नडाइक—Thorndike, Edward Lee.

दंड—Rods.
दिवास्वप्न—Day dreams.
दैन्य प्रवृत्ति—Instinct of submission.
दैशिक चिन्तन—Spatial perception.
दोनों आँखों की प्रतिद्वन्द्विता—Binocular rivalry.
दृष्टि-संबंधी विपर्यय—Optical illusion.
दृष्टि-संवेदना—Visual sensations.
द्वाभा—Twilight.
द्विकर्ण-संवेदना—Binaural hearing.
द्विनेत्र दृष्टि—Binocular vision.
धारणा—Retention.
धुँधला प्रकाश—Dim Light.
ध्यान—Attention.
ध्यान का उच्चाटन—Distraction.
ध्यान का स्थानान्तरण—Shifting of attention.
ध्यान की अस्थिरता—Fluctuation of attention.
ध्यान की चयनात्मकता—Selectivity of attention.
ध्यान के अंतरंग प्रेरक—Subjective factors of attention.
ध्यान के बाह्य प्रेरक—Objective factors of attention.
ध्वनि—Sound.
ध्वनि का ऊँचा-धीमापन—Loudness.
ध्वनि का चढ़ाव-उतार—Pitch.
ध्वनि की अपनी विशेषता—Timbre.
ध्वनि-तरंगें—Sound waves.
नमकीन—Salty.
नवीनता—Novelty.

नाक—Nose.
नारंजी रंग—Orange colour.
निरीक्षक—Observer.
निरीक्षण—Observation.
निवृत्ति-प्रवृत्ति—Instinct of repulsion.
निषेधात्मक अनुबिम्ब या अनुसंवेदना—Negative after image or Negative after sensation.
निषेधात्मक विधि—Negative adaptation.
नीला—Blue.
नैसर्गिक इच्छाएँ—Unlearned desires.
पठन-विधि—Recitation.
परिगणन विद्या—Statistics.
परिवेश—Environment.
परीक्षण—Experiment.
पलायन प्रवृत्ति—Instinct of Escape.
पश्चाद्दर्शी अन्तःप्रेक्षण—Retrospection.
पहचान—Recognition.
पाचन-क्रिया—Metabolism.
पावलोव—Pavlov, Ivan Petrovitch.
पिछड़ा हुआ बालक—Backward child.
पित्त-प्रकृति अथवा क्रोधी—Choleric.
पीड़ा-बिन्दु—Pain spots.
पीड़ा-संवेदना—sensation of Pain.
पीत-बिन्दु—Yellow spot or Fovea.
पीला—Yellow.
पुट्ठों की संवेदना—Muscular sensations.

पुनः स्मरण—Recall.
पुष्टि—Reinforcement.
पूरक रंग—Complementary or antagonistic colours.
पूर्व अनुभव या पूर्वानुभूति—Past experiences.
पूर्वानुवर्ती प्रत्यक्ष ज्ञान—Appreception.
पैतृक प्रवृत्ति—Parental Instinct.
प्रकाश तरंगें—Light waves.
प्रकाश संवेदना—Light sensation.
प्रतिक्रिया—Reaction.
प्रत्यक्षीकरण—Perception.
प्रत्यय—Concept.
प्रफुल्ल—Sanguine.
प्रभाव का नियम—Law of effect.
प्रमाण विचलन—Standard Deviation.
प्रयत्न—Trial.
प्रयत्न तथा त्रुटि विधि—Trial & Error method of learning.
प्राथमिक—Primary.
प्राथमिक योग्यता—Primary ability.
प्रेरणा—Impulse or conation.
प्रोत्साहन—Incentive.
प्रौढ़ अवस्था—Maturity.
प्रौढ़ व्यक्ति—Adult.
फेक्नर—Feckner, Gustav Theodor.
फ्रायड—Freud, Sigmund.
बहरापन—Deafness.
बहिर्मुखी—Extrovert.

बाल्यकाल—Childhood.
बाह्य कान—Outer ear.
बाह्य प्रेरक—Objective factors.
बाह्योत्तेजित संवेदना की ज्ञानेन्द्रियाँ—Extroceptors.
बीने—Binet, Alfred.
बुद्धि—Intelligence.
बुद्धि का विकास—Development of Intelligence.
बुद्धि का वितरण—Distribution of Intelligence.
बुद्धि की मन्दता—Mental deficiency.
बुद्धि परीक्षा—Intelligence Test.
बुद्धि लब्धि—Intelligence Quotient.
बैंजनी—Violet.
भय—Fear.
भावना—Feeling.
भावना ग्रंथि—Complex.
भावात्मक अनुभव—Affective experience.
भाषा—Language.
भूरा—Gray.
भूलभुलैयाँ—Maze.
भ्रम—Hallucination.
मैक्डूगल—McDougall, William.
मध्यकान—Middle ear.
मध्यमुखी—Ambivert.
मनोरञ्जनात्मक कल्पना—Recreative imagination.
मनोविज्ञान की विधियाँ—Methods of Psychology.
मनोविश्लेषणवाद—Psycho-analysis.

मनोविश्लेषणात्मक विधि—Psycho-analytic method.
मनःस्थिति—Mood.
मन्दबुद्धि—Feeble mind.
माध्यिक—Median.
मानसिक आयु—Mental age.
मानसिक क्रिया—Mental activity.
मानसिक द्वंद्व—Mental conflict.
मानसिक स्थिति या अवस्था—Mental conditions.
मिश्रण—Blend.
मीठे की संवेदना—Sweet sensation.
मुलर लायर विपर्यय—Muller-Lyer illusion.
मूढ़—Moron.
मूर्ख—Imbecile.
मूर्त्त प्रत्यय—Concept concrete.
मूल विकास विधि—Genetic method.
मूल संवेग—Primary emotions.
मौन वाणी—Silent speech.
यांत्रिक योग्यता—Mechanical aptitute.
युयुत्सा प्रवृत्ति—Instinct of combat.
योग्यता—Ability.
रंग-अन्धापन—Colour blindness.
रस संवेदना—Taste.
रिक्त विन्दु—Blind spot.
रीति—Mode.
रुचि—Interest.
लांगे—Lange, Carl.

लाल—Red.
लैड फ्रैंकलिन—Ladd, Franklin Christine.
वर्देमर—Wertheimer, Max.
वाचिक अवयव—Verbal Organ.
वाचिक योग्यता—Verbal ability.
वाट्सन—Watson, John Broaddus.
वात्सल्य—Tenderness toward children.
वासना—Lust.
वास्तविक आयु—Chronological age.
विध्यात्मक अनुबिम्ब या अनुसंवेदना—Positive after image.
विपर्यय—Illusion.
विस्मृति—Forgetting.
विशिष्ट खंड (योग्यता)—'S' Factor.
वृत्यात्मक भाषा—Conventional signs of language.
वेबर —Weber, Ernst Heinrich.
वेबर फेक्नर नियम—Weber-Fechner Law.
वैयक्तिक भिन्नता —Individual differences.
वैयक्तिक मनोविज्ञान —Individual Psychology.
व्यक्तित्व—Personality.
व्यवहार--Behaviour.
व्यवहारवाद—Behaviourism.
व्यवहित अथवा अव्यवहित स्मरण विधि (सीखना) या समय-विभाग अथवा निरन्तर स्मरण विधि—Spaced versus, Unspaced method.
शरणागति प्रवृत्ति—Instinct of appeal.
शारीरिक क्रिया—Bodily activity.

शारीरिक क्षमता की सीमा—Physiological limi

शारीरिक प्रतिक्रिया—Bodily reactions.

शिक्षा मनोविज्ञान—Educational Psychology.

शीत बिन्दु—Cold spot.

शीत संवेदना—Sensation of cold.

शेरिंगटन—Sherrington, Charles S.

शैशव—Infancy.

शोर—Noise

श्रोतृ संवेदना—Sensation of hearing.

श्रोतृ संवेदना का अंग—Auditory sense organ.

श्लथ भावना—Relaxation.

संकेत—Cue.

संगीत योग्यता—Musical ability.

संतोष—Satisfaction.

संपूर्ण अथवा आंशिक स्मरण विधि—Whole versus part method of memorising.

संपूर्ण रंग अन्धापन—Total Colour blindness.

संबद्ध सहज प्रतिक्रिया—Conditioned response.

संवेदना—Sensation.

संवेदना की तीव्रता—Intensity of sensation.

संस्कार—Engrams.

सांख्यिक योग्यता—Numerical ability.

सद्यस्कता का नियम—Law of Recency.

समय विभाग अथवा निरंतर स्मरण विधि—Spaced Versus Unspaced method of memorising.

समस्या—Problem.

सहज क्रिया—Reflex.

सहज क्रिया की श्रृंखला—Chain Reflex.

सहानुभूति—Sympathy.

साइमन बुद्धि परीक्षा—Binet-simon test

साधारण बालक—Average Child.

सामान्य खंड (योग्यता) —'G' General Factor.

सामूहिक जीवन—Group Life.

सामूहिक जीवन की प्रवृत्ति—Instinct of Gregariousness

सामूहिक बुद्धि परीक्षा—Group Intelligence Test.

सीखना—Learning.

सीखने का पठार—Plateau.

सीखने की निषेधात्मक विधि—Negative adaptation.

सीखने की वक्ररेखा—Learning curve.

सुखद भावना—Pleasant feeling.

सुषुम्ना—Spinal cord.

सूचियाँ—Cones.

सूझ—Insight.

सृजन प्रवृत्ति—Instinct of Creativeness.

सृजन भावना—Feeling of Creativeness.

सृजनात्मक कल्पना—Creative imagination.

स्टर्न—Stern, Ludwig Wilhelm.

स्टैनफ़र्ड संशोधित बीने साइमन बुद्धि परीक्षा—Stanford revision Binet Simon test.

स्तब्ध भावना—Feeling of Numbness.

स्थानान्तरण (ध्यान)—Shifting of attention.

स्थायीभाव—Sentiment.

स्थिति—Situation.
स्थूल बुद्धि—Dull.
स्नायविक संवेदना की ज्ञानेन्द्रियाँ—Proprioceptors.
स्पर्श बिन्दु—Touch spots.
स्पर्श संवेदना—Touch sensation.
स्पीयरमैन—Spearman, Charles Edward.
स्मृति—Memory.
स्मृति में उन्नति—Improvement in memory.
स्वभाव—Temperament.
स्वर—Tone.
हरा—Green.
हेनिंग—Henning, Hans K. F.
हेलन केलर—Keller, Hellen.

निर्देशिका

———